# एक सत्यान्वेषी की डायरी

शून्यो

Few pages of the diary of a truth seeker, that couldn't have been limited to him only.. it's a treasure to be distributed..

एक सत्यान्वेसी की डायरी

शून्यों

C- 2016

Diary No. 1245/2017-CO/L

इस बुक के सभी अधिकार सुरक्षित है। महत्वपूर्ण लेखो और समीक्षाओं में प्रकाशित इस पुस्तक के छोटे उद्धारणो को छोड़कर इस पुस्तक का कोई भी अंश बिना प्रकाशक की अनुमति के दोबारा प्रकाशित नही किया जा सकता।

बेवसाइट : WWW.Shunyo.in

ई–मेल : info@shunyo.in

प्रकाशक : किसलय गौड़

कोतवाली रोड, देवरिया

पिनकोड– 274001

उत्तर प्रदेश।

फोन नं0– 05568–225488

लोहा लोहे को काटता जरूर है, लेकिन कैसा लोहा किस लोहे को काटेगा, ये जानना मुश्किल है। उसमें कितनी ऊर्जा, कितना समय व्यर्थ होगा, ये जानना भी मुश्किल है। कभी-कभी उसमें दिन भर भी लग सकता है और कभी उसमें दिन भर से ज्यादा भी। लेकिन लोहा लोहे को काटता है ऐसा माना गया है। लेकिन लोहे को गैस कटर कहीं साफ तरीके से काटता है ठीक उसी प्रकार जैसे मक्खन की टिकिया पर से गर्म लोहे का चाकू फिरा दे। सुन्दरता से उस जगह पर मक्खन पिघल कर अलग हो जाता है।

ना उसमें उर्जा की, ना समय की व्यर्थ बर्बादी होती है इसलिए लोहे को लोहे से मत काटो। लोहे को लोहे से काटोगे तो असत्य को असत्य से, हिंसा को हिंसा से और झूठ को झूठ से ही काटने की कोशिश करोगे। अगर काटना ही है तो भले ही मात्रा में छोटा हो, अनुपात में छोटा हो, लेकिन सत्य को उसके सामने खड़ा कर दो और फिर देखो। सत्य भले ही छोटा हो लेकिन लड़ता बहुत मजबूती से है और जीतने की भी पूरी गारन्टी है। हारना निश्चित है सिर्फ झूठ का।

❖❖

कृष्ण ने सम्पूर्ण मानव जाति को उसके स्वभाव और उनके कर्म के हिसाब से चार वर्णों में बाँटे जाने का वर्णन किया—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। लेकिन बाद में हम कृष्ण की ही बातों को भूल गये। जो ब्राह्मण पद पा गये उनका लालच इस बात में ज्यादा रहा कि मेरी सन्तति आगे बढ़े। सबसे बड़ी समस्या जो हिन्दू धर्म में आ गयी वह थी जातिवाद।

जातियों को तो कर्म व स्वभाव के हिसाब से बाँटा गया था और जब इसका स्वरूप बदला तो इसे जन्म के हिसाब से बना दिया गया। हम अपनी ही बातों से कहीं भटक गये। हम गीता की ही उपेक्षा करने लगे क्योंकि हमने पढ़ा ही नहीं, गीता को।

कितने लोग हैं हमारे बीच, जिन्होंने कभी गीता को पढ़ा हो या फिर उसे जानने की कोशिश की हो? और हम अपने तथ्यों के बारे में सुनी-सुनायी बातें ही करते हैं, कोई कहता है ३३ करोड़ देवी देवता हैं, या ना जाने कितने? आप पढ़िये गीता के सिर्फ १८ अध्याय। मन के दर्पण पर जो सदियों से गन्दगी जम गयी है,

जिससे स्वयं को देखना मुश्किल हो गया है, गीता उसकी सफाई कर देगी। एक बार खोलो गीता को और उतरने दो उसको स्वयं अपने अन्दर।

जातिवाद के जहर ने हमें क्या-क्या समस्याएँ नहीं दीं। उन लोगों के बारे में सोचिए जिन्हें सिर्फ अपने लालच में, सिर्फ अपनी महत्ता कायम रखने के लिए हमने जन्म के अधार पर शूद्र का नाम दे दिया। उनकी पीढ़ियाँ दर पीढ़ियाँ पद्-दलित की गयीं। उन्हें सम्मान से व उनके अधिकारों से वंचित रखा गया।

भटक गये हम, कृष्ण के पथ से। भटक गये हम, उस निर्गुण निराकार परमात्मा के पथ से। उसने तो सबको एक बनाया था, हमने ये दीवारें खींच दी। लालच की पराकाष्ठा पार कर दीं हमने, पिछली कुछ सदियों में। इसका फल ये निकला कि जिसको आपने तिरस्कृत किया, उन्हें अपना नहीं माना वो दूसरे धर्मों की शरण में चले गये। अत: अगर किसी को दोष देना है तो सिर्फ स्वयं को और अपने पूर्वजों की विचारधारा को ही देना पड़ेगा। हमने अपनी भावनाओं को कलुषित किया और उसे ढँक दिया संस्कृति की चादर से। मन में पाप मेरे और ओढ़ ली ऊपर से सफेद चदरिया।

अब नहीं, तो कब बदलोगे? या आगे भी यही करने का इरादा है कि मेरे सेवक का लड़का मेरे पुत्रों का सेवक होगा और मेरे परपौत्र का सेवक मेरे सेवक का परपौत्र होगा। एक बार उनके और अपने पुत्रों के गुणों का मिलान करके देख लो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि ब्राह्मण कौन, शूद्र कौन और क्षत्रिय कौन? गलती से उन्हें जन्म के आधार पर जातियों में मत बाँट देना क्योंकि यही गलती तुम सदियों से करते आए हो और ना जाने कब तक करते रहोगे। कब सुधार करेंगे हम अपने आचार-विचार में और कब तक अपने अन्दर की सड़न और गलन को सफेद चादरों के अन्दर ढकते रहेंगे। उतार फेंको इस चादर को और देखो कितनी गन्दगी बसी है हमारे अन्दर।

कृष्ण ने तो कहा- 'सब एक हैं।' जिस किसी को देखो उसके अन्दर परमात्मा का दर्शन करना, प्रेम देना और तुमने उसे जन्म के आधार पर खुद से दूर कर दिया, प्रभु से दूर कर दिया। कई मन्दिरों में तो उनके घुसने पर प्रतिबन्ध है, कैसे हैं वो मन्दिर, भगवान की बनायी हुई कृति को उनके पास न पहुँचा पाये, तो क्या करोगे ऐसे मन्दिरों का?

❖❖

सिर्फ एक स्पर्म दिया स्त्री को और कहने लग गये कि पुत्र मेरा है, पुत्री मेरी है। पुत्री को तो हमने कभी अपना माना ही नहीं। शुरूआत से कहने लग गये कि बड़ी हो, तुम्हारी शादी हो जाये तो ये कर लेना। वो कहती रही, 'पापा! मुझे ये करना है, मुझे ये कपड़े पहनना है।' उत्तर आया- 'हाँ, जब तुम्हारी शादी हो जाए तो कर लेना।' 'पापा! ये जगह दिखा दो।' 'अभी तो नहीं जा पाऊंगा लेकिन जब तुम्हारी शादी हो जाएगी तो तुम्हारा पति तुमको दिखा देगा।' 'पापा सोचती हूँ ये पढ़ायी कर लूँ।' 'यहाँ तो ये व्यवस्था नहीं है, बाहर तुमको भेजेगें नहीं, अगर तुम्हारा पति चाहेगा तो कर लेना।' उस लड़की की सारी की सारी आशाएं उसके पति के कंधे टांग दी। जब वो लड़की अपने पति के गले पड़ेगी तो उसको इतनी जोर से पकड़ लेगी की बेचारे को सांस न आए।

सब कुछ पति के कंधे पर, उसके सर पर मढ़ने के अलावा हमने किया क्या है? इससे अच्छा हो कि जैसे लड़के को पढ़ा-लिखाकर, व्यापार कराकर, अपने पैरों पर खड़ा कर देते हैं, वैसे ही अपनी लड़की को भी कम से कम एक तकनीकी शिक्षा दिला दें। शिक्षा वो नहीं जो बी.ए. और एम.ए. करके ग्रेजुएट और पोस्ट ग्रेजुएट बनने वाली है। उसका क्या उपयोग करेगी वो आज के जमाने में? नौकरी पाने में, अपना व्यवसाय शुरू करने में? शिक्षा तो वो है कि जिस विषय की वो पढ़ाई करे, अगर वो चाहे तो उसका व्यापार कर ले। उसे किसी का मुँह तो न देखना पड़ेगा वो किसी पर निर्भर तो न रहेगी। किसी के माथे का बोझ तो न बनाया हमने उसको। दिन भर बैठकर सास, देवरानी, जेठानी के साथ, उन्हीं के विरूद्ध षड्यंत्र तो न करेगी क्योंकि उसका दिमाग तो रचना में व्यस्त होगा। कुछ और सोच रहा होगा, कुछ सुन्दर बनाने के बारे में सोच रहा होगा।

हमने बनाया क्या उसको, एक मूर्ख स्त्री। विवाह के समय तो ऐसे खुश होती है जैसे कोई फैशन शो हो और उसे वो ही जीतने जा रही हो। विवाह के बाद अपने पति के दिमाग में इस तरह का हाहाकार मचाएगी कि वो त्राहि-त्राहि कर उठेगा। वो भी सृष्टि की उतनी ही महत्वपूर्ण कृति है जितना की लड़के। बस उनको उन्हीं के बराबर का दर्जा दे दिया होता, उनको उन्हीं के पैर पर खड़ा कर दिया होता

तो वह कभी किसी पर निर्भर ना होती । कल को वृद्धावस्था में, ईश्वर ना करे कभी जरूरत पड़े तो तुम्हारी भी मदद कर दिया करेगी ।

❖❖

अगर हम इस पूरी पृथ्वी की या ब्रह्माण्ड की संरचना पर नजर डालें तो हमारे चारों तरफ जीवन को सिर्फ निष्कामी संरचनाओं ने संभाल रखा है। सूर्य से जीवन की उत्पत्ति होती है। पृथ्वी पर जीवन का चक्र चलाने के लिए सूर्य की उपस्थिति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। किरणों की अनुपस्थिति में, सूर्य भगवान जब कुछ एक दिनों के लिए हमसे रुष्ट हो जाते हैं। जाड़े में जब वे बादलों में छिप कर आराम करते हैं या उनकी ऊर्जा पृथ्वी पर पहुँच नहीं पाती, बादलों द्वारा अवशोषित कर ली जाती है, उस दौरान हम पृथ्वी के प्राणियों को सूर्य के महत्व का ज्ञान होता है।

सूर्य को अति निष्काम देवता माना गया है। पाँच अरब सालों से वो पृथ्वी पर सृष्टि का चक्र चलाते हैं लेकिन उसके बदले में कभी कुछ नहीं माँगते। ये पृथ्वी जिसने सभी चर-अचर जगत को अपने ऊपर धारण कर रखा है। ये सिर्फ आपको उपभोग के लिए वस्तु प्रदान करती रहती है, आपसे कभी कुछ चाहती नहीं। पेड़ वर्षा को आमंत्रित करते हैं, आपके लिए जल की व्यवस्था करते हैं। धरती आप के लिए अन्न उगाती है। पौधे जिनसे हमें अन्न प्राप्त होता है, अपना चक्र पूरा होने पर वहीं सूख जाते हैं और अनाज को उसी भूमि पर बिखेर देते हैं । पेड़ों पर लगते हैं फल, पेड़ उन्हें जन्म देकर, बड़ा कर, पका कर उनमें रस भरते हैं और जब रचना पूरी हो जाती है तो उनका त्याग कर देते हैं सिर्फ इसलिए कि पृथ्वी पर उपस्थित हर प्राणी अपनी भूख शान्त कर सके।

नदी आपसे कुछ नहीं माँगती, जब चाहे, जितना चाहे, उतनी मात्रा में आपको जल प्रदान करती है। नहीं देखती कि आप कौन हैं, किस जाति से हैं कुलीन है या सामान्य हैं, किस धर्म के हैं, पूरब से आये हैं या कि पश्चिम से? कुछ नहीं पूछती सिर्फ आपको जल देती है और इतना जल देती है जितना आप चाहे, कमी नहीं करती कभी। आपके चारों तरफ सृष्टि सिर्फ आपको देती है। परमात्मा ने इस सृष्टि की रचना ही कुछ ऐसी की है।

❖❖

तकदीर का फैसला ऊपर वाला नहीं, अपने कर्मों का फल है। तकदीर को ऊपर वाला अपने हाथ में नहीं, सबके हाथ में दे देता है कि फैसला तुम खुद करो। ये जो शरीर रूपी क्षेत्र है उसमें कर्मफल उचित समय आने पर, आपको प्राप्त होता रहता है। आप इसलिए जीतते हैं क्योंकि आपके कर्मों में कोई संशय नहीं होता। आप केवल कर्म करना चाहते हैं और उसमें पूरी ऊर्जा उड़ेलते हैं। जो सशंकित हैं और अहंकारी भी उनके कर्म लक्ष्यहीन हो जाते हैं इसलिए निरपेक्ष का जीतना जरूरी है। जरूरी ही होगा हर उस व्यक्ति के लिए, जो अपने कर्म में संशय न रखे और फल प्राप्ति के बारे में न सोचे, सिर्फ कर्म ही करे।

जब अहंकार गिर जाता है तो सभी द्वार अनंत के लिए खुल जाते हैं। जब स्वयं या अहं विदा हो जाता है, तो बचता है सिर्फ परमेश्वर जो निर्गुण निराकार, निस्वार्थ और प्रेमी है। स्वयं को विसर्जित करके आप निर्गुण निराकार की झलक पा सकते हो। वक्त लग सकता है साथ ही समर्पण भी आवश्यक होगा क्योंकि जब आप समर्पण करते हो, तब आप स्वयं को भी विदा कर देते हो और जब आप स्वयं को विदा कर देते हो आप मान लेते हो कि पंचतत्वों से बना ये आपका शरीर, आपकी बुद्धि, आपका मन और आपका अहंकार भी विदा हो गया और जब ये आठ तत्व विदा हो गये, जब जड़ तत्व चले गये तो चेतना ही बचती है और वो चेतना ब्रह्माण्डिय चेतना है। जब वो बचती है तो आप स्वयं को जान पाते हो।

❖❖

सनातन धर्म का उदय प्राचीन भारत में हुआ और अब सनातन धर्म, उदय के कुछ दस हजारों साल बाद सिर्फ हिन्दुस्तान में सिकुड़ कर रह गया है। इसका मुख्य कारण है कि हमने सिर्फ एक ही बात सोची कि प्यासा ही कुँए के पास आता है और इस वजह से शायद हम रूके रहे कि जिस किसी को जरूरत होगी वो खोजते आएगा। जो कोई भी जानना चाहेगा वो ढूँढ़ ही लेगा। जिस किसी को भी मिटना होगा वो पा ही लेगा।

यह स्थिति कुछ बदलती है जयदयाल जी गोयनका के समय में, जिन्होंने

गीता प्रेस की स्थापना की। वे और उनके कुछ मित्र जिन्होंने गीता को जन-जन तक पहुँचाने का भाव लेकर इस क्रान्ति की शुरूआत की। ओशो ने भी यही किया, ज्ञान की प्राप्ति के बाद २० सालों तक भारत के गाँव गाँव में, छोटे-छोटे शहरों में ज्ञान का दीप लेकर गये। जिस-जिस को दर्शन करना हो कर ले, जिस जिस को रोशनी चाहिए वो ले ले। जो-जो प्रकाश ढूँढ रहा हो उसकी झलक तो दिखला दूं आगे तुम्हारी मर्जी। मदद चाहो तो वो सदैव करने के लिए तैयार थे।

कहीं कुछ कमियाँ तो रह गयीं कि आज हम सिमट के रह गये भारत में। क्या दुनिया के दूसरे भाग के लोगों को कृष्ण की वाणी सुनने का अवसर नहीं मिलना चाहिए था? कमियाँ तो रही हैं, स्वीकारना तो पड़ेगा और सिर्फ स्वीकारने से काम नहीं चलेगा, अब वक्त है कि इसे लेकर उन लोगों तक पहुँचा जाए जो अभी भी ढूँढ रहे हैं, पाना चाहते हैं खोना चाहते हैं, प्यास जगी है लेकिन कुँआ मिलता नहीं। जरूरत तो है, प्रयास करने होंगे। ओशो, विवेकानंद, प्रभुपाद, योगानन्द, जयदयाल जी गोयनका ने अपने स्तर पर जितना भी प्रयास किया वो अवर्णनीय है, अतुलनीय है लेकिन अब कौन? कुछ लोगों को तो आगे आना ही चाहिए जो उनके कार्य को आगे बढ़ाएँ। क्यों नहीं ये प्रेम का संदेश उन लोगों तक भी पहुँचे जो ढूँढ रहे है सदियों से। हम भारत में रहकर गीता को नहीं पढ़ते, पूरा का पूरा जीवन निकल जाता है। हमें गीता के बारे में और यह किस प्रकार आध्यात्मिकता से जुड़ी हुई है इसके बारे में कुछ नहीं पता है।

धर्म के नाम पर बस कुछ कर्मकाण्ड, बस यही लेन देन, ईश्वर के नाम पर व्यापार। परिस्थिति बदलनी चाहिए और विदेशों में क्यों? हमें तो अभी एक जागरण की जरूरत है स्वयं अपने देश में ही। कौन जानता है मर्म क्या है गीता का और क्यों नहीं जानता? वह सब कुछ पढ़ लेता है, वह हर प्रकार के कर्मकाण्डी यज्ञों को कर लेता है क्योंकि उससे कुछ मिल सकता है, प्राप्त हो सकता है, लाभ हो सकता है। लाभ जितना आवश्यक है, यथार्थ का ज्ञान भी उतना ही या उससे कहीं ज्यादा जरूरी है। ज्ञान के बिना लाभ न हो पाएगा और हुआ तो टिक न पाएगा। जरूरत है एक जनजागरण की, अपने ही प्रदेश में, अपने ही इलाके में, अपने ही लोगों में, और जब वे संतृप्त हो जाएंगे तो ये जागरण आगे की तरफ जाएगा। बस अब इस प्रयास को करने की आवश्यकता है।

❖❖

ईश्वर ने धर्मों का स्वरूप इसलिए बनाया क्योंकि एक दिन तुम उस धर्म का मतलब समझ लेना, ये जान लेना कि किस तात्पर्य से इसकी रचना की है और इससे भी मुक्त हो जाना। जब धर्मों से भी दूर चले जाओगे और वास्तविक धर्म जो परम सत्य है उसे जान लोगे, उस दिन उन धर्मों के होने का कारण सम्पन्न हो जाएगा।

❖❖

इस्लाम, निराकार ब्रह्म की उपासना करने को प्रेरित करता है क्योंकि साकार ब्रह्म में उनका कोई विश्वास नहीं। ये बात उनके स्तर पर उचित लगती है क्योंकि उन्होंने कभी साकार ब्रह्म का दर्शन ही नहीं किया। धरती के उस भाग में, जिसमें इब्राहिमी धर्मों की उत्पत्ति हुई उसमें सदैव ईश्वर ने अपना संदेश किसी के माध्यम से भेजा जिन्हें 'पैगम्बर' कहा जाता है। पैगम्बर– जैसे मूसा, दाउद, ईशु, मोहम्मद वगैरह। क्यूँकि वहाँ की अध्यात्मिक चेतना इस स्तर पर पहुँची नहीं थी कि ईश्वर वहाँ साकार रूप में स्वयं पहुँच पाते। ईश्वर ने पृथ्वी की रचना साकार रूप में की है। धरती पर केवल एक ही भाग है जहाँ ईश्वर के अस्तित्व ने साकार रूप धारण किया वह है भारत। कृष्ण और राम के आने से पहले वेदों ने उसकी भूमि तैयार कर दी थी। वेद और उपनिषदों ने लोगों की आध्यात्मिक चेतना को जगाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इसलिए अनेक ऋषियों–मुनियों और तपस्वियों के माध्यम से कृष्ण ने वह गूढ़ ज्ञान पहले ही वेदों के रूप में भारत में भेज दिया, जिसने राम और कृष्ण के इस धरती पर आने का मार्ग प्रशस्त किया अन्यथा लोग उन्हे समझ ही नहीं पाते जैसा संसार की अन्य सभ्यताओं में हुआ।

सुकारात को कोई समझ ही नहीं पाया इसलिए उन्हें जहर पीना पड़ा। ईसा को ३४ वर्ष की उम्र में क्रूसीफाइड कर दिया गया क्योंकि उन्होंने जो कहा, उस समय का समाज उसको स्वीकार करने के लिए तैयार ही नहीं था। उनकी मन:स्थिति ही नहीं थी क्योंकि लोग अपने पूर्व संस्कारों में बुरी तरह से जकड़े हुए थे। अत: उनके विचारों को आत्मसात नहीं कर सकते थे। ठीक उसी तरीके से अरब में भी जब मोहम्मद साहब को अनुभूति हुई और उन्होंने ईश्वर के फरिश्ते

गैब्रियल द्वारा बतायी गयी बातों को लोगों में प्रचारित करना शुरू किया तो वहाँ का समाज इसे स्वीकार नहीं कर पाया, स्वयं उनके कबीले व उनके परिवार के लोगों ने उनका विरोध किया।

इसलिए कुरान में कहा भी गया है कि गूढ़ ज्ञान सिर्फ आन्तरिक गहराई वाले लोग ही इसे समझ पाएंगे। इसलिए ईश्वर ने धरती के उस भाग में कभी साकार रूप में जन्म नहीं लिया लेकिन उन्होंने अपना संदेश अवश्य भेजा। कहीं न कहीं हमारी भी कमी है, हमारे पूर्वज सोचते रहे कि कभी प्यास लगेगी तो प्यासा कुएं को खोजते जरूर कुएं के पास आएगा। वो ढूंढ लेगा क्योंकि प्यास उसे लगी है। जब आन्तरिक प्यास जागृत होनी शुरू होगी तो व्यक्ति जरूर रास्ता ढूंढ ही लेगा और वो मार्ग कहीं न कहीं उसे पहुँचा ही देगा।

शायद अब वक्त है कि इस बात को उल्टा किया जाए, लोगों तक कृष्ण की बात पहुँचाई जाए। एक सुन्दर रचना, कुरान का, लोगों ने अपने हिसाब से वर्णन करना शुरू किया और उसका जो रूप इस समय लोगों के सामने है वो किसी से छिपा नहीं। जैसा कि कुरान में पहले ही कह दिया गया था कि बहुत कम ही लोग इसे समझ पाएंगे, वही हुआ। केवल गिने-चुने लोग ही समझ पाए। सिर्फ सूफी सम्प्रदाय ही ईश्वर को आत्मसात कर पाया, दूसरे कुछ गिने चुने लोग, जिनकी चेतना उस स्तर पर थी, संदेश को जरूर समझ गये होंगे। लेकिन इस्लामिक धर्मगुरूओं ने इस गूढ़ ज्ञान को अपने पक्ष में, अपने अनुसार, अपने फायदे के लिए इस्तेमाल करना शुरू किया और जो लोग इसकी समझ से अपरिचित थे, उनको अपनी विवेचना से भ्रम में डाल दिया।

❖❖

भारत में धर्मगुरू धर्म की बातों को इतना विकृत नहीं कर पाए क्योंकि ईश्वर ने यहाँ स्वयं आकर उपदेश दिया। गीता का ज्ञान लोगों में प्रवाहित किया। धर्मगुरूओं हेतु कुछ खास करने के लिए रह नहीं गया। उसकी विवेचना करने का अधिकार उनको नहीं था। वो सिर्फ संस्कृत में कही हुई बातों का हिन्दी में रूपान्तरण कर सकते थे और जबकि वेदों ने पहले ही एक भूमि तैयार कर दी थी, लोगों की चेतना कहीं न कहीं करवटें लेने लगी थी।

इसलिए उन्हें बहुत मौका नहीं मिला कि इस बात को, अपने फायदे के लिए इस्तेमाल कर पाते। हालाँकि अभी भी कई धार्मिक जगहों पर कई अधार्मिक क्रियाएँ देखने को मिलेंगी लेकिन फिर भी यहाँ का मनुष्य, जहाँ तक आध्यात्मिक और धार्मिक बातों का प्रश्न है, ज्यादा सोचने और समझने की शक्ति रखता है।

❖❖

आप आध्यात्म के बारे में जानना चाहते हैं बधाई हो! क्योंकि आप अब उस स्तर पर पहुँच चुके हैं जहाँ आपकी प्यास बढ़ेगी, अभी तक पद, प्रतिष्ठा, सम्मान ये सारी चीजें मध्य में हुआ करती थी, जिसके चारों ओर आप घूमा करते थे लेकिन अब एक नई प्यास जागी है। आध्यात्म की अंग्रेजी है-'स्प्रिच्युएलिटी' तथा स्प्रिच्युएलिटी बना है स्प्रिट से जिसका अर्थ है आत्मा। आध्यात्म दो शब्दों से मिलकर बना है, आत्म का अध्ययन मतलब स्वयं का अध्ययन। जब हम आत्म का अध्ययन करते हैं तो हम ये मान लेते हैं कि आत्मा 'आत्म' से बनी है, स्वयं से। अर्थात् अगर हमें अपना अध्ययन करना है तो हमें अपनी आत्मा का अध्ययन करना होगा, शरीर का नहीं।

शरीर के पीछे तो सारी माया है, लेकिन आध्यात्म में आत्मा के स्तर पर माया नहीं है। अब आप एक नई खोज पर जाने के लिए तैयार हैं। एक नई यात्रा होगी जो अन्य यात्राओं से विपरीत होगी। बाकी यात्राओं में हम बाहर की तरफ जाते हैं। यहाँ से बम्बई, दिल्ली, विदेश व अन्य जगह। लेकिन आध्यात्म की यात्रा आन्तरिक यात्रा है जिसमें आप खुद के अन्दर जाएंगे और इस प्रकार स्वयं को जानने का प्रयास करेंगे और अगर स्वयं को जानना है तो कुछ दिन तो गुजारिये स्वयं के साथ।

❖❖

जब आत्मा पर आच्छादित सारे आवरण हट जाएंगे, मन के आईने पर जमीं सारी धूल गायब हो जाएगी। तब, मन से ये प्रश्न भी हट जाएगा कि मैं कौन हूँ? क्योंकि तब जीवात्मा उतनी ही उन्नत हो जाएगी जितनी कि आत्मा और उसी वक्त ये प्रश्न गिर जाएगा क्योंकि आप जान जाएंगे कि आप शरीर नहीं, आप परमेश्वर के एक अंश हैं। प्रश्न गिर जाएगा उत्तर मिल जाएगा लेकिन उत्तर किसी के बताने

से नहीं मिलेगा ये अनुभति से ही मिलेगा, प्रयास से ही मिलेगा।

तब, मन के आईने पर से सारी धूल उड़ जाएगी। मन एक शीशे की तरह साफ हो जाएगा। एक बच्चे की तरह निष्कपटी हो जाएगा और एक निर्मल पानी के सोते की तरह अविरल हो जाएगा। सभी के लिए समान भाव। तब ये प्रश्न विलुप्त हो जाएगा कि मैं कौन हूँ, क्योंकि तब आप स्वयं को जान चुके होंगे। ये बात समझ में आ चुकी होगी कि आप भी अपने अन्दर स्थित आत्मा, जितने ही निर्मल हैं।

जब ये प्रश्न विलुप्त हो जाएगा कि मैं कौन हूँ? तो आप स्वयं को जान चुके होंगे- समझ चुके होंगे और उस आनन्द के गहरे सागर में डूबे रहेंगे, सदैव जैसे हर जगह आपको कृष्ण ही दिखायी दें। तब आपकी जीवात्मा अपने मूलस्रोत परमात्मा से जुड़ने के लिए तैयार हो जाएगा। बीच की सारी बाधा हट जाएगी, मिट जाएगी, अर्न्तध्यान हो जाएगी। कोई बाधा न रहेगी बीच में, रहेगी तो सिर्फ निर्मलता, कोमलता और एक सदैव छायी रहने वाली मस्ती। फिर मस्ती का स्रोत बाहर से नहीं होगा।

बाहर से आपको आनन्द नहीं प्राप्त होगा, अन्दर से आनन्द का स्रोत फूट पड़ेगा और जो भी आपके संपर्क में आएगा वो भी आपसे आनन्द लेकर जाएगा क्योंकि आप स्वयं आनन्दस्वरूप हो जाएंगे।

बस एक उस पल की, एक उस स्थिति की और उस स्तर की और उसी जगह पर पहुँचने की सारी कोशिशें, अध्यात्म कही जाती हैं।

अध्यात्म का पूरा का पूरा दायरा सिर्फ स्वयं को समझने और स्वयं की चेतना पर जमीं हुयी सारी की सारी धूल हटाने का प्रयास है। दायरा असीमित है और बहुत छोटा भी। ढूंढने जाओगे तो पूरे जग में न ढूंढ पाओगे और हो सकता है कि इसे एक ही स्थान पर बैठ-बैठे, अपने अन्दर ही ढूंढ लो, बस यही है अध्यात्म का सार।

❖❖

क्यों सीधे लोग बहुत दिनों तक याद रह जाते हैं? जिनके चेहरे, भावों और

शब्दों में वही होता है जो उनके मन में होता है। ऐसे लोगों को याद नहीं रखना पड़ता वो याद रह जाते हैं, प्रयास भी नहीं करना पड़ता। अंकित हो जाते हैं। क्यों? क्योंकि उनके अंतस पर जमीं हुई धूल बहुत ही पतली होती है, फूंक मारो तो उड़ जाती है। फिर चेतना एक शीशे के समान निर्मल हो जाती है। ऐसे लोग आपको भी उतना प्यार करते हैं, जितना अपने घर वालो का। ऐसे लोगों को याद रखने की जरूरत नहीं पड़ती वो बस याद रह जाते हैं।

❖❖

धार्मिकता आध्यामिकता की पहली सीढ़ी है। कृष्ण चाहते हैं कि आप स्वयं को जानें। यही उनकी आप पर सबसे बड़ी कृपा है और शायद यह कृपा तब बरसती है जब समर्पण का भाव जागृत होता है। जब आप स्वयं को जानेंगे, तब ही आप कृष्ण को भी पूर्णतया जान पाएँगे। जब यह प्रश्न मस्तिष्क में आने लगे, कि अगल-बगल ये जो हो रहा है, क्यों हो रहा है? जब शीशे के सामने खड़े होने पर भी सामने वाला व्यक्ति कुछ अपरिचित सा लगे, कुछ समय देखने के बाद भी लगे कि क्या मैं यही हूँ, जो व्यक्ति शीशे में है या कोई और?

सब कुछ होते हुए भी, पूर्ण सम्पन्नता होते हुए भी, खालीपन सा महसूस हो। लगे कि मन कुछ खोज रहा है लेकिन ये न पता चले कि क्या खोज रहा हूँ मैं? कई कई बार वर्षों तक पता नहीं चल पाता कि हम खोज क्या रहे हैं? कहीं कुछ कमी तो है। पढ़ाई कर ली, व्यापार चल रहा है, नौकरी भी मिल गयी, विवाह भी हो गया, जितना सोचा था उससे ज्यादा ही धन मिल रहा है, इसकी तो कल्पना भी नहीं की थी लेकिन फिर भी लगे कि सब कुछ तो है लेकिन कहीं कुछ छूट रहा है। क्या है वो? और समय के साथ साथ ये भावना बलवती होने लगे।

प्रश्न बार-बार लौट कर आने लगे और आपकी जिज्ञासा भी बनी रहे, उस 'क्या', उस 'कौन', उस 'किसलिए' में। वे सभी लोग जिनके जीवन में कभी प्रेम घटित हुआ है चाहे वो दादा का प्रेम, माता-पिता का प्रेम या कोई मित्र या परिवार का, कोई दूसरा सदस्य या स्कूल टीचर के द्वारा प्रेम घटित हुआ है और वे लोग जिन्होंने प्रेम की मिठाई खाई है। उन सभी लोगों को प्रेम, दूसरों को लौटाना चाहिये और कुछ बढ़ा के लौटाओगे तो प्रभाव और बढ़ ही जाएगा। जब तुम दूसरों को

प्रेम देने जाओगे तो जान जाओगे कि जितना प्रेम लेने में आनन्द है, उससे कहीं ज्यादा आनन्द प्रेम देने में है।

❖❖

कामनाओं से मुक्ति तभी मिल जाती है जब कामनाओं की पूर्ति हो जाती है।

❖❖

गीता प्रेस ने बड़ा महान कार्य किया है गीता को छापने का। अब हमारे पास संसाधन उपलब्ध है लेकिन एक गीता आन्दोलन की जरूरत है क्योंकि हमारे अपने बहुत कम लोगों ने गीता पढ़ी है। हम अपने सनातन धर्म और गीता के बारे में बहुत कम जानते हैं। अब यह आवश्यकता है गीता आन्दोलन को खड़ा करने की। गीता में समाज की कई बुराइयों से छूटने का सूत्र समाहित है। प्रभु के संदेश को जन-जन तक पहुँचाने से महत्वपूर्ण कार्य क्या है?

❖❖

आपका गुरू आपके अन्दर ही बैठा है। यदि आप आत्मशोधन की प्रक्रिया और आन्तरिक रूपान्तरण की प्रक्रिया को सम्पन्न कर सकें, तब समझ लीजिये कि आपके गुरू की कृपा, आप पर अनन्य है। जब आप आत्म शोधन प्राप्त करते हैं तो आप स्वयं को खोल देते हैं, उस असीम जगत के लिए; उस शाश्वत जगत के लिए, उस शाश्वत सत्य के लिए, जिसे कृष्ण ने गीता में कहा है कि- 'इसका आदि और अंत नहीं है'। आप स्वयं को तैयार कर लेते हैं, स्वयं को घोल देने के लिए उस परमानंद में।

गीता का नियमित पाठन इस कार्य में आपकी मदद कर सकता है क्योंकि गीता सत्य रूप, ईश्वर के मुँह से निकली हुई वह वाणी है जो सत्य के सिवा और कुछ नहीं हो सकती है। आत्मशोधन की प्रक्रिया के बाद अगर कुछ प्राप्त होता है तो वह है आनन्द। जब जीवात्मा पर पड़ा सारा आवरण समाप्त हो जाता है तो जीवात्मा तैयार होती है परमात्मा से मिलने के लिए। तब आरम्भ होता है उस आनन्द का जिसका, न कोई शुरूआत है न कोई विनाश है।

'आत्म शोधन' योग के माध्यम से हो सकता है, ध्यान के माध्यम से हो सकता है, चिंतन-मनन के माध्यम से हो सकता है। जब आप स्वयं को छोड़कर दूसरों के लिए जीना शुरू कर देते हैं तब हर एक मानव में, कृष्ण और हर एक स्त्री में राधा दिखाई देने लगती है। तब जान लीजिए आप उचित पथ पर हैं। हर एक व्यक्ति की सेवा, हर एक पशु की सेवा, हर चर-अचर, प्रकृति सेवा। जब कृष्ण की सेवा हो जाए तब जान लेना तुमने कृष्ण को समझ लिया।

❖❖

'यथा ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड' अर्थात् जिस पदार्थ से यह ब्रह्माण्ड बना है उसी से तुम्हारा शरीर और इसके आस पास की सभी वस्तुएं। इसी कारण सच्चिदानंद परमात्मा सर्वत्र समान रूप से विराजमान हैं। स्वाध्याय अत्यंत आवश्यक है क्योंकि स्वाध्याय से आप जगत में उपस्थित विभिन्न मतों और उसमें उपस्थित विभिन्नताओं और समानताओं को समझना शुरू कर देते हैं।

तब तुम्हारी बुद्धि को बड़ी मात्रा में सूचना मिलती है। जिससे वो तुम्हें सत्य तक पहुँचाने में मदद कर सकती है। सच्चिदानंद धन परमात्मा सिर्फ एक है और वह विभिन्न कालों में, विभिन्न युगों में अवतार लेकर अपनी उपस्थिति से परिचित कराते हैं। अत: ईश्वर के एकल स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित करना अत्यंत सुन्दर होगा और महत्वपूर्ण भी। लोग उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं, आप उसे कृष्ण कह सकते हैं।

❖❖

बुद्ध की अपार कृपा है मानव जाति पर, उन्होंने सूत्र दिया 'अप्प दीपो भव:' अर्थात् अपना दीपक स्वयं बनो! बुद्ध ने कहा कि जो भी मैं तुम्हें सिखाता हूँ, जो भी मैं तुम्हें बताता हूँ, वह सत्य है। लेकिन तुम उसे तब तक स्वीकार न करना जब तक तुम्हारे अन्दर स्थित वो शाश्वत वाणी तुम्हें ये बात न बता दे, इसकी अनुभूति तुम्हें स्वयं हो जाए कि जो कुछ भी यह तुम्हें कहा जा रहा है सत्य है या नहीं। किसी की कही सुनीं बातों पर मत जाना, जाना हो तो स्वयं की आन्तरिक यात्रा पर जाना, क्योंकि वही ज्ञान का अक्षय भण्डार है। जो तुम्हें बताएगा इस ब्रह्माण्ड के

रहस्य को, इसलिए अपना दीपक स्वयं बनो।

❖❖

कृष्ण की ये बड़ी कृपा रही मानव पर कि उन्होंने ये भी बताया कि जीवन आनन्द भी हो सकता है। आप एक परमयोगी होते हुए भी किस प्रकार जीवन को आनन्द के रूप में जी सकते हैं। किस प्रकार जीवन को एक उत्सव के रूप में बदला जा सकता है। सत्य के मार्ग पर चलते हुए, उसे खोजते हुए आप कितने आनन्द स्वरूप हो सकते हैं। शायद इसीलिए कृष्ण को पूर्णावतार कहा गया है।

❖❖

अहंकार जब आक्रमण करे तो कोई प्रतिक्रिया मत दो, बस साक्षी बन जाओ और साक्षी भाव से उसे देखते रहो। वो एक तरफ से आएगा और प्रतिक्रिया न मिलने पर दूसरी तरफ से चला भी जाएगा।

❖❖

ईश्वर ने वेद भेजे भारत में और भारत में ही क्यों? क्योंकि सर्वप्रथम भारत में ही आध्यात्म का उदय हुआ। यह वो भूमि थी जो सत्य को खोजने के मार्ग पर चल चुकी थी। लोगों के मन में उत्कण्ठा और प्यास जाग उठी थी। सत्य को ढूँढ़ने का प्रयास चल रहा था इसीलिए ईश्वर ने भारत पर अपनी सबसे बड़ी कृपा की। ईश्वर ने सबसे पहले इस भूमि को वेद दिया, आध्यात्म दिया।

वेदों ने ईश्वर के धरती पर आने की रूपरेखा तैयार की, ताकि जब धरती पर उनका अवतरण हो तो उनकी बातों को समझा जा सके। जिस प्रकार प्रभु ने धरती के अन्य भागों में अवतार न लेकर माध्यमों को चुना, जिसके द्वारा लोगों तक अपनी बात पहुँचाई। लेकिन इस धरती पर ईश्वर ने स्वयं अवतरण लिया, ये इस धरती का प्रयास है और प्रभु का उपकार। भारत का समाज आध्यात्म के मार्ग पर आगे बढ़ चुका था, शायद इसीलिए भारत को विश्व गुरू की उपाधि दी गयी।

सम्पूर्ण अफ्रीका, नार्थ अमेरिका और उत्तरी अमेरिका और यूरोप आध्यात्मिक रूप से काफी पीछे चल रहे थे। आध्यात्म का उदय यहाँ भारत में हुआ। कुछ

कमियाँ रहीं, हमने अन्य देशों को आध्यात्म का निर्यात नहीं किया लेकिन अब महती आवश्यकता है। बहुत आवश्यकता है कि हमने अभी तक जो भी सत्य, जो भी ज्ञान प्राप्त किया, उसे संसार के विभिन्न भागों में पहुँचाया जाए और फिर जो भी व्यक्ति सत्य की अभीप्सा में होंगे वे जरूर इस संदेश को समझ लेंगे। ये एक ईश्वर प्रदत्त कार्य है और इसे एक बड़ा रूप लेना ही चाहिए।

शायद पूर्व भारत के मनीषी ये बात पहले से जान चुके थे कि धर्मों को आगे चलकर प्रदूषित और कुत्सित कर दिया जाएगा। धर्म की आड़ में वो सभी लोग, जिनकी अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ हैं उनका उपयोग अपने तरीके से करने की कोशिश करेंगे। इसीलिए उन्होंने भारत में एक सभ्यता, एक जीवन जीने की कला का सूत्रपात किया। जिसे उन्होंने सनातन धर्म कहा लेकिन उन्होंने इसके नाम पर ज्यादा जोर नहीं दिया सिर्फ इसे एक जीवन जीने की कला तक ही सीमित रखा और आज हम देखते हैं कि धर्म के नाम पर ही पूरे विश्व में सारे अधार्मिक कार्य किये जा रहे हैं।

❖❖

सनातन धर्म का मतलब आप कृष्ण की सिर्फ इस एक बात से समझ सकते हैं कि जब उन्होंने अर्जुन से कहा कि- 'हे अर्जुन! पृथ्वी पर ऐसा कौन सा समय था, जब तुम नहीं थे और मैं नहीं था और यहाँ उपस्थित ये लोग नहीं थे और कौन सा ऐसा समय होगा, जब तुम नहीं होगे, मैं नहीं हूँगा और ये उपस्थित लोग नहीं होंगे।' अर्थात् जीवन शाश्वत है, सत्य है, सतत् है और सनातन है।

❖❖

इस माध्यम का चुनाव किसी धर्म प्रचार करने के लिए नहीं किया गया है। ये तो एक विचार को प्रवाहित करने का तरीका है। सत्य के बीज आपके मन में छिड़कते हुए चला जा रहा हूँ। यही बीज कल पुष्पित और पल्लवित होगा। सत्य अपना आकार लेगा, आपके माध्यम से। यह उन सभी लोगों के लिए एक मार्गदर्शक का कार्य करेगा। भारत के ऋषि-मुनियों के उन प्रारंभिक आध्यात्मिक कार्यों का ही परिणाम है कि उनके बाद आने वाली पीढ़ियों ने कभी किसी पर आक्रमण नहीं

किया, कभी किसी पर आधिपत्य नहीं जमाना चाहा। जो कर्म उन्होंने किये, उसका लाभ पूरे संसार को मिला।

हमनें एक उदाहरण प्रस्तुत किया कि यह भी संभव है कि संसार रूपी इस जंगल में जहाँ हर कोई एक दूसरे को निगल जाना चाहता है हम शान्त और स्थिर बैठे रहे और कभी किसी पर आक्रमण नहीं किया अपितु सबके सुख और स्वास्थ्य की ही कामना की। 'सर्वे भवन्ति सुखिन:। सर्वे सन्तु निरामया: सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुखभाग्वेद।'

❖❖

हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, जैन, ईसाई, यहूदी ये सब कुछ न होकर मनुष्य होना ही पर्याप्त है। अब किसी नाम की आवश्यकता नहीं है बस सत्य की आवश्यकता है। उस सत्य को पहचानने की आवश्यकता है जो विभिन्न नामों के पीछे कहीं छुप गया है। अब वक्त आ गया है जमी हुई धूल को साफ करने का। आज, अगर तुम यहाँ से कुछ ले जाना चाहते हो तो यह सूत्र ले जाना कि जाति, धर्म, ऊँच-नीच, भेद-भाव को एक कचरे के डब्बे में डालकर घर से कही दूर फेंक आना है।

घर आकर अपने मन रूपी शीशे को रगड़-रगड़कर साफ कर लेना और जब तुम इसे साफ कर लोगे तो यह चमक उठेगा और आइने के समान यह सिर्फ तुम्हें सत्य ही दिखाएगा और तुम्हें ये सत्य अपने अन्दर ही मिल जाएगा। कहीं बाहर जाने की जरूरत नहीं है। मात्र अपने मन के अन्दर बैठी हुई गन्दगी को साफ कर लो, फिर तुम्हारे अन्दर बैठा, वो ईश्वर तुम्हें सब बताता रहेगा।

बस सारे मानसिक कचरे को कही दूर फेंक आना, जला देना कहीं ले जाकर। अपने अन्त:करण का शुद्धिकरण कर लेना, उसके बाद तुम्हारा सारा काम परमेश्वर तुम्हारे लिए स्वयं कर देंगे। तुम्हे कुछ करने की आवश्यकता नहीं।

❖❖

जब तुम जीवन का पूर्ण आलिंगन कर लेते हो तो तुम उसे छोड़ने के लिए भी तैयार रहते हो, क्योंकि तब तुम चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुके होते हो और तुम्हें जीवन विचलित नहीं करता, कम्पन नहीं करता, तुम्हारे अन्दर। तुम उसमें लिप्त होते हुए भी स्वयं को निर्लिप्त पाते हो।

❖❖

यह चर्चा कि योग और विज्ञान अलग-अलग है उचित प्रतीत नहीं होती। विज्ञान और योग एक दूसरे से उसी प्रकार मिले हुए हैं जिस प्रकार शर्बत में चीनी, हर वो चीज जो सत्य पर टिकी है विज्ञान पर टिकी है।

❖❖

ये वाक्य, 'मुझे अब ज्ञान प्राप्त हो गया' इस वाक्य को अब विदा हो जाना चाहिए, क्योंकि ये वाक्य अहंकार लाता है कि मुझे ज्ञान की प्राप्ति हो गया। जब तक ''मैं'' रहेगा तब तक ज्ञान आएगा कहाँ? ज्ञान की प्राप्ति की तो पहली शर्त ही यही है कि ''मैं'' को विदा हो जाना चाहिए। यदि ''मैं'' है तो फिर ज्ञान कहाँ है? अब एक नव वाक्य की आवश्यकता है और वह होना चाहिए कि 'मैं अब शून्य हो गया हूँ ', मुझे शून्यता के दर्शन हो गये। वह परम ज्ञान, वह परम दृश्य, वह परम आनन्द प्रकट कैसे होगा, जब तक ''मैं'' है वहाँ पर? इसलिए मुझे ज्ञान की प्राप्ति हो गयी, इन शब्दों के बीच तालमेल नहीं बैठता।

❖❖

लगता है व्यक्ति तभी परेशान होता है जब वह अपने मूल स्रोत से पूर्णतया कट जाता है। जहाँ से वह आया है, जो उसका परमाश्रय है, जब व्यक्ति उसे भूल जाता है, सामाजिक, आर्थिक और व्यक्तिगत कार्यों में व्यस्त होकर। इतना कि उसकी आँखे उसे वो नहीं दिखा पाती जो कदाचित उसके सामने है। परेशानियाँ वहीं से शुरू है। दूसरा प्रकृति से दूरी। तीसरा खान और पान सम्बन्धित प्रवृत्तियों में बदलाव। बुद्ध को और ओशो को वृक्ष के नीचे ही ज्ञान मिला और कहाँ मिल सकता था, इससे पवित्र और कौन सी जगह हो सकती थी धरती पर। वृक्षों से ज्यादा धार्मिक और समर्पित कौन हो सकता है, तो ज्ञान की प्राप्ति वृक्ष के या प्रकृति के समीप नहीं तो और कहाँ?

❖❖

जीवन का चक्र कुछ इस प्रकार चलता है- पहला भाग है कुछ होना और दूसरा भाग जो इस चक्र को पूर्ण करता है वो है, इस बात को समझना कि हम

कुछ भी नहीं। जब ये दोनों चक्र पूर्णतया सम्पन्न होते हैं तब जीवन की समझ आती है क्योंकि जब आप शून्य होते हैं तो इस जगत के रहस्यों को और इस जगत के नियमों को समझने के पात्र हो जाते हैं और तब खुलता है एक और द्वार, जो आपको आपके मूल स्रोत की तरफ ले जाता है, एक कदम और।

❖❖

प्रभु! आप एक नदी हैं जो पहाड़ों से उतरकर अपने आगे का रास्ता तय करते हैं और मैं उसमें समायी हुई एक छोटी सी बूंद हूँ, जिसका स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं। मैं बस आपके साथ बहने का आनन्द ले रहा हूँ। श्रीकृष्ण ने सबको पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की है। अहंकार की समाप्ति सिर्फ इसलिए होती है क्योंकि अहं के अर्थ में 'मैं' का भाव होता है, जो सर्वथा असत्य है। उस मूल स्रोत ने तुम्हें पूर्णतया स्वतंत्रता दी सोचने की, समझने की, विचारने की, सब करने की। लेकिन समस्या उत्पन्न तब हुई जब ये प्रतीत होने लगा कि 'मैं भी हूँ!' और जब ये प्रतीत होने लगे तो ये असत्य ही होगा इसलिए इसकी समाप्ति निश्चित है। अपने होने का भ्रम होना अर्थात् अपने और मूल स्रोत का जुड़ाव खो देना है और जो मूल स्रोत से कट गया, वह खो ही जाएगा।

❖❖

लगता है पूरा जगत सिर्फ सत्य पर ही टिका हुआ है। जब भी यह विचार आता है कि 'मैं खुद हूँ' या 'मैं कुछ हूँ' तो यह भ्रम है और जब 'मैं' टूटता है तो कष्ट होता है।

पूरा का पूरा भाव या पूरा का पूरा रहस्य सिर्फ इस बात को समझ लेने में है कि हम एक अंश ही हो सकते हैं उस अंशी के और इस एक बात को जान लेने के बाद किसी और बात को जानने की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है- 'यही वह एक चीज है जिसके लिए तुम बने हो। यही वो आनन्द है, जो तुम खोज रहे थे और यही वो पल है सब तुम खो दोगे और सब तुम पा लोगे। जब तुम स्वयं को पा लोगे, तब तुम्हारे पास खोने के लिए कुछ भी नहीं रहेगा।'

❖❖

लगता है सारी परेशानियां मन, आत्मा और शरीर के असंतुलित होने के कारण ही होती है और जब ये असंतुलन होता है तो इनमें से किसी एक पर ज्यादा ध्यान चला जाता है। तब सारी उर्जा एक ही दिशा में जाने लगती है। ये उस स्थिति से भटकाव है जिसे बुद्ध ने 'सम्यक' और कृष्ण ने 'समत्व' कहा।

सो अगर तुम पैसे कमाना चाहते हो तो ये ना सोचना कि मैं तुम्हें आध्यात्म की कोई घुट्टी पिलाऊँगा। मैं कहूँगा कि कमाओ, पैसे खूब कमाओ ऐसे कमाओ कि पहले कभी किसी ने ना कमाया हो। टूट के कमाओ, डूब के कमाओ, खुल के कमाओ। लेकिन एक बात का ध्यान रखना, पैसे कमाने के लिए गलत तरीकों का प्रयोग मत करना क्योंकि बाद में उनकी भरपाई करनी पड़ेगी। सही तरीके से जितना कमाना चाहते हो कमाओ क्योंकि तब तुम्हें पैसे का मोल समझ में आएगा। गलत तरीके से कमाए हुए पैसों का कभी मोल नहीं होता।

तुम्हें लगता है कि ये आसान काम है, कुछ परेशानियां उठाओ, थोड़ा रिस्क लो और ज्यादा पैसे कमाओ। ये विचार गर्त में ले जाने के लिए होगा। पैसे कमाने पर कोई बन्दिश नहीं है। जो भी कामनाएं हैं पूर्ण करो, निषेध का कोई मतलब नहीं है क्योंकि जब तुम उसे पूर्ण करोगे तो तुम उससे मुक्त होना जान जाओगे और तब मुक्त होना ज्यादा सरल होगा, ज्यादा सहज होगा। मन में कोई शिकवे और कोई सवाल नहीं बचेंगे क्योंकि जब तुम कोई चीज पूर्णता पर छोड़ते हो तो उसे सम्पूर्ण रूप से छोड़ देते हो।

❖❖

जब आप चित्त की चंचलता के पार चले जाते हो तो आप विशिष्ट कार्यों को करने के पात्र बन जाते हो। तब अस्तित्व आपको विशिष्ट कार्यों हेतु माध्यम चुनता है, या चुन सकता है। जिसकी संभावना शून्यता के घनीभूत होने पर निश्चय ही बढ़ती चली जाती है।

❖❖

बुद्ध कौन हो सकता है, अर्थात् किसे बुद्ध कहा जा सकता है। वो जिसके चित्त पर पूर्व संस्कारों की धूल की परत हट गयी हो। जब वह जीवन को किसी

चश्में से नहीं, नग्न आँखों से देख रहा हो। जब विचारों और निर्णयों में पूर्व के विचारों का कोई हस्तक्षेप न रह जाए। जब कुपात्र और सुपात्र में कोई भेद न रह जाए। दोनों को एक ही स्तर पर रखा जाए। जब चित्त स्थिर हो जाए और मन की चंचलता थम गयी हो। दोनों पूर्व की भांति हिलोरे न लेते हों। सभी कामनाएं पूर्ण हो चुकी हो, जब उनमें पूर्व की भांति रस न हो। जिसने इस प्रकृति के रहस्य को जान लिया, परमेश्वर के प्रेम तत्व को जान लिया, जब उसने जान लिया कि परम से जुड़ाव आज-अभी-यहीं-इसी पल में है, वही बुद्ध हो सकता है।

❖❖

जागृत व्यक्ति के चरण छूने का कोई प्रायोजन नहीं है क्या प्राप्त होगा तुम्हें इससे? अगर मन में अहो भाव जागता है, धन्य भाव जागता है और अगर चरण छूने की इच्छा ही करे तो कृष्ण के चरणों में गिरना क्योंकि वो तुम्हारे आध्यात्म के मार्ग को सहज कर सकते हैं। गुरु सिर्फ तुम्हारी मदद कर सकता है, तुम्हारी सहायता कर सकता है, इससे ज्यादा कुछ नहीं।

❖❖

अगर तुम्हारे अन्दर प्रश्न उठते हैं, अगर बार-बार ये प्रश्न तुम्हें परेशान करते हैं बार-बार जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं और अगर लगता है कि कोई इस उत्तर को पाने में कुछ सहायक हो सकता है तो वह सिर्फ सहायक ही हो सकता है। तुमने बिल्कुल सत्य ही सोचा क्योंकि इन प्रश्नों के उत्तर तुम्हें बाहर से कभी नहीं मिलेंगे। अगर जिज्ञासा बनी रही, प्रयास चलता रहा, उत्कंठा बनी रही और यदि ''मैं'' का भाव कम होता गया तो एक दिन स्वयं ही तुम उन प्रश्नों के उत्तर जान जाओगे। किसी और से नहीं मिलेगा तुम्हें ये उत्तर।

किसी और से आशा भी मत रखना क्योंकि कृष्ण स्वयं ही विराजमान हैं तुम्हारे अन्दर। तुम्हें करना है तो बस इतना कि मन के आवरण पर जमीं उस धूल को साफ करना है क्योंकि इस प्रकार तुम तैयार कर लोगे स्वयं को; जिस प्रकार पारे की छोटी-छोटी बूंदें एक दूसरे से मिलकर एक में ही समाहित हो जाती हैं, जिस प्रकार मेज पर बिखरी जल की बूंदें जिन्हे एक में ही मिला दिया जाए तो एक बड़ी बूँद ही बचती है। उसी प्रकार जब प्रदूषण जाता रहेगा तब तुम स्वयं

को तैयार कर लोगे क्योंकि 'मैं' तो तब तक विदा हो जाएगा क्योंकि तब तुम्हें पता चल जाएगा कि 'मैं' तो कुछ है ही नहीं। तब तुम अपनी शून्यता के अधिकारी बन जाओगे। तब बीच में कोई पर्दा ना रहेगा, कोई दीवार न रहेगी जिसे तुम पार न कर सको और तुम्हारी मूल की यात्रा आगे बढ़ जाएगी।

❖❖

हर व्यक्ति चाहता है कि उसे तर्कों के द्वारा स्पष्ट किया जाए। हर वैज्ञानिक और विद्वान व्यक्ति चाहता है कि तर्कों के माध्यम से अपनी बात सिद्ध कर दी जाए और सच ही है, ओशो ने इस सम्बन्ध में एक बहुत ही सुन्दर बात कही है कि विज्ञान और धर्म में जो भेद है वो ये है कि विज्ञान दो चीजों को जानता है ज्ञात और अज्ञात। जो चीज ज्ञात है और जो चीज ज्ञात नहीं है लेकिन भविष्य में कभी ज्ञात कर ली जाएगी और धर्म कहता है कि तीसरी चीज है जो ज्ञात और अज्ञात के परे हैं, जिसे अज्ञेय कहते हैं 'जिसे जाना नहीं जा सकता है'। ओशो ने कहा है जो इसे जानने जाता है वो स्वयं वही हो जाता है। इसलिए ज्ञात, अज्ञात के साथ अज्ञेय भी है। लेकिन विज्ञान और धर्म को अलग अलग मान लेना अन्याय होगा। धर्म विज्ञान से दूर नहीं हो सकता। धर्म में हर जगह विज्ञान छुपा है और विज्ञान धर्म के अभाव में निरंकुश हो सकता है।

❖❖

वहाँ ना दुख है, ना सुख है। बस शाश्वत शान्ति है, यही ओम है, यही शून्य है ।

❖❖

जब तक अशांति ना होगी तब तक शांति की प्यास कहाँ होगी? कभी-कभी जीवन में आए हुए कष्ट तुम्हें यही याद दिलाने के लिए होते हैं कि कुछ और भी ढूँढ़ना तुम्हारे लिए शेष रह गया है। उनका प्रयोजन यही होता है और उनका प्रयोजन समझने के लिए समर्पण एक समर्थ भाव है क्योंकि तब जिम्मेदारी तुम्हारी नहीं रह जाती। तब तुम अपनी जिम्मेदारी स्वयं प्रभु को दे देते हो। कृष्ण को दे

देते हो, वो तुम्हें याद दिलाते हैं कि अभी कुछ बाकी है, अभी भी कुछ छूट रहा है इस तरीके से जल्द समझ आ जाए तो ठीक, नहीं तो और तरीका सोचते हैं। ऐसी चीजें जो अरूचिकर हो सकती है, समर्पण के बाद उसका कोई ना कोई तात्पर्य मिल ही जाएगा।

❖❖

सिद्ध करें कि पुनर्जन्म एक वास्तविकता है। क्या हमने बादलों को एक ही बार बरसते देखा है? वो हर वर्ष बरसते हैं। वर्षा होती है, मौसम परिवर्तन होता है। गर्मी, गर्मी के बाद बरसात और उसके बाद जाड़ा, ये चक्र टूटता नहीं है फिर गर्मी आती है फिर बरसात होती है और फिर जाड़ा। दिन होता है और ढलता भी है रात होती है पर फिर दिन आता है। रेगिस्तान में दिन में गर्म लू चलती है धरती तपती है और रात में ठण्डी हवा, दिन में इतनी गर्मी कि कपड़े भी बर्दाश्त नहीं होते और रात में इतनी ठण्ड कि बिना कम्बल के सोना सम्भव नहीं है।

पृथ्वी, जिसका अस्तित्व पिछले पाँच अरब वर्षों से माना गया है। पाँच अरब वर्षों में केवल एक ही चीज होती चली आई है वो है परिवर्तन। ये होता ही है ये नहीं रूकता है। कितनी भी कोशिश कर लो प्रकृति चलती ही है। क्योंकि अगर ये रूक गया, अगर जीवन रूक गया तो नव जीवन कहाँ होगा? और नवजीवन के लिए विनाश जरूरी है और विनाश कोई दुख का कारण नहीं है, नवजीवन की सूचना है इसलिए विनाश को उत्सव रूप में मनाना चाहिए।

यदि जीवन कभी समाप्त ही नहीं होगा, यदि पृथ्वी पर पहले आने वाले प्राणी रूक गये होते, तो आगे आने वाले प्राणी किस प्रकार इस सृष्टि का अनुभव लेते? जिस प्रकार बच्चा जन्म लेता है एककोशिकीय स्वरूप में, फिर बचपन, युवावस्था, जवानी, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था, जरा और मृत्यु। कहीं कुछ रूका नहीं, सब बहता रहा। तो जब सब बह रहा है तो तुम्हें ऐसा क्यों लगता है कि तुम रूक जाओगे? सनातन धर्म में स्वास्तिक चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। स्वस्तिक एक चक्र को प्रदर्शित करता है जो सदैव चलता रहता है इसीलिए धर्म का नाम सनातन रखा गया जो सदैव रहता है, जो सत्य है, जो सदैव गतिशील है। यहाँ ऋषियों ने भी कभी रूकने की बात नहीं कही, तो तुम क्यों रूक जाना चाहते हो।

कृष्ण ने गीता में कहा- 'हे अर्जुन! कौन सा ऐसा वक्त था, जब तुम नहीं थे और मैं नहीं था और कौन सा ऐसा वक्त होगा जब तुम नहीं होगे और मैं नहीं हूँगा और ये वीर योद्धा नहीं होंगे? ये तुम्हारा कार्य नहीं, इस प्रकार से सोचने से तुम्हारा क्या तात्पर्य? तुम बस अपना कर्तव्य निभाओ, वही उचित है। इस शरीर को नश्वर मानकर और इस आत्मा को अजर-अमर मानकर तुम उस परमात्मा के स्वरूप का ध्यान करके, अपना चित्त उसमें अर्पित करके, अपने को पूर्णतया समर्पित करके, निश्चित होकर, बिना शंकाग्रस्त हुए, बिना किसी मोह और द्वेष के युद्ध करो।'

यदि तुम स्थिरता की इच्छा करते हो तो यह याद रखना कि इस संसार में केवल एक ही चीज स्थिर है और वो है परिवर्तन। ग्लेशियर से जल निकलता है पहाड़ी रास्तों से, कभी उद्वेग से, मदमस्त होकर, तेज प्रवाह से बहता है। किलकारी करते हुए, शोर मचाते हुए, स्वच्छ और पवित्र होकर, मैदानी इलाकों में पहुँचकर दूषित हो जाता है। विभिन्न कचरे, विभिन्न नालियों को अपने में आत्मसात कर लेता है लेकिन रूकने की कोशिश नहीं करता, अविरल ही रहता है। मनुष्य उसे रोक ना पाएगा, अगर बांध में भी इकट्ठा कर दे और बांध का बैराज न खुले तो वहीं से वाष्पित हो जाएगा, लेकिन रूकेगा नहीं। वो बहता हुआ जाकर समुद्र में मिल जाता है।

समुद्र से जल वाष्पित होकर वापस धरती पर या तो वर्षा के रूप में बरस जाता है या बहते हुए उसी समुद्र में जाकर मिल जाता है या फिर पहाड़ों या पर्वतों पर ग्लेशियर का रूप धारण कर लेता है। ये एक चक्र है जो चलता ही रहता है। यह एक सत्य है जिसे समझ लेना उचित होगा, क्योंकि ये कई प्रश्नों को गिराने में सक्षम हो सकता है।

❖❖

शून्यता का तात्पर्य ये नहीं कि शास्त्रों या किताबों में लिखी हुई बातों को जान जाना। लेकिन हाँ, इससे शास्त्रों का मर्म आपको प्राप्त हो जाता है। आप बिना पढ़े ही उसका मतलब समझ सकते हैं क्योंकि उन लाइनों के बीच, उनके पेजों के बीच क्या है? ये समझने के लिए आपको वह पढ़ना पड़ेगा, जो लिखा नहीं जा सकता।

❖❖

जब भी मन तरंगित होता है, चेतना अपने साम्य से विस्थापित हो जाती है या विचलित हो जाती है। ये जो विक्षेप है, इस बात पर निर्भर करता है कि मन कितना तरंगित है या और कितनी देर तरंगित रहेगा और कितनी जल्दी साम्य में आ गया। मन के शांत होते ही चेतना अपने साम्य में आ जाती है।

❖❖

जीवन का क्या मूल्य है? जीवन का मूल्य एक टोकरी मिट्टी द्वारा समझा जा सकता है। दो अलग-अलग व्यक्तियों के हाथों में ये किस प्रकार अलग-अलग प्रभाव पैदा करती है। एक व्यक्ति इसे उठा कर सड़क पर फेंक सकता है और दूसरा इसे बगीचे में ले जाकर इसमें पेड़ लगाकर एक नवजीवन उत्पन्न कर सकता है। ये है जीवन का मूल्य, चाहे उसे फेंक दो, चाहे उससे जीवन उत्पन्न कर लो। किसी खेत में पड़ी हुए मिट्टी का क्या मोल है? किसी व्यक्ति के हाथों में वही मिट्टी १५-२० हजार रूपये में बेची जाती है वही किसी दूसरे व्यक्ति को दे दिया जाए तो वो उसमें पेड़ लगाएगा आम के, अमरूद के जो समय आने पर फल देंगे और समय आने पर वो उनसे अपना व्यापार कर लेगा।

तीसरा व्यक्ति खेत में अनाज बोकर मेहनत करता है, समय आने पर अन्न पक जाता है, काट लिया जाता है और उसका मूल्य मिल जाता है। जीविका चलती है काम चलता रहता है, बच्चे पढ़ते रहते हैं, भोजन-पानी मिलता रहता है। पत्नी को साड़ी मिल जाती है, स्वयं के लिए वाहन की व्यवस्था हो जाती है और चौथे व्यक्ति के हाथों में उसमें तुलसी के पौधे लग सकते हैं, जो एक समय आने पर वृन्दावन का रूप ले सकते हैं। वृन्दा का मतलब है तुलसी, और उस वृन्दावन में वो भक्त कृष्ण को आमंत्रित करे, उनका ध्यान करे। वही स्थल एक मन्दिर बन जाता है, वृन्दावन बन जाता है जहाँ अनंतकाल तक कृष्ण अपनी गोपियों के साथ नृत्य कर सकते हैं। चार अलग-अलग व्यक्तियों के हाथों में मिट्टी चार अलग-अलग कार्य कर सकती है। ये विवेक के ऊपर है कि वो उसका क्या मूल्य समझता है, कितना मूल्य जानता है और उसका क्या उपयोग करता है?

❖❖

प्रभु ने हमारे चारों तरफ इस संसार के रहस्य को समझने के लिए पर्याप्त संकेत छोड़े हैं। हर एक प्राकृतिक रचना, आप उससे संकेत प्राप्त कर सकते हैं। उससे समझ सकते है, जान सकते हैं। ये उतना ही सरल है, जितना कि मुश्किल। बस, यह अलग-अलग व्यक्ति पर निर्भर करता है । उसकी परिस्थिति, उसके कर्मबंधन, उसके कर्तव्य, उसकी भक्ति, उसके समर्पण और उसके भाव पर निर्भर करता है कि कब वो इन संकेतों को आसानी से समझ पाएगा, एक जीवन काल से लेकर कई जीवन काल लग सकते हैं। देखना मुश्किल इसलिए हो जाता है क्योंकि मन की आंखों के सामने और इस संकेत रूपी सत्य के बीच में एक जाली पड़ी होती है जिसे हम खुद बनाते हैं। जिस पर समय के साथ यादों की परत जमती जाती है, पार देखना और मुश्किल हो जाता है।

सत्य कहीं दूर नहीं है, कभी दूर नहीं था लेकिन बीच में ये जो परत है, जो जाल है, यदि प्रयास करके इस जाल को साफ न किया जाएगा, तो इसके पार न देखा जा सकेगा। किन्तु यदि देखना है तो सबसे पहले इसे साफ करना पड़ेगा। आवरण को हटा देना होगा। आपके और सत्य के बीच में वो जो आखिरी पर्दा पड़ा है वो भी हट जाए तब तुम्हें कहीं जाना न पड़ेगा। किसी से पूछना न पड़ेगा, किसी के पीछे दौड़ना न पड़ेगा। धर्मस्थलों के चक्कर न काटनें पड़ेंगे, परमधामों की यात्रा न करनी पड़ेगी क्योंकि तब तक परमधाम खुद तुम्हारे सामने प्रकट हो चुका होगा, अब तुम्हें कहीं और जाने की जरूरत नहीं। इन परमधामों की रचना की गयी ताकि तुम खोजो।

हर व्यक्ति खोजता है, यात्रा स्वयं ही करनी पड़ेगी। हाँ, अगर चाहो तो मदद मिल सकती है, हर कदम पर हर मोड़ पर, चाहो तो मदद मिल सकती है। तुम्हारी भक्ति और तुम्हारा प्रेम। भक्ति भी ऐसी हो कि उसमें प्रेम हो, तत्पश्चात समर्पण। तब तुम्हें कुछ न करना पड़ेगा, तब तुम चलते रहोगे, तुम्हें सिर्फ कदम हिलाने होगें, रास्ता भी चुनना होगा, संकेत खुद ही मिलते रहेंगे। तुम्हारा सिर्फ प्रयास ही होगा, जिम्मेदारी कृष्ण की, तुम्हें वहाँ पहुँचाने की जहां तुम्हारा शाश्वत पड़ाव है।

❖❖

संन्यासी सिर्फ भगवा रंग के कपड़े ही क्यों पहनते हैं क्योंकि ये रंग सिन्दूरी रंग से काफी मिलता जुलता है। सिन्दूरी रंग जिसे हनुमान जी ने प्रतीक बना दिया समर्पण का, भक्ति का। जब उन्हें पता चला कि ये अपने स्वामी के लिए लगाया जाता है तो उन्होंने स्वयं को पूरा सिन्दूरी रंग में ही लपेट लिया। ठीक उसी प्रकार सन्यासी समर्पित हो जाते हैं उस प्रकाश के लिए, जो सूचक है, सब कुछ पीछे छोड़ने का और इस तथ्य का कि वो आगे बढ़ गये हैं, समर्पण के पथ पर।

वे समर्पित हैं अपने प्रश्नों के उत्तर को जानने के लिए, खुद को खोजने के लिए, अपने अस्तित्व को, उन बातों को जानने के लिए जो उनमें सदैव से हैं लेकिन कभी उन्हें पहचाना न गया । उनकी इस पृथ्वी पर क्या आवश्यकता है? क्या महत्ता है? कौन से कार्य हैं? ये सभी प्रश्न और इन सभी प्रश्नों के उत्तर के प्रति समर्पण।

❖❖

एक संन्यासी बहुत कम संसाधनों में ही अपना जीवन-यापन क्यों करता है, क्योंकि वो समझता है प्रकृति से सिर्फ उतना ही लेना ठीक है जितने से ये जीवन चलता रहे और प्रायोजन सिद्ध होता रहे और उसका कार्य अपनी गति से आगे बढ़ता रहे। जरूरत से ज्यादा लेने पर उसका पाचन मुश्किल हो सकता है। चाहे वो भोजन हो चाहे वो अन्य संसाधन हो। वो आपको भारी बना देते हैं। आप इस धरती से, भार द्वारा जुड़ते हैं। इसलिए सन्यासी को हल्केपन के लिए प्रयास करना चाहिए क्योंकि ये हल्कापन उसके शरीर को चलायमान बनाए रखने में सहायक होगा ताकि इस यंत्र का प्रयोग अपने कार्यों को संपादित करते रहने में किया जा सके।

❖❖

तुम्हें अपने कम संसाधनों पर दुख होता है तुम्हें लगता है- बहुत कम है, मित्रों के पास ज्यादा है। लेकिन साथ ही साथ बड़ा सुन्दर अवसर है तुम्हारे लिये, इसे बड़े स्टेज में तब्दील कर दो। जो भी करो आनन्द से करो, फल की चिन्ता मत करो। जो भी कार्य चुनों पूर्ण आनन्द से, क्योंकि आनन्द से किया गया कार्य चाहे वह पढ़ाई हो, तो वो तुम्हें इस प्रकार के रिजल्ट देती है जिसकी तुमने कल्पना

भी न की हो और कल्पना इसलिए न की हो क्योंकि जब तुम आनन्दित होते हो और उन आनन्द के क्षणों में अपने कार्यों को संपादित करते हो। तब फल के बारे में बहुत नहीं सोचते और तब तुम अपना सर्वश्रेष्ठ देते हो। ये कितना सुन्दर मौका है तुम्हारे लिए कि तुम्हें जो संसाधन मिले हैं, उसे तुम बड़ा कर लो। कल, जब तुम्हारी मेहनत परिणाम देने लगेगी, तब तुम्हें इसका स्वाद मिलेगा, तब तुम्हें ज्ञात होगा, क्या पाया? संसाधन कभी समान नहीं रहते, जिनके ज्यादा हैं, कम हो सकते हैं लेकिन जिनके पहले से ही कम हैं, उनके और कितने कम होंगे। छूने के लिए आकाश है तुम्हारे पास। लेकिन दुखी और चिंतित होकर मन में कोई प्रश्न रखकर, कोई कार्य मत करना क्योंकि ये तुम्हारे प्रयासों की धार को कुंद कर सकता है।

पूर्णतया आनन्दित होकर कोई कार्य करना और फिर जो फल तुम्हें प्राप्त होगा, वह तुम्हारी और तुम्हारे आने वाली पीढ़ियों के लिए बड़ा ही स्वादिष्ट होगा। मौके का पूर्ण उपयोग करो क्योंकि तुम्हारे लिए नीचे जाने का प्रश्न ही नहीं। तुम्हारे पास सीढ़ी है जो सिर्फ तुम्हें ऊपर ले जाएगी, क्योंकि तुम खुद ही धरातल पर बैठे हो। आनन्द पहले से उपस्थित चीजों पर अपना नाम लिख देने में नहीं बल्कि अपनी संरचनाएं खुद बनाने में है।

❖❖

भूत, अब विदा हो चुका है, भविष्य में कोई रस नहीं। बस, अब वर्तमान का आनन्द और कुछ नहीं। यही शून्य की झलक है, शून्यता का स्वाद लेने की तुरन्त बाद की अवस्था। पुस्तकों से अरूचि, स्वयं में ही स्थित होने का भाव, पूर्व के बंधन से मुक्ति, भविष्य की इच्छाओं से मुक्ति, भक्ति भाव की जगह शून्यता ने ले ली है। जिन पुस्तकों को घर से लिए बिना बाहर निकलना न बनता था, अब उन्हीं पुस्तकों में रूचि नहीं, लेकिन शरीर के चक्र और उनकी ऊर्जाओं को जानने की इच्छा अभी भी व्याप्त है, हालांकि उनमें अवलंबन नहीं। ध्यान और सहज।

आसन और योगाभ्यास एक आवश्यक प्रक्रिया प्रतीत होती है इसका अभ्यास निरन्तर करना आवश्यक है, इस साम्य से विचलित न होने की इच्छा, शरीर को और हल्का करने का भाव, लेकिन इसके प्रति अवलंबन नहीं। इन विचारों को

रिकार्ड करना और उन्हें सहेजना। स्थान की कोई महिमा नहीं, विशेषत: उस स्थान की, उस पल की, उस अवस्था की महत्ता नहीं। इस शून्यता को घनीभूत करने की इच्छा व भाव।

❖❖

लगता है आध्यात्मिकता जन्म के समय से ही आपमें उपस्थित रहती है। ये प्रकृति और ईश्वर प्रदत्त है, बस उपयुक्त समय आने पर इसका बोध, इसकी झलक प्राप्त होने लगती है। कभी कुछ परिस्थितियों के संयोगवश, कभी स्वयं की इच्छावश। समर्पण भाव में स्थिति हो तो प्रकृति ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न करती है जब आप इसकी तरफ स्वयं ही आकर्षित हो जाते हैं, उद्धत हो जाते हैं, खोजने की इच्छा प्रबल हो जाती है। पूर्व उपस्थित आदतों में न इच्छा, न ही अनिच्छा, न पक्ष, न विपक्ष, बस, उदासीनता।

विचार मन को छूते नहीं, बस दूर से निकल जाते हैं। किसी साधक की मदद करने का तीव्र भाव। व्यक्ति नहीं परन्तु विचारधारा के विरोध की इच्छा। लगता है सभी ओर एक आनन्दमयी शान्ति छायी है, खेतों से हवा बह रही है लेकिन समय का अभाव है। समय के अभाव में, कुछ महसूस भी नहीं हो रहा। लगता है छुपाने को अब कुछ बचा नहीं और पाने को अब कुछ रहा नहीं, बस उदासीनता। न आपके अनुगृहीत होने में मेरी कोई इच्छा, ना ही आपके ध्यान न देने में मेरी कोई अनिच्छा। बस आपको, शून्यता को सोचना।

जिस प्रकार का आदेश प्राप्त हो उसी प्रकार कार्य सम्पन्न करते जाना । बुद्ध व्यक्ति की अवस्था जैसा मुझे प्रतीत होती है, चाहे घर में जगह मिले, चाहे गाँव की पगडण्डी पर, एक जैसी, उन स्थितियों में कुछ भी अन्तर नहीं प्रतीत होता है। बुद्धत्व का तात्पर्य कुछ होना नहीं बल्कि कुछ न होना है। शायद इसी को शून्यता कहते हैं बस इससे ज्यादा कुछ नहीं। अब लगता है सिर्फ एक माध्यम ही हो गया और कुछ नहीं, बस एक माध्यम।

❖❖

जिस प्रकार सौर मण्डल में स्थित सारे ग्रह बीच में स्थित सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं ठीक उसी प्रकार शरीर में उपस्थित परमाणु उनके बीच स्थित न्यूट्रान व प्रोटॉन और चारों ओर चक्कर काटते इलेक्ट्रॉन। डेविडसन ने बताया कि इलेक्ट्रान में पदार्थ और तरंग दोनों के गुण होते हैं अर्थात् ये पदार्थ भी हैं और प्रकाश भी। इलेक्ट्रान और प्रोटॉन के होने से परमाणु चुम्बक की भाँति कार्य करता है। परमाणु और इस छोटे चुम्बक की चुम्बकीय शक्ति द्वारा जुड़कर अणु का निर्माण करते हैं। आइंस्टीन का दृढ़ विश्वास था कि द्रव्यमान (मास) और इलेक्ट्रोमैग्नेटिक फील्ड के बीच में सम्बन्ध एक सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। वे इस पर कार्य कर रहे थे परन्तु उन्होंने बीच में ही शरीर त्याग दिया। अन्य वैज्ञानिकों की भी यही राय है कि भविष्य में इस सूत्र को खोज लिया जाएगा। स्वामी परमंहस योगानन्द ने अपनी पुस्तक में इसका बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड का विन्यास और शरीर की सबसे छोटी इकाई का विन्यास एक ही है। अत: ब्रह्माण्ड को समझने के लिए स्वयं को समझना होगा।

❖❖

डॉ. अब्दुल कलाम का यह कथन कि सारे धार्मिक विचारों की परिणति अन्त: आध्यात्मिक विचारों में हो जानी चाहिए इसका तात्पर्य यही है कि जब आप आध्यात्मिक हो जाते हैं, आपको स्वयं की प्राप्ति हो जाती है तो उसी वक्त आप जान जाते हैं कि आपका तत्व और उपस्थित सभी व्यक्तियों का तत्व एक है, तब स्वयं के लिए करना कुछ विशेष मायने नहीं रखता। तब आप स्वयं से उपर उठ जाते हैं, तब आप सभ्यता के हो जाते हैं । जिन महान व्यक्ति और वैज्ञानिकों ने अपना जीवन समाज के लिए समर्पित कर दिया इसके पीछे कहीं ये ही सोच कार्य करती है।

❖❖

हर वो धर्म, जो आपके वस्त्र और उनके विन्यासों में रूचि लेता है उससे दूर से ही निकल जाना क्योंकि ये काम तो एक दर्जी भी कर सकता है। कृष्ण के पास जाइए वो आपको आन्तरिक यात्रा पर ले जाने के लिए तैयार बैठे हैं। ये पूरा

संसार एक मायाजाल है जिसका विन्यास कुछ इस प्रकार है कि आपको ऊपरी सतहों पर ही व्यस्त करके, मग्न रखा जा सके। साथ ही साथ में कुछ जगहों पर जैसे साँप-सीढ़ी खेल में सीढ़ियाँ होती हैं, जो सही चाल चलने पर, कुछ खाने आगे या कुछ लाइने आगे बढ़ा देती हैं, ऐसे सूत्र भी छोड़े गये हैं। अब ये आपके ऊपर है, आप इसे किस प्रकार खेलते हैं।

❖❖

सत्य केवल उन्हीं को अपना माध्यम चुनता है जो शून्य हो चुके हों। जो सत्य को नग्न रूप में प्रस्तुत कर सके, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वे प्राप्त करते हैं। अपनी तरफ से उसमें ना कुछ मिला सकें, ना कुछ घोल सकें। यदि सत्य तक पहुँच बनानी है तो शून्यता को घनीभूत करते जाना होगा। तो कोई तुम्हें ये कहे कि किसी स्त्री को देखकर तुम्हारे मन में विचार आता है तो उस स्त्री का कपड़े पहना कर पूरा ढक दो ताकि तुम उसे देख ही ना सको, या अपनी आँखें नीची कर लो या बन्द कर लो।

उसका आशय सिर्फ इतना है कि यदि तुम्हें बुखार है तो ऊपर से कम्बल ओढ़ लो या यदि तुम्हें बुखार है तो ऊपर से माथे पर एक कपड़ा लपेट लो ताकि यदि कोई तुम्हारा सर छुए, तो उसे तापमान सामान्य लगे। ये एक समस्या को दबाना हो सकता है उपचार नहीं। उपचार तो ये है कि ये बुखार किस प्रकृति का है? टॉयफाइड है या मलेरिया? किसी वाइरल इन्फेक्शन से है या बैक्टीरियल इन्फेक्शन से या कोई अन्य ही परेशानी है, वह परेशानी ढूँढ कर उसी का इलाज करें।

यदि कोई बैक्टीरियल फीवर है तो एन्टीबायोटिक्स दें, यदि मलेरिया हो तो एन्टीमलेरियल। तुम्हारे माथे पर कपड़ा लपेट कर तुम्हें ये भाव न दे कि बुखार ठीक हो गया। भाव यह दे कि तुम्हें बीमारी दबाने नहीं उपचार की जरूरत है जो सिर्फ आन्तरिक तल पर या आत्मा के तल पर ही हो सकता है। ऐसे सभी विचारों से दूर से ही बचकर निकल जाना जो तुम्हारी आन्तरिक संरचना पर कार्य करने के बजाय, तुम्हारे वस्त्र विन्यास पर ज्यादा रूचि लें, क्योंकि ये काम तो एक दर्जी

बेहतर कर सकता है कि तुम्हें किस अवसर पर कौन सा कपड़ा पहनना चाहिए? इसके लिए तुम्हें किसी धर्म के पास जाने की जरूरत नहीं है।

❖❖

यदि आप किसी धार्मिक या आध्यात्मिक पुस्तक को पढ़ रहे हो तो इस बात का ध्यान रखना कि वह पुस्तक, वह विचार उसके मूल स्रोत से ही आया हो। किसी अन्य व्यक्ति या विचारधारा ने बीच में आकर, (जो जागृत नहीं है) उसे कहीं प्रदूषित न कर दिया हो। यदि प्रदूषित पुस्तक पढ़ेंगे तो मन सिर्फ प्रदूषित ही होगा। जैसे कई बातें वुद्ध पुरुषों ने कही लेकिन उनका अनुवाद किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा किया गया जिसने शून्यता का अनुभव नहीं किया। जो सत्य को सत्य ही नहीं बोल सकता, वो अपने विचार, उसमें मिला-जुला कर तुम्हें देता है।

ऐसी पुस्तकों को पढ़ने का कोई प्रायोजन नहीं, मूल विचारों को जानना और उस पर मनन करना ही उचित है। ऐसे व्यक्ति जो किसी मूल पुस्तक या विचार जो किसी जागृत व्यक्ति द्वारा आई हो, यदि उसमें अपने विचारों का प्रदूषण करता हो तो ये घोर अन्याय होगा, उस पुस्तक के साथ घोर अन्याय होगा सत्य के साथ। तुम सत्य के साथ अन्याय कर सको, ऐसी सामर्थ्य किसी में नहीं। ऐसा प्रयास भी मत करना, क्योंकि गिर के उठा तो जा सकता है लेकिन पाताल से निकलने में बहुत समय व्यतीत हो जाएगा।

इसीलिए बुद्ध और रामकृष्ण परमहंस ने कहा कि मुझ पर आँख मूँद कर विश्वास न कर लेना, यदि तुम आँख मूँद कर विश्वास कर लोगे तो तुम्हारे अन्दर बैठी उस आत्मा से तुम्हारा परिचय कैसे होगा? जो मैं कहता हूँ उसका मनन करो, खोज करो कि वो सत्य है कि नहीं, यदि सत्य नहीं है तो उसे स्वीकार मत करो। ऐसे सभी विचार जो आपके सोचने और समझने की शक्ति को अवरूद्ध या कुन्द कर देते हों उनसे बचने की आवश्यकता है। तो ऐसा कोई भी धर्म जो तुम्हें प्रश्न करने की आजादी ना दे, उस पर एक बार विचार करना क्योंकि प्रश्न तुम्हारे विचारों को उन्नत व परिष्कृत करते हैं। तुम जानना चाहते हो, तभी प्रश्न करते हो तुम जानना ही नहीं चाहोगे तो प्रश्न कहाँ करोगे?

यदि कोई विचार तुम पर थोपा जाए और तुम्हें प्रश्न करने की आजादी भी ना हो तो सोचना जरूर क्योंकि सत्य नग्न होता है, स्वतंत्र होता है, प्रत्यक्ष होता है। उसे छुपाने, उसे आवरणों में ढकने और उसे अदृश्य करने की सभी कोशिशें व्यर्थ हो जाएंगी, व्यर्थ ही होती रही हैं सदियों से और आगे भी व्यर्थ ही होती रहेंगी।

मक्खियाँ ८० से ज्यादा प्रकार की बीमारियाँ फैलाती हैं, सिर्फ इस कारण से कि वो जिस गन्दी चीज पर बैठती हैं, वहाँ से बीमारी के कीटाणु उठा कर तुम्हें दे देती हैं, तो अगर मक्खियों द्वारा फैलने वाली बीमारियों को ही सही करना है तो उस मक्खी को साफ करने के बजाय क्यों न हम गन्दगी ही ना करें। गन्दगी ही न फैलने दे कहीं। जितना भी हो सके अपने आस पास की जगह को स्वच्छ रखें। जब वो जगहे स्वच्छ रहेंगी तो मक्खी उस जगह पर बैठ के कहाँ से बीमारियाँ उठाएंगी, जो वो किसी और व्यक्ति को दे पाए। मक्खी सिर्फ एक माध्यम है, माध्यम को खत्म करके क्या पाओगे? गन्दगी को ही खत्म कर दो मक्खी अपने आप कम हो जाएंगी।

❖❖

किसी और चीज की चिंता न करना, अपनी ज्ञान प्राप्ति की भी चिंता न करना, अपनी सत्य की प्राप्ति की भी चिंता न करना क्योंकि यदि समर्पण कर दिया है तो तुमने यह कार्यभार कृष्ण को दे दिया। ये काम वो तुम्हारे लिए करेंगे। तुम्हें मात्र एक काम करना है, अपनी शून्यता को घनीभूत करना है, बस। हर वो अप्राप्य चीज जो प्राप्त नहीं, वो प्राप्त होती जायेगी। इसी को योग कहते हैं अगर तुम्हें योग की प्राप्ति हो जायेगी तो उसका ''क्षेम'' तुम्हें खुद ही करना पड़ेगा। ''क्षेम'' का मतलब प्राप्त वस्तु की रक्षा। सिर्फ एक ही कार्य बचा रह जायेगा, शून्यता को घनीभूत करने का।

❖❖

बुद्ध कहते हैं तुम आये हो मेरे पास अपने प्रश्नों से परेशान होकर। तुम चाहते हो कि ये उत्तर मैं दूँ। मैं चाहता हूँ कि ये उत्तर तुम स्वयं ढूँढो मैं तुम्हारी इसमें सिर्फ मदद कर सकता हूँ क्योंकि मेरे उत्तर देने से समस्या सुलझेगी नहीं, बस कुछ समय के लिए टल जायेगी। मुझसे उत्तर पाकर भी क्या संतुष्ट हो पाओगे? बात को

आप सुनोगे लेकिन कुछ ही दिन में भूल जाओगे, जब ये बात तुम्हारे अन्दर से स्वयं ही आए तब तुम इसका मोल पूरी तरह से समझ पाओगे। जब तुम्हारे अन्तस में प्रकाश आ जाए तब तुम्हें किसी और की बातों को सुनने में रुचि न होगी।

कुछ समय के लिए शायद तुम्हें लगे कि हाँ, यह बात तार्किक है। तर्क की कसौटी पर कसूँ तो ये बात मतलब पैदा करती है। अब ये बोल रहे हैं तो शायद सही बात हो, तुम शायद संतुष्ट होकर वापस चले जाओ। लेकिन प्रश्न तो प्रश्न है कुछ प्रश्नों का उत्तर मिलेगा तो नये प्रश्न जन्म ले लेंगे। क्योंकि प्रश्न जहाँ जन्म लेते हैं तुमने वहाँ पर कुछ कार्य नहीं किया। ओशो ने कहा है, मुझे तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर देने में रूचि नहीं है मै चाहता हूँ कि तुम्हारा प्रश्न ही गिर जायें।

❖❖

धूल पुराने पदचिन्ह मिटा देती है। इसलिए हर व्यक्ति को अपने पदचिन्ह बनाने पड़ते हैं और समय की धूल उन पदचिन्हो को भी मिटा देती है, परन्तु मार्ग दर्शन तो मिलता है। मार्गदर्शन संकेतों के रूप में मिले या सहायता के रूप में लेकिन मिलता अवश्य है। अपने पदचिन्हों का स्वयं निर्माण करना ही बेहतर है क्योंकि हर एक मनुष्य अलग है उसके प्राकृतिक स्वभाव भी अलग हैं। एक चीज जो दूसरे के लिए ठीक हो, शायद तीसरे के लिए ठीक ना हो और सफर का आनन्द भी इसी में है कि अपना मार्ग स्वयं ढूँढ़ा जाए।

❖❖

जीवन को पूर्ण आनन्द से जीना एक पूजा है। आपने जीवन पूर्ण आनंद में जिया, अर्थात् परिधि में अपने रूचि न ली।

साम्य से भटकर आप जीवन का आनन्द कैसे ले सकते हैं? क्योंकि बाह्य आकर्षणों में रूचि लेना तो फिर से कामनाओं को जगाना होगा। याद रखना कि तुम्हें जीवन का आनन्द लेना है और आनन्द शाश्वत है। ये सदा अन्दर से बाहर की ओर ही बहता है। इसलिए आनन्द लेते वक्त और इसका अनुभव करते वक्त ऊर्जा का प्रवाह सदैव भीतर से बाहर ही होगा।

तब तुम्हें आनन्द लेने के लिए किसी विशेष जगह पर जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। तुम जहाँ पर हो वहीं ये प्राप्त हो सकता है। साम्य से बाहर आने पर दुख और सुख फिर से परेशान करने लगते हैं, साम्य पर रहना ही उचित है। शायद जब आप आनन्द में होते हैं तब समय का भी ज्ञान नहीं होता। समय तब ज्यादा लम्बा लगता है, जब दुख या सुख अपने चक्र में होते हैं। लाओत्से ने कहा– 'आन्तरिक यात्रा तब शुरू होती है जब आप जान जाते हैं कि आप कौन हैं?'

❖❖

विचारों का कोई मोल नहीं, शून्यता का मोल है ।

❖❖

क्रोध, काम से कहीं ज्यादा हानिकारक है आध्यात्मिक जीवन के लिए। क्योंकि इसका प्रभाव शरीर पर कई घण्टों तक बना रहता है और पूरी तरह से सामान्य अगले दिन ही हो पाता है। पर कभी–कभी कुछ लोगों के सम्बन्ध में ये कुछ घण्टे, कुछ दिनों तक लम्बे खिंच सकते हैं। काम को ज्यादा महत्व देने की आवश्यकता नहीं। जिस प्रकार दूसरी इन्द्रियाँ, जब उन्हें आवश्यकता होती है, उनकी पूर्ति करने के तुरन्त पश्चात् संतृप्त हो जाती हैं। भूख लगती है भोजन कर लेते हैं, उसके बाद भूख से ध्यान हट जाता है। फिर आप अपनी पूरी ऊर्जा के साथ काम में लग जाते हैं।

उसी प्रकार से 'काम' भी कुछ ऐसा ही है। गृहस्थों को इसे दबाना, ढकना या दिमाग से बिल्कुल निकालने के प्रयत्न की अपेक्षा, विचारहीन होकर इसकी पूर्ति करके वापस अपने काम में प्रवृत्त हो जाना, समय की बचत करना है और इसे कोई अन्य विशेष अधिकार नहीं देना है, अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा। सुन्दर यही है कि पूरी निष्ठा से अपनी भूमिका को पूरा करते रहा जाए। जिस भाव या काम को जितना दबाओगे वो उतना ही उभर के बार–बार आएगी। जिस प्रकार भूख लगने पर भोजन करके उस इच्छा की पूर्ति कर ली जाती है। उसी प्रकार काम से मुक्त होने का सबसे आसान उपाय, उसे जान लेना है। उसे जान लेने के बाद आपकी मुक्ति का मार्ग व द्वार खुल जाता है।

❖❖

चित्त पर जमा कचरा साफ होता जाएगा। ध्यान में उतरना भी सहज होता चला जाएगा। जिन्होंने ध्यान के प्रयोग अभी नये-नये शुरू किये हैं उनके लिए आवश्यक है कि वो विरेचन विधियों का प्रयोग करें। प्राणायाम अच्छा मार्ग हो सकता है, सहायता करता है विरेचन में। साथ ही सक्रिय ध्यान द्वारा प्रदूषण को बाहर निकालें तो ध्यान में उतरना ज्यादा सहज हो जाएगा।

❖❖

धरती को 'माँ' इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें जन्म देने की क्षमता है अपूर्व क्षमता, शाश्वत क्षमता है और ये एक 'माँ' ही कर सकती है। यदि तुम्हें रत्न और मिट्टी में से चुनने को कहा जाए तो चुनना मिट्टी को क्योंकि रत्न एक नया रत्न नहीं पैदा कर सकता है लेकिन मिट्टी में अपूर्व प्रजनन की क्षमता होती है। वो कई वृक्ष, कई पेड़, अन्न उगाकर तुम्हें कई रत्न खरीदने की क्षमता प्रदान कर सकती है परन्तु एक रत्न नये रत्न को पैदा नहीं कर सकता।

जिस प्रकार एक माँ बच्चे को जन्म देती है। बच्चे के भोजन-पानी का प्रबन्ध करती है, पीने को जल देती है, खाने को अन्न देती है, उसके मल-मूत्र को भी साफ करती है और अन्त में जब बच्चा थक जाता है तो उसे अपनी गोद प्रदान करती है, सोने के लिए। ठीक उसी प्रकार धरती भी जन्म देती है, अन्न देती है, जल देती है और मल-मूत्र को भी खुद में समाहित करने में कभी हिचक नहीं दिखाती है और नींद आने पर सोने के लिए पूरी बाँहे पसार देती है। अत: धरती को 'माँ' कहा गया है।

❖❖

एक मदमस्त पहाड़ी नदी, जो एक पहाड़ से नीचे उतरती है। तुम कोई गैर नहीं, उसी में समाहित एक छोटी बूँद हो। अब तुम्हारा कोई अस्तित्व नहीं है तुम कुछ भी नहीं हो, तुम पूरी नदी हो तुम उस सफेद निर्मल पानी के साथ टेढ़े रास्तों से चट्टानों से टकराते हुए, पहाड़ों के बीच में से बहते हुए, जिसके दोनों तरफ नदी के वन हैं। उस सुन्दर दृश्य को निहारते हुए सुख और दुख से मुक्त, आनन्द के साम्राज्य में, जो कि शाश्वत है, बहे चले जा रहे है।

कोई कष्ट तुम्हें छू नहीं सकता है क्योंकि तुमने भ्रम को त्याग दिया। तुमने स्वयं को समर्पण के द्वारा विलीन कर दिया है। तो आओ, बहने का आनन्द लो, उन दृश्यों का आनन्द लो, जो तुम कभी ना देख पाते। उसमें समाहित होने का आनन्द, ईश्वर के होने का आनन्द, ये सब आनन्द तुम्हारा है। कोई तुम्हें इससे अलग नहीं कर सकता क्योंकि तुमने खुद को विसर्जित कर दिया है। अब तुम, तुम नहीं रहे, अब तुम शून्य हो गये हो और शून्य को भला कोई बाँध सकता है?

जब तुम स्वहित के लिए कार्य करना बन्द करके परहित के लिए कार्य करना शुरू कर देते हो, तो मान लेना कि ईश्वर की कृपा आनी शुरू हो गयी है क्योंकि पूरी की पूरी सृष्टि, पूरी की पूरी कायनात सिर्फ दूसरों हेतु ही कार्य करने में व्यस्त है, दूसरों को ही देने में व्यस्त है। स्वयं के लिए कोई कुछ नहीं करता, पहाड़ अपने ऊपर उगने वाले वनस्पतियों का उपयोग स्वयं नहीं करते हैं। उनके लिए अपने ऊपर-फैले वनों का क्या उपयोग? ऊपर छाए ग्लेशियर सदा से ही दूसरो के लिए जल अर्पित करते आए हैं। एक नदी अपना सफर ऊँचे पहाड़ से शुरू करती है, और समुद्र तक वो दूसरो को पानी ही देती चली जाती है। पीने के लिए, सिंचाई के लिए, प्रभु को नहलाने के लिए हो या बाथरूम की गन्दगी को धोने के लिए, उसका कोई विरोध नहीं है।

पेड़ अपना पूरा का पूरा जीवन धूप में खड़े होकर आंधी को झेलते हुए, तेज हवाओं के थपेड़ों को व सर्दी-गर्मी बर्दाश्त करते हुए, सभी में सम भाव रखते हुए, तुम्हें सिर्फ छाया, लकड़ी और फल ही प्रदान करते रहते हैं। तुम उनसे प्रेम करो या उनको काट डालो, वे हर एक भाव में सामान्य हैं। मेघ कभी अपने लिए नहीं बरसते, तो जब कभी किसी को परहित करते हुए देखना तो समझ लेना उसमें ईश्वर ने उतरना शुरू कर दिया है। वह ईश्वर से कहीं ज्यादा निकट है।

हम धरती का व्यापार किए जा रहे हैं, उसे ही टुकड़ों-टुकड़ों में दूसरों को बेचकर धन कमाते रहे हैं लेकिन धरती ने उसका कोई विरोध नहीं किया है। वह बिल्कुल समान भाव से पूरी तरह स्वयं को समर्पित कर देती है। अब चाहे तुम उस पर मन्दिर बनाओ चाहे उस पर वन उगाओ, चाहे तुम उस पर अन्न उगाओ, चाहे तुम उसको बेच दो, उसका पूरा समर्पण है।

❖❖

हमारे दुखी होने का एक ही कारण है कि हम प्रकृति के शाश्वत नियमों के विपरीत जा रहे हैं और प्रकृति के पास इतना आनन्द है कि जो कोई भी आनन्द और शान्ति की खोज में जाता है उसे प्रकृति के बीच जाना होगा। मनुष्य जाति में दुखों के बढ़ने का कारण सिर्फ 'मैं' के होने का तीव्र भाव और स्वहित के लिए कार्य है। जहाँ भी कोई कार्य स्वहित के लिए होगा वो या तो दुख लाएगा या सुख। ये चक्र है, जब दुख आएगा, तब सुख तो आएगा ही लेकिन दुख और सुख दोनों के पार जाया जा सकता है।

इसके सारे के सारे सूत्र प्रकृति में हर जगह बिखरे पड़े हैं। जहाँ से मन करे चुन लो लेकिन इन सूत्रों को समझने के लिए सबसे पहले एक ही कार्य करना, 'मैं' को विसर्जित कर देना। भक्ति एक बहुत अच्छा माध्यम है जिसमें 'मैं' को समर्पित किया जा सकता है, पूर्ण समर्पण के भाव में आ जाना, ये सूत्र तुम्हे हर जगह पढ़ने को मिल जाएंगे, तुम्हारे लिए सुलभ हो जाएंगे तुम्हारे सामने प्रस्तुत हो जाएंगे, तुम्हारी आँखें बन्द भी रहेंगी, तब भी तुम्हारे अन्तस्थ में आ जाएंगे। तब तुम इनसे बचना भी चाहो तो भी तुम सत्य से नहीं बच पाओगे क्योंकि तब तुम इसके अधिकारी बन जाते हो। किसी खोज में मत जाओ, कुछ पाने की इच्छा मत करो, ज्ञान की भी नहीं। कुछ खोने के लिए तैयार हो जाओ, सब कुछ विसर्जित करने के लिए तैयार हो जाओ, सब कुछ तिरोहित, सब कुछ समर्पित और तब अधिकार आ जाएगा।

सत्य को समझने का प्रयोजन शिखर की प्राप्ति है। ज्ञान की प्राप्ति कर भी लोगे तो क्या पाओगे? क्या लाभ उसका? उस प्राप्ति शब्द से दूरी बनाओ, तैयार हो जाओ खोने के लिए। जब तुम स्वयं को खो दोगे, जब तुम शून्य हो जाओगे, तब तुम अगर कुछ पाना भी ना चाहोगे तो भी ये सब कुछ तुम्हारा हो जाएगा। तुम अगर लेना ना चाहोगे तब भी तुम्हें, पूरी प्रकृति आगे बढ़ के आत्मसात कर लेगी।

❖❖

हम बहुत दिनों तक ज्ञान की तलाश में भटकते रहे। आइये अब प्राप्ति नहीं, अब 'मैं' की समाप्ति की यात्रा आरम्भ करें। दुख उसी समय प्रारम्भ हो जाएगा

जब वृक्ष स्वयं के लिये कार्य करना शुरू कर देंगे। तब वे धूप से बचना चाहेंगे। किसी को छाया प्रदान करने में उनकी कोई रूचि न होगी, अपने मीठे फल वे स्वयं ही खाना चाहेगें, अपनी पैदा की हुई ऑक्सीजन वे स्वयं लेना चाहेंगे, तब दुख की शुरूआत हो जाएगी, क्योंकि न ही ऑक्सीजन उनके लिए है, न ही वो छाया। ये सब दूसरों के लिए है।

ये ध्यान रखना, कृष्ण ने कहा है कि हर कार्य में समत्व का भाव रखना। ये सोचना ही मत कि ये तुमने किया, बस इसे करते जाना, फल की इच्छा भी छोड़ देना और जब तुम फल की इच्छा भी छोड़ दोगे, तब तुम्हें फलों का गोदाम मिल जाएगा। जब तक फल की इच्छा करोगे उतना ही बटोर पाओगे, जितना तुम्हारे हाथों में सामर्थ्य है। एक किलो-दो किलो, टोकरी भर, जितना दोनों हाथ से उठा सको। कृष्ण तुम्हें पूरा बाग देने के लिए तैयार हैं इस पृथ्वी पर जितने भी बाग हैं फलों से लदे हुए सब तुम्हारे हैं।

ओशो कहते है- 'जब भी तुम मांगोगे, हमेशा छोटा ही मांगोगे। मांगना ही छोड़ दो क्योंकि तब तुम अपरिमित के अधिकारी हो जाओगे।'

❖❖

न ये शराब है और ना ही ये तुम्हारे शरीर को नुकसान पहुँचाएगी, बल्कि तुम्हें शरीर के पार लेकर जाएगी। अब तुम वो देखने के लिए, उस अज्ञात के दर्शन के अधिकारी हो जाओगे, और तब तुम भले ही आँखें बन्द कर लेना लेकिन दर्शन से चूक न पाओगे।

जब कृष्ण ने कहा कि यह संसार मृत्युलोक है और बुद्ध ने कहा कि इस संसार में दुख है और दुख का कारण है, तो वे उसी तरफ इशारा कर रहे थे, जिधर से अधिकांशत: हम आँखे मूँदे रहते हैं।

सनातन धर्म में प्रयुक्त होने वाले स्वास्तिक का यह तात्पर्य है, कि भूलना मत यदि सुख आएगा तो दुख भी आएगा। यदि तुम सुख के आकांक्षी हो तो दुख से भी तुम बच न पाओगे। यदि दुख है तो कभी न कभी तुम सुख भी जरूर भोगोगे, यह चक्र चलता रहेगा, या तो उसी चक्र के साथ तुम घूमते रहो या तुम्हारे पास

एक अन्य उपाय है। शाश्वत की ओर बढ़ जाओ, पर न तो वहां तुम्हें दुख मिलेगा और ना सुख मिलेगा ।

❖❖

कृष्ण ही मेरा धर्म है, सिर्फ कृष्ण। सुन्दर, सामान्य, सुलभ और सूक्ष्म लेकिन इस धर्म को वह धर्म मत समझ लेना जो हम पूरे विश्व में होते हुए देखते हैं कि धर्म के नाम पर एक दूसरे को संशय से देखना। अपने धर्म को दूसरे धर्म से ऊँचा दिखाना, दूसरे को नीचा। अपनी महानता साबित करने की होड़, दूसरों को नीचे गिराने की चाहत। मैं ज्यादा सही, तुम कम सही, मैं ऊँचा तुम नीचे। मैं ४८ देशों में तुम २८ देशों में और तुम तो सिर्फ एक ही देश में हो। इसे वो धर्म समझने की चूक मत कर जाना इसलिए भारतीय मनीषियों ने कभी सनातन धर्म के नाम को इतनी महत्ता नहीं दी।

आज भी भारत के बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि सनातन धर्म भी कुछ है। हिन्दू नाम से ही हम प्रसिद्ध हैं और गलत भी नहीं हैं। हमने कभी धर्म के नाम को इतना महत्व दिया ही नहीं शायद वो पहले से जानते थे कि उसका स्वरूप विकृत हो सकता है इसीलिए उन्होंने जीवन जीने के तरीके, खुद को समझने के तरीके, पुरूषार्थों पर ज्यादा काम किया। नामों में पड़े ही नहीं और पूरी दुनियाँ सिर्फ नामों के चक्कर में पड़कर एक दूसरे को बर्बाद करने में तुली हुई है। दूसरों से बढ़कर स्वयं को बर्बाद करने में तुली हुई है। जब मैं धर्म कहूं तो धर्म का तात्पर्य है समर्पण।

कृष्ण ने कहा कि मैं हर एक व्यक्ति, हर एक प्राणी, हर चर-अचर में व्याप्त हूँ। अब मैं उसे कृष्ण कहूँ और तुम उसे अल्लाह कह देना, कोई उसे क्राईस्ट कहे और कोई उसे किसी और नाम से पुकार ले, कोई भी नाम रख दो, उससे कोई विरोध नहीं है लेकिन भीतर केवल उसी शाश्वत शक्ति को देखना, नामों के चक्कर में न पड़ना।

सत्यान्वेशियों में तो नाम खोने की होड़ लगी है। संसार के मापदंडों के हिसाब से भले ही हम विपरीत दिशा में बह रहे हो लेकिन ये जान लेना कि प्रकृति के, अस्तित्व के नियमों और उसकी शाश्वत भावना के साथ ही हमारा भाव है। धर्म के

जानने वाले सिर्फ इतना ही समझ पाएंगे, क्योंकि जब उन्होंने खुद को नहीं समझा तो वे तुम्हें क्या समझेंगे? कृष्ण सिर्फ प्रेम ही हो सकते हैं, सिर्फ प्रेम। जब हर एक अन्तस्थ में तुम्हें कृष्ण दिखाई देने लगे तो समझ लेना कि तुम धार्मिक हो गये हो।

❖❖

ज्ञान की प्राप्ति की पहली सीढ़ी यह है कि आप स्वयं को जान जाओ। जब आपको स्वयं का बोध हो जाएगा कि तुम कौन हो और तुम यहाँ क्या कर रहे हो? तुम्हारे यहाँ होने का क्या तात्पर्य है? किन कार्यों को सम्पादित करने को यहाँ तुम्हारी उपस्थिति हुई? जब ये जान जाओ, तो जान लेना कि वह यात्रा प्रारम्भ हो गयी है और ये भी जान लेना कि यात्रा में भी उतना ही आनन्द है, जितना पहुँचने में है। जैसे-जैसे बढ़ते चले जाओगे उसकी झलक ज्यादा मिलती चली जाएगी। जैसे-जैसे नजदीक जाओगे, चीजें और साफ होती चली जाएंगी।

ज्ञान की प्राप्ति कहीं पाँव थकाना नहीं, वरन् अपनी आन्तरिक यात्रा है, लेकिन यह भी तो एक चरण हुआ। कम से कम तुम वहाँ तो पहुँच गये जहाँ से तुमने खुद को पहचान लिया। अब आगे का मार्ग तुम्हारे समर्पण का होगा, अस्तित्व तुमसे जो भी काम कराना चाहेगा करा ही लेगा, तुम्हें कुछ नहीं करना। तुम्हें समर्पण भाव में रहना है। तुम्हारे समर्पण की आवश्यकता है। बस अपने समर्पण के बारे में जानना और सजग होना है।

❖❖

आत्मा से निकला निवेदन उस परमात्मा तक न पहुँचेगा, इसका कोई प्रश्न ही नहीं है, वह पहुँचेगा ही पहुँचेगा। उसी प्रकार तुम्हारी आत्मा से निकला हुआ प्रेम उस परमप्रेमी तक अवश्य पहुँचेगा। एक बार प्रेम करके तो देखो, अभी तक तुमने प्रेम किया शरीरों से, अब इस बार प्रेम करो, उस परमप्रेमी से जो शाश्वत है। जो सृष्टि के पहले भी था और सृष्टि के बाद भी होगा। ऐसा प्रेमी, जो तुम्हें छोड़ ना पाए और तुम्हें भी उसे छोड़ने का कोई प्रयोजन, कोई उपाय न हो। जो हर जन्म में तुम्हारे साथ रहे, जब कभी तुम्हें इसकी जरूरत होगी, वो तुम्हारे साथ रहेगा। वो नहीं भूलेगा, तुम भूल जाना उसे।

प्रेम करो इस बार उस अनन्य प्रेमी से। शरीरों का मोह तोड़ो और अब आत्मा से उस परम आत्मा का सम्बन्ध जोड़ के देखो। प्रेम अकारण है, बिना किसी प्रयोजन और बिना किसी भेदभाव के लेकिन अब शरीरों से प्रेम बहुत हुआ। अब आवश्यकता है शाश्वत प्रेम की। उस रसधार की, जिसके प्रवाह से सभी को शाश्वत होना है। ये कई युगों से है और कई युगों तक रहेगा। पृथ्वी पर मनुष्य हर उस जगह पर है जो बसने लायक है। कहीं पर घना कहीं पर विरल। पूरी पृथ्वी पर शरीरों का साम्राज्य, सिर्फ पृथ्वी तल से ६ फुट ऊपर तक है।

❖❖

इस पृथ्वी और मानव जाति के लिए बुद्ध और महावीर के ज्ञान प्राप्त करने की घटना कोई विशेष नहीं, ओशो के ज्ञान प्राप्त करने की घटना का कोई मूल्य नहीं, लेकिन मोल उस चीज का है जो उन्होंने ज्ञान प्राप्ति के बाद मानवता को दिया, वो तो अमूल्य है। ठीक उसी प्रकार यदि आपके पास नॉलेज है, विवेक है, समझ है और वो सिर्फ आप ही तक सीमित है, तो उसका कोई भी अभिप्राय नहीं। उसका अभिप्राय सुगन्ध की तरह चारों तरफ फैल जाने में है। हर उस इन्द्रिय तक पहुँचने में है जिसकी उसे आवश्यकता है।

❖❖

बुद्ध ने जीवन के २९ वर्षो तक भोग को उसकी पूर्णता में भोगा और उनके पिता ने यह व्यवस्था की थी कि किस प्रकार वो इस बाह्य जगत में रस लेते रहे। इसकी व्यवस्था उनके महल में की गई थी, अत: पूरे मौके मिले भोग को सम्पूर्णता से भोगने के। लेकिन एक वक्त आता है, जब आप उस चरम पर पहुँचते हैं– भोग के चरम पर, जब आपको भोग भी हीन लगने लगता है। अब उसमें कोई रस बाकी नहीं, तब आप सत्य की तरफ अपनी यात्रा प्रारम्भ करते हैं, तो जब ऋग्वेद ने कहा कि यह संसार भोगने के लिए ही बना है तो इसके पीछे बड़ा गहरा तात्पर्य था। जब ओशो ने कहा कि किसी भी चीज का निषेध नहीं है, तो इसके पीछे भी बहुत गहरा सार था। वो सार ही था जो इन भोगों में अरसता को इंगित करता है।

❖❖

अनुकरण विचार और चिन्तन उन्हीं लोगों का किया जाता है, जिनमें आंतरिक गहराई होती है। वो व्यक्ति जिनका कार्य सिर्फ शारीरिक तल पर है वो उतनी ही जल्दी भुला दिये जाते हैं, जब से वो दिखना बन्द हो जाते हैं। वो व्यक्ति जिनमें आन्तरिक गहराई होती है, उनकी यादें लम्बी होती हैं।

❖❖

बोलने वाला अनुभूति के तल पर बोलता है और सुनने वाले तर्कों के तल पर तौलते हैं, क्योंकि वो स्वयं को तर्कों द्वारा सन्तुष्ट कर लेना चाहते हैं, इससे पहले कि वो गहराई में जाए। वो जान लेना चाहते हैं कि जो ये अज्ञात की छलांग है इसमें जाने पर क्या-क्या मिलेगा? श्रोता तर्कों द्वारा अपनी प्यास की पूर्ति करना चाहता है। उसकी प्यास का जल है तर्क। अगर कोई कहे सत्य आपके साथ या किसी के साथ तभी तक रह सकता है, जब तक उसका व्यावसायिक उपयोग ना हो, तो आप चाहेंगे कि इस बात को तर्कों द्वारा स्पष्ट किया जाए, आप चाहेंगे कि कुछ उदाहारणों द्वारा इस बात को स्पष्ट किया जाए।

इसका वैज्ञानिक कारण यह है कि ये दो चीजें अलग-अलग ध्रुवों पर स्थित हैं, वे विपरीत दिशाएँ हैं। व्यवसाय बहुत ही सतही काम है और सत्य बहुत गहराई में है। कैसे जोड़ेंगे? ये कुछ पाने की यात्रा नहीं है ये सब कुछ जो पाया है, उसे भी खो देने की यात्रा है। इच्छा है तो चलिए साथ। हो सकता है कि कोई आगे चल रहा हो, कोई पीछे हो और किसी की यात्रा अभी प्रारम्भ हुई हो और कुछ अभी यात्रा प्रारम्भ करने को तैयार हो रहे हों, लेकिन यकीन मानो जो भी चलता है वो पहुँचता जरूर है और याद रखो ये एक ऐसी यात्रा है कि इस पर जब चलना शुरू करोगे तो लोग तुम्हें पागल कहेंगे।

तुम्हारी धर्मपत्नी कहेगी- ये बड़ा मूर्ख व्यक्ति है, कैसे पाला पड़ गया मेरा इससे? और जब कोई तुमको पागल कहे तो समझ लेना कि तुम सही मार्ग पर हो क्योंकि ये दो भिन्न-भिन्न यात्राएं हैं, वो शरीर के सतह पर है और तुम आन्तरिक यात्रा पर हो, तो वे तुम्हें कभी समझ नहीं पाएगी उसे तुम मूर्ख ही लगोगे। यात्रा में कोई परेशानी आए तो समझ लेना कि तुम सही पथ पर हो और वो पथ जो शुरू में ही बहुत आनन्द दे रहा हो वो आगे चल कर बदल जाएगा । हम तो सिर्फ उस परमपिता के चरणों में पड़े हुए हैं जल के समान, जो सिर्फ उनके चरण धोने के

काम आ सकता है, यही इसका कार्य है और यही उसका आनन्द।

❖❖

हँसी बड़ा सुन्दर उत्तर है। कभी ये कहती है कि उचित समय आने पर तुम्हें उत्तर अवश्य मिल जाएगा, कभी ये तुम्हारे प्रश्न की गहराई को और उसकी अपेक्षा को और बढ़ा देती है। कभी ये कहती है कि मुझे प्रसन्नता हुई कि ये प्रश्न तुम्हारे अन्तस में आया और कभी कहती है कि तुम सही मार्ग पर हो, बस चलते जाना। मेरा कार्य तुम्हें तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देना नहीं, उस अवस्था में पहुँचने में तुम्हारी मदद करना है, जब तुम खुद ही इन प्रश्नों के उत्तर अपने अन्दर ही ढूँढ़ लोगे।

❖❖

गरीब व्यक्ति की पूरी ऊर्जा, संसाधनों की पूर्ति में ही चली जाती है और आध्यात्मिकता, सम्पन्नता से जन्म लेती है। रामकृष्ण मिशन के मठों में उनके अनुयायियों ने काली पूजा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया। अगर उन्होंने काली पूजा को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया होता तो आगे आने वाली पीढ़ी रामकृष्ण परमहंस के मुख्य संदेश से चूक जाती।

काली जैसे रामकृष्ण परमहंस के लिए थी, वैसे ही कृष्ण किसी दूसरे के लिए, राम किसी तीसरे के लिए हो सकते हैं और बुद्ध किसी चौथे के लिए। सर्वाधिक महत्वपूर्ण रामकृष्ण परमहंस की आन्तरिक यात्रा है जिसने निराकार से साकार और फिर साकार से निराकार तक का सफर तय किया। रामकृष्ण की मुख्य बात सिर्फ उनके पहुँच जाने में नहीं है, बल्कि विवेकानन्द जैसे शिष्य तैयार कर देने में है, जो उस संदेश को आगे बढ़ा सके।

वह सम्पदा जो रामकृष्ण परमहंस ने अपने जीवन में अर्जित की, वह चाहते थे कि कोई एक माध्यम तो हो, जिस माध्यम से हमारी आगे आने वाली पीढियाँ भी परिचित हो सके और जो अपना मार्ग ढूँढ़ रहे हों या आगे आने वाले समय में ढूँढेंगे, उन्हें कुछ किरणें मिल सकें। इसके लिए उन्होंने विवेकानन्द को तैयार किया। एक सद्गुरू की पहचान ही यही है कि जितनी एक शिष्य, एक साधक

को सद्गुरू की आवश्यकता होती है उससे कहीं ज्यादा एक सद्गुरू को एक समर्पित शिष्य की आवश्यकता होती है, जो उनके काम को आगे बढ़ा सके।

रामकृष्ण का स्नेह उन्हीं शिष्यों के प्रति नहीं था, जो उनके पास अपनी प्यास लेकर पहुँच गये थे वरन् उन सभी शिष्यों के लिए था जो तब तक पैदा भी नहीं हुए थे, लेकिन जो भविष्य में कभी प्यासे हो जाने वाले थे, जिनकी प्यास बढ़नी थी। उन सभी के लिए रामकृष्ण परमहंस का प्रेम समान मात्रा में उपलब्ध था। विवेकानन्द के चयन के पीछे उनकी धारणा थी कि उनके बाद उनके काम को आगे बढ़ाया जाए और अपने शिष्य धर्म का पालन स्वामी विवेकानन्द ने पूरे मनायोग से किया। यही उनकी अपने गुरू के प्रति गुरूदक्षिणा थी। इससे सुन्दर गुरूदक्षिणा हो भी नहीं सकती थी।

एक बार जब स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस से निर्विकल्प समाधि का अनुरोध किया तो रामकृष्ण परमहंस ने उन्हें एक झिड़की दी। शायद प्यार भरी, न भी रही हो, झिड़की ही ज्यादा रही हो। वो नहीं चाहते थे कि उनका सबसे मेघावी शिष्य सिर्फ अपने बारे में सोचकर रूक जाए। उन्होंने कहा कि मैं चाहता हूँ कि तू एक वट वृक्ष बने जिसके नीचे सदियों तक आगे आने वाले लोग बैठ कर ज्ञानरूपी और प्रेमरूपी शीतलता प्राप्त कर सकें। अपने बारे में सोचना छोड़ दे और यही रामकृष्ण परमहंस की अपने भविष्य में आने वाली शिष्यों के प्रति करूणा थी।

❖❖

समृद्ध जनों और गरीबों की परेशानियां अलग-अलग तरीके की होती हैं। समृद्धि जहाँ तनाव लाती है, वहीं गरीब अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही लगा रहता है। अत: इन दोनों समस्याओं का समाधान अलग-अलग तलों पर करना ही सही है। विचार करके देखो कि पिछले एक महीने में कितने दिन थे जो तुमने जिये हैं, बाकी दिन तो तुम सिर्फ दौड़ते भागते ही रह गये। वो एक दिन याद करके देखो जब कि वाकई तुम्हें लग रहा हो कि तुम जी रहे थे सिर्फ ढो नहीं रहे थे।

जीने वाले दिनों की संख्या बढ़ाई जा सकती है यदि हमारे सुख-दुख बाहर

से भीतर न आकर, आनन्द की धारा बनकर अन्दर से बाहर की तरफ आयें। बाह्य जीवन कभी-कभी अत्यंत कठोर होता है और इससे सम्बन्धित परेशानियाँ और तनाव आपको चरम पर ले जाता है लेकिन कभी-कभी यही आवेग आपकी आन्तरिक यात्रा के द्वार खोल सकता है। इसलिए अगली बार एक अलग दृष्टि से देखने की कोशिश करना। बस एक महीने के बारे में सोचकर देखना कि कितने दिन तुमने वास्तविक तौर पर जिये है और कितने दिन तुम कोल्हू के बैल की तरह सिर्फ काम में लगे रहे।

मेरा पूरा जोर उनको हफ्तों-दिनों की संख्या बढ़ाने में है इसलिए अपने जीवन को दो भागों में बांटकर देखना। बाह्य जीवन और आन्तरिक जीवन। बाह्य जीवन तुम्हारे जन्म के साथ ही शुरू हो गया था और आन्तरिक जीवन इस रियलाइजेशन के बाद शुरू होता है कि तुम सिर्फ शरीर नहीं हो, हालाँकि ये काफी दिनों बाद, कई वर्षो बाद प्रारम्भ होता है।

लेकिन इसकी गति सतत् है अगर प्रयास चलते रहे तो बाह्य अभिनय को सम्पूर्णता से करते हुए अपनी आन्तरिक यात्रा को जारी रख सकते हैं। कृष्ण को परिवार छोड़ने की जरूरत नहीं पड़ी अन्य सभी को इसकी जरूरत महसूस हुई इसलिए कृष्ण को पूर्णावतार कहते हैं। बाह्य जगत में लिप्त होते हुए भी किस प्रकार निर्लिप्त रहा जाए। इसका परम सुन्दर उदाहरण कृष्ण हैं। कृष्ण तुम्हें एक नया जीवन देना चाहते हैं। बाह्य जीवन जो तुम जी रहे हो और आन्तरिक जीवन जिसका परिचय वो तुमसे करवाना चाहते हैं। जब तुम आन्तरिक जीवन में अपनी यात्रा प्रारम्भ करते हो तो बाह्य जीवन को सुगमता से लेने लगते हो।

❖❖

तुम चाहते हो कि तुम्हारे मन में जो प्रश्न उठ रहा है उसका उत्तर तुम्हें कोई दे दे, ताकि तुम्हें सन्तुष्टि मिल जाए। बड़ी विषम बात है कि प्रश्न तुम्हारे मन में उठ रहे हैं और उत्तर तुम बाहर से चाहते हो। वास्तव में तुम उत्तर नहीं चाहते हो, तुम चाहते हो कि तुम्हें तर्कों द्वारा सन्तुष्ट कर दिया जाए।

मेरे बचपन की बात है, मैं अपने चाचा जी के साथ था। उनके साथ ही उनके एक मित्र थे जो किसी दूसरे राज्य में उन्हीं की कम्पनी में काम करते थे। हम तीनों

एक ही गाड़ी में बैठे कहीं जा रहे थे। वे दोनों आपस में बात करते थे और मैं बस सुनता था। एक प्रश्न मेरे चाचा के मित्र ने उठाया कहा कि लोग कहते हैं, कि हर चीज जो होती है, वो अच्छे के लिए होती है। मेरा साला जो १६-१७ साल का था, वो एक दिन घर से निकला और कुछ घन्टों के बाद किसी ने उसकी हत्या करके घर के सामने उसके शरीर को फेंक दिया तो इसमें क्या अच्छा हुआ? मेरे चाचा ने इसके उत्तर में कहा कि मान लो यही काम तब होता जब उसका विवाह हो चुका होता तब, उसके साथ एक और जिन्दगी भी उपद्रव में फँस जाती तो कम से कम ये तो ठीक ही हुआ कि ये कार्य होना था तो इसी समय हो गया क्योंकि अगर उसके विवाह होने के पश्चात् होता तो उसकी पत्नी उसके बच्चों को भी इसकी विभीषिका झेलनी पड़ती। वो इस उत्तर से संतुष्ट हो गये। उन्होंने कहा- यह बात कुछ तार्किक प्रतीत होती है। हाँ, ये तुमने सही उत्तर दिया यही घटना बाद में होती तो क्या होता? वास्तव में वे उत्तर चाहते थे, लेकिन सिर्फ तर्क द्वारा संतुष्ट हो गए। तर्कों से ही उन्हें सन्तुष्ट किया जा सकता था। विरोध तो यही हो गया कि प्रश्न उनके मन में उठा और उत्तर वो बाहर से चाहते थे।

सच्चाई तो यह है कि प्रश्न तुम्हारे मन में उठा है तो उत्तर भी तुम्हारी आत्मा से ही आएगा। प्रश्न कहीं भीतर जागा है तो उत्तर और भी भीतर से आएगा। बाहर से सिर्फ तर्क ही आएँगे, तो अपने प्रश्नों का उत्तर तुम बाहर न ढूँढ़ना लेकिन अपने प्रश्नों के उत्तर की खोज तुम जरूर जारी रखना। खोज मत रोकना क्योंकि अगर ये ढूँढना चलता रहा तो एक दिन तुम पा ही जाओगे इस उत्तर को भी। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, इस हफ्ते, इस महीने, अगले साल, दस साल, पन्द्रह, बीस, साल, पचास साल बाद ये उत्तर तुम्हें मिल ही जाएंगे या फिर किसी जन्म में मिल जाएंगे। लेकिन अपने प्रश्न को अन्तस से मिटने न देना क्योंकि इसका उत्तर जब तुम्हें प्राप्त होगा तो इस उत्तर के साथ तुम्हें कई अन्य उत्तर प्राप्त हो जाएंगे, वह दृष्टि तुम्हें प्राप्त हो जाएगी। मेरी रूचि इस बात में है कि जिज्ञासा ही गिर जाए, प्रश्न ही गिर जाएँ, तब जो अवस्था होगी, रूचि उसमें है।

❖❖

ध्यान क्या है? ध्यान उस परमपिता परमेश्वर, इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी सत्य है उससे जुड़ने की प्रक्रिया का नाम है। इसके लिए अपने मन में चलने वाली सभी हलचलों को रोकना पड़ता है। वस्तुत: ध्यान में कुछ भी नहीं करना होगा वरन् अपने अन्दर, अपने मस्तिष्क में चलने वाले सभी विचारों, सभी उपद्रवों से किनारा कर लेना होगा। मन के तालाब का जल स्थिर हो जाता है, जब आपके अन्दर शून्यता आने लगती है इसीलिए सत्य की खोज में जाने वाले लोगों को ध्यान करने की सलाह दी जाती है, ताकि इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी सत्य है वो उससे जुड़ सकें।

कभी-कभी मन में कुछ इस प्रकार के विचार आते हैं जो चौंका देते हैं। लगता है कि इस प्रकार का विचार मेरा नहीं हो सकता है, विशेषत: जब वो नकारात्मक हो। ऐसा मेरे मन में आया ही क्यों? बहुत ही नकारात्मक विचार, ये मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसे विचार जो आपके मन में आते हैं, ये सभी आपकी परीक्षा लेने को होते हैं। इनका काम सिर्फ परीक्षा लेना है। वे चाहते हैं कि आप इनके प्रति अपनी प्रतिक्रिया दें, ऐसे सभी विचारों का तात्पर्य सिर्फ आपकी प्रतिक्रिया लेना है। अत: प्रतिक्रिया न दें और साक्षी बन जाएं। एक तरफ से विचारों को आकर दूसरी तरफ से जाने दें तो ये स्वयं ही विलीन हो जाएँगे।

ऐसे विचार जो हमें ग्लानि दे, जैसे मन्दिर में खड़े होने पर किसी देवी या देवता के प्रति कुछ विचित्र विचार। इनका प्रायोजन सिर्फ आपकी प्रतिक्रिया पाना है, इनकी खुराक आपकी प्रतिक्रिया है। स्वयं को केन्द्र पर लाकर, साक्षी हो जाना होगा। जब इन्हें इनकी खुराक नहीं मिलेगी तब इनके आने का कोई प्रयोजन न बचेगा और जहाँ करने की कोशिश की तो वो ध्यान कहाँ होगा? ध्यान का तो तात्पर्य ही यही है, कुछ ना करना इसलिए ध्यान को कभी किया नहीं जा सकता ध्यान में तो सिर्फ उतरा जा सकता है। ध्यान घटित होता है।

❖❖

ध्यान का तात्पर्य ही है कि स्वयं को लहरों के सुपुर्द कर दो बस लहरों के साथ बहते चले जाओ, तुम्हें पतवार की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

❖❖

सभी सन्यासियों के नाम में आनन्द शब्द अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ पाएँगे।

भारतीय मनीषियों ने बहुत पहले ही ये जान लिया कि सुख और दुख ये दोनों अस्थाई अवस्थाएँ हैं। आनन्द वह अवस्था है, जिसका क्षय नहीं होता, अत: सभी संन्यासियों के नाम में 'आनन्द' शब्द आप जुड़ा हुआ पाएँगे। आनन्द ही वो अवस्था है जिसके लिए हर संन्यासी प्रयास करता है। आनन्द ही धर्म है, सन्यासियों का और साधुओं का पूरा कार्य सिर्फ इस आनन्द की अवस्था को पाने का है। उन्हें पता है आनन्द ही ईश्वर है। जब भी आप एकान्त में होते हैं तो आप उस परमात्मा के साथ होते हैं। कृष्ण ने कहा कि हर प्राणी के हृदय में मैं स्थित हूँ, तो जब एकान्तवास आप करते हैं तो सिर्फ आप दो ही बचते हैं- 'कृष्ण और आप' और आप भी कुछ अलग नहीं हैं। जब ये दो लोग मिलते हैं तो एकान्त का पूरा प्रयास सिर्फ इस बात में होता है कि ये दो मिल के एक हो जाएं। 'मैं' मिट जाए और अगर कोई बचे तो सिर्फ कृष्ण। यही आपकी आध्यात्म की यात्रा का सार है।

धर्म और आध्यात्म का सिर्फ एक लक्ष्य है कि किस प्रकार आपको सुख और दुख के चक्र से निकाल कर आनन्द की अवस्था में पहुँचा दे, जहाँ सिर्फ अंश और अंशी ही बचते हैं, बाकी सभी चीजों की समाप्ति हो जाती हैं। सभी चीजें पीछे छूट जाती हैं। अगर कुछ बचता है तो सिर्फ 'आनन्द'। यही सत्य है, यही ईश्वर है यही परमात्मा है, यही अस्तित्व है, यही कृष्ण है। आध्यात्म और धर्म का पूरा कार्य आपको समय के पार ले जाने का है और जहाँ समय नहीं है वहाँ कृष्ण है। इस समय को पार कर जाना ही मोक्ष है। समय के पार 'मैं' नहीं जा सकता, जब 'मैं' गिर जाएगा और आत्मा पर स्थित सभी संस्कार, सभी कर्मों की परतें साफ हो चुकी होंगी, तब 'मैं' का कोई स्थान नहीं होगा। वो भी इन्हीं परतों के साथ जा चुका होगा। तब बचेगी सिर्फ शुद्ध आत्मा और आत्मा समय से परे है।

यही मोक्ष है, वास्तव में मोक्ष प्राप्ति इस शरीर की समाप्ति के बाद नहीं। इस शरीर में रहते हुए ही उस अवस्था को पाना सम्भव है और जब तुम इस शरीर के माध्यम से, इसको वाहन बना कर उन सारे बन्धनों से मुक्त हो जाओगे, तो आप समय के पार जाने के अधिकारी हो जाओगे, वहीं आपको कृष्ण मिलेंगे। इसकी पूरी झलक आप शरीर में रहते हुए ही पा सकते हैं।

❖❖

ये यात्रा भी बड़ी विचित्र है जिसमें यात्री को विशेष प्रयास नहीं करना होता। वास्तव में उसे एक ही काम करना है? सिर्फ समर्पण, पूर्ण और बिना शर्त समर्पण। यदि प्रयास करना है तो उन सभी अवधारणाओं को छिन्न-भिन्न कर देना है, जो चित्त पर पड़ी हुई हैं। कृष्ण ने गीता के रूप में जो उपहार इस मानव जाति को दिया है वो उनका सबसे बड़ा प्रेम है क्योंकि आप जब गीता की शरण में जाते हैं तो वही आपकी सबसे बड़ी मार्गदर्शन और गुरू बन जाती है। उस पथ को जान लेने के बाद, उसका रस चख लेने के बाद, आप के प्रयास समाप्त हो जाते हैं।

जितनी अभीप्सा आपकी होती है, उसे पा लेने की उसकी अभीप्सा कहीं ज्यादा तीव्र होती है। इसलिए सिर्फ प्रेम और समर्पण यही मुख्य तत्व होंगे। योगियों और संन्यासियों ने वन और पर्वतों को मुख्यत: अपने आवास के रूप में चुना क्योंकि वहाँ सिर्फ दो ही लोग बसते हैं। एकान्त में एक अंश, दूसरा अंशी। एक प्रभु और दूसरा सेवक। एक तरफ झूठा अहंकार, दूसरी तरफ शुद्ध आत्मा, बस इसी दूरी को मिटाने का कार्य है।

❖❖

एक साधक के लिए सुबह का समय सबसे सुन्दर समय होता है और एक सद्गुरू के लिए पूरा दिन ही प्रात:काल की तरह सुन्दर होता है। पूरा कार्य कबीर, गुरूनानक, चैतन्य महाप्रभु, पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य इन शुद्ध आत्माओं के द्वारा किए गये प्रयासों की याद दिलाना है। आधुनिक कर्मयोगियों में मदर टेरेसा, डॉ. अब्दुल कलाम और रतन टाटा का नाम अवश्य समाहित होना चाहिए तो इनका अध्ययन अवश्य करें। इस युग में ये सभी सन्तों का स्थान रखते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

मदर टेरेसा को सन्त घोषित करने के लिए, उनके शरीर को छोड़ने के बाद किसी चमत्कार को ढूँढने की आवश्यकता नहीं है। हर वो काम, जो उन्होंने अपने जीवन में किया, हर पल-हर क्षण एक चमत्कार ही तो था। खुद को पीछे रख दूसरों की सेवा करना, रोगियों की सेवा या हर समय सिर्फ उनके कार्य में व्यस्त

रहना। इससे सुन्दर चमत्कार क्या हो सकता है? उन्हें किसी बाहरी घोषणा की आवश्यकता नहीं क्योंकि घोषणा होती है अन्तस्थ से। किसी संस्था द्वारा घोषणा का कोई अभिप्राय नहीं है।

❖❖

यह तो एक सागर मंथन है अब तक प्राप्त रत्नों को मार्ग में बिखेरते जाना ही उचित है, वो पथिक जो आगे आएंगे, जो इस मार्ग का भविष्य में अनुसरण करेंगे। ये रत्न उनके मार्ग दर्शन के काम आएंगे, इनका बस इतना ही मूल्य है। ये सिर्फ इतना बता सकेंगे– तुम्हारे पहले जो यात्री गये हैं, उनकी अनुभूतियाँ भी तुमसे बहुत भिन्न नहीं हैं। चलते जाना आवश्यक है क्योंकि इस मन्थन का भी एक आनन्द है। बाह्य परिवर्तनों में कोई रस नहीं है, बस तुम्हारे अन्तस्थ को झकझोर देना चाहता हूँ। उस पर पड़ी धूल की परतों की तरफ तुम्हारा ध्यान खींचना चाहता हूँ। उस पर जमें कठिन मैल को बाहर कर देना चाहता हूँ। तुम्हें तुम्हारे स्वरूप की याद दिला देना चाहता हूँ। तुमसे, तुम्हारी शुद्धता की पहचान करा देना चाहता हूँ। तुम्हारा ध्यान इस तरफ खींचना चाहता हूँ। बस यही कर सकता हूँ और यही कार्य है। इसी में सफलता है। अब आगे का कार्य तुम्हारा है, इसे कैसे साफ करना है मार्ग ढूँढो!

❖❖

तुम्हारे साथ बहने को क्या कहूँ? यह कोई अनुभव है या स्वाद, अपने शब्दों में कौन से वो रंग भरूँ जो इसका जरा सा भी चित्रण कर पाएँ। इसे व्यक्त करना शुद्ध व्यर्थ है, अज्ञेय ही बोल देता हूँ।

❖❖

कुछ विकसित आत्माएँ शरीर में रहते हुए शरीर के माध्यम से ऐसे कार्य सम्पादित करती हैं जो भविष्य में अन्य आत्माओं के काम आएँगे। उनमें भेद का भाव समाप्त हो जाता है। स्वयं के लिए कार्य करने की इच्छा क्षीण हो जाती है, प्रदान करने में, आनन्द का भाव जागृत हो जाता है। जयदयाल जी गोयनका भी एक

ऐसे ही व्यक्ति थे, उन्होंने गीता प्रेस की स्थापना की। जिसमें गीता को वृद्धावस्था की पुस्तक के खांचे से निकालकर सभी के हाथों में सुलभता से पहुँचा दिया। अन्य व्यक्तियों की या ईश्वर की इससे बड़ी सेवा क्या हो सकती थी? ये आत्मा के भोजन को सुलभ कराने का कार्य था। जो उस काल में या आगे आने वाले वर्षों में कई अन्य लोगों को जीवन के तत्वों से परिचित कराएगा ।

❖❖

शरीर प्राप्ति को सार्थक करने को स्वयं की खोज, सामान्य जन के लिए कार्य अर्थात् अन्य जीवात्माओं के उत्थान में सहायता हेतु आपका योगदान तथा शून्यता की अवस्था की प्राप्ति। इन तीन सूत्रों की सिद्धि द्वारा, शरीर प्राप्त करने की उपयोगिता सिद्ध होती है।

❖❖

और अगर 'मैं ये हूँ' तो मैं खोजने किसको जाऊँ? बड़ा ही भ्रामक शब्द है 'स्वयं की खोज' या 'खुद की खोज'। इसे भ्रामक ही रखा गया है। इसके पीछे एक कारण है। यह अलीबाबा और चालीस चोरों द्वारा उपयोग की गई गुफा के समान है जो कुछ विशेष मंत्र पढ़ने पर खुल जाया करती थी, जिस प्रकार वो गुफा उस उपयुक्त मंत्र का उच्चारण करने पर ही खुलती थी। उसी प्रकार इस प्रश्न को भी एक ऐसी ही रहस्यमयी गुफा का रूप दिया गया है, उन लोगों से सुरक्षित रखने के लिए, जो इसके दरवाजे पर अनायास ही पहुँच गये घूमते फिरते।

खोजने चले थे धन–समृद्धि–ऐश्वर्य, कुछ लोग पा भी चुके थे लेकिन पानें की प्यास खत्म नहीं हुई थी। जब कभी ये लोग भी उसके दरवाजे पर पहुँच गये तो दरवाजे पर 'स्वयं की खोज' नामक इस भ्रामक शब्द को सुनकर वहीं से लौट जाएँ क्योंकि वे सिर्फ प्रश्न की सतह पर ही देखेंगे तो उत्तर तो गहरे कहीं स्थित है। उसे कैसे ढूंढना सम्भव होगा? अत: उन लोगों को बचाने के लिए इसे पासवर्ड प्रोटेक्टेड किया गया है।

❖❖

वास्तव में प्रकृति व उस अस्तित्व ने, हर व्यक्ति को किसी विशेष गुण से

नवाज कर भेजा है। लेकिन ये गुण कई बार स्वयं में स्थित होते हुए भी समझ नहीं आता, जब तक कि इसकी खोज न की जाए या जब तक उचित समय न आए। उचित समय आने पर ये सामने आना चाहता है तो उपयुक्त परिस्थितियाँ बन जाती हैं। यह मुख्यत: एक कूट संदेश में छुपा रहता है। जिसे हल करने में समय लगता है। हल करने के कुछ माध्यम भी मौजूद हैं उसके भी कुछ सूत्र मौजूद हैं। कुछ लोगों के लिए यह समर्पण हो सकता है और कुछ के लिए ध्यान, किसी के लिए प्रेम, तो किसी के लिए सेवा। कई माध्यम है इसे जानने के लेकिन सतत् प्रयास की आवश्यकता होती है।

ईश्वर इतना तो अवश्य करता है कि बीच-बीच में यह प्रश्न आपके मस्तिष्क में उठाता रहता है, आप इसका अनुभव भी करते हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों, में किसी विशेष अवस्था में, किसी विशेष स्थान पर, किसी विशेष काल में, यह प्रश्न कभी न कभी सामने आता है। कुछ लोग जिज्ञासा में इसे ढूँढने निकलते हैं, वहीं कुछ इसे सामान्य घटना मानकर भुला दिया करते हैं। वास्तव में स्वयं की खोज का एक भाग उसी एक गुण की खोज है, उसी एक बात को समझने का प्रयास है, उसी एक चीज को जानना कि- क्या हूँ मैं और क्यों हूँ मैं?

प्रकृति द्वारा उस एक प्रश्न के बीच को अन्तस्थ में डालने का भी एक कारण है, ताकि आप उसे खोजकर उसके निमित्त कार्य को सम्पादित कर सकें। जिस कार्य के लिए आपको प्रकृति ने चुना है। यही है सत्य की खोज का एक चरण।

कभी-कभी सब कुछ पाने के बाद भी, अच्छी शिक्षा, अच्छे माता-पिता, धनधान्य, समृद्धि, लक्ष्मी, सरस्वती, प्रेम, भक्ति, वस्तुएँ सब कुछ होने के बाद भी एक खालीपन का अहसास होता है। लगता है कुछ तो है, जो कहीं बचा रह गया, जो कहीं छूट रहा है लेकिन क्या है वो? बस यही नहीं पता।

कुछ तो है, कुछ खालीपन सा लगता है। लगता है कि इतना कुछ होने के बाद भी कोई चीज है जो अब तक समझ में न आई। यही है स्वयं की खोज, यही है सत्य की खोज, यही है स्वयं को जानना और यदि आप इस जीवन काल में स्वयं को खोजने में समर्थ हो गये तो यह प्रश्न अगले जीवन काल के लिए टलेगा नहीं। यह एक ऐसा प्रश्न था जो इसी जीवन काल में आपने हल कर लिया, वो

एक दरवाजा, जो एक विशेष मंत्र द्वारा खुलता था, उस दरवाजे को आपने खोल दिया।

❖❖

संस्कार एक अनुकूलन है। जो समाज द्वारा हर नवजात को उसकी परिस्थितियों व उपस्थित मानसिकता, उस काल में प्रचलित विचारधारा व समाज के लाभ हेतु दीक्षित किया जाता है। इस प्रकार नवजात की हर प्रतिक्रिया, अनुकूलित हो जाती है। उसकी शुद्धता जाती रह जाती है। अब वह स्वयं के विचारों का निर्माण नहीं कर सकता क्योंकि विचार भी उसे दे दिये जाते हैं। अब वह मुक्त रूप से अपने आकाश का चुनाव नहीं कर सकता है, क्योंकि उसका आकाश भी उसे दे दिया जाता है।

शरीर होने का भाव ही अहंकार है। शरीर नहीं, तो मान लिया जाता है कि अहंकार भी विदा हो गया। सामान्य मस्तिष्क यह बात स्वीकार करता है कि शरीर ही अहंकार है। इसीलिए किसी जाग्रत व्यक्ति के शरीर छोड़ने के पश्चात् ही उनके कार्यों और उनकी बातों को यथोचित महत्व मिलता है। तब उनकी बातों को ज्यादा खुले मन से स्वीकार किया जाता है, जब उस जाग्रत व्यक्ति ने शरीर त्याग दिया हो।

जागृति तभी सम्भव है जब इस सत्य का ज्ञान हो जाए कि वास्तविकता शरीर नहीं आत्मा है। सामान्य और जागृत व्यक्ति में यही एक मुख्य अन्तर है, सामान्य व्यक्ति का पूरा कार्य उसके शरीर हेतु ही सीमित होता है और जाग्रत व्यक्ति का वास्तविक कार्य उसके शरीर रहने तक होता है और उसका प्रभाव शरीर छोड़ने के बाद शुरू होता है।

❖❖

जागृत व्यक्ति की चेतना उसके केन्द्र तक सिमट जाती है परन्तु जागृति प्राप्त होने के पश्चात शरीर की महत्ता भी बढ़ जाती है क्योंकि उसे पता है कि यही वह यन्त्र है, जिसके द्वारा वह अपने कार्यों को सम्पादित कर पाएगा। यही शरीर धारण

करने का तात्पर्य है, कि इस यन्त्र का पूर्ण रूप से प्रयोग किया जा सके अपने विचारों और अपने कार्यों को आकार देने में। अत: यंत्र के रख-रखाव की महत्ता का भी जागरण होता है।

❖❖

यदि तुम्हारी इच्छा उसे पाने की है तो यकीन मानों उसकी इच्छा कहीं ज्यादा बड़ी है, तुम्हें पाने की। विलम्ब सिर्फ तुम्हारी तरफ से ही है।

❖❖

प्रयास, हर उस एक व्यक्ति के लिए है जिसकी प्यास जाग चुकी है। कम या ज्यादा। अगर वो कुछ ढूँढ रहा है तो मैं उसे ढूँढ रहा हूँ। हम दोनों ही एक दूसरे को ढूँढ रहे हैं।

❖❖

सनातन धर्म की प्रासंगिकता आज ज्यादा बढ़ गई है परन्तु उसे स्वयं भी अपनी आन्तरिक सर्जरी करनी पड़ेगी। साथ ही साथ बाह्य ओपीडी भी चलानी होगी। अपनी सर्जरी किये बिना बात आगे न बढ़ेगी। आध्यात्मिक पक्ष को उभार कर बाहर लाना होगा, अप्रासंगिक हो चुके विषयों को छोड़ना होगा। जातिवाद को ऊर्जा देनी बन्द करनी होगी। कृष्ण ने कहा कि समत्व का पालन करो। जन्म के आधार पर जाति निर्धारण सर्वथा अनुचित है। कर्मकाण्डीय पक्ष को आध्यात्मिकता का मार्ग प्रशस्त करना होगा। सत्य के बिना एक कदम भी चलना सम्भव नहीं है अगर प्रयास भी किया गया तो कदम गलत दिशा में ही पड़ेंगे।

❖❖

काम को दबाने की आवश्यकता नहीं है। दबाने पर विकृति हो सकती है। किसी लाइन को छोटा साबित करने के लिए उससे बड़ी लाइन ही खींच देना

उचित है। आनन्द के शाश्वत रस को चखने के बाद काम का क्षणिक सुख स्वयं अपना महत्व खो देता है। अनुभव से सीखना ही उचित है। काम के बारे में कोई विशेष चिंता की आवश्यकता भी नहीं। बाकी इन्द्रियों से, इसे कोई विशेष स्थान देने की भी आवश्यकता नहीं, सामान्य रखना ही उचित। उपयुक्त समय आ जाने पर इसका सुख विस्मृत होने लगता है। आनन्द शाश्वत है–सत्य है–सदैव है।

❖❖

सभी निषेधात्मक क्रियाएँ स्वयं ही अपनी प्रासंगिकता उचित समय आने पर धीरे–धीरे खो देंगी। तुम्हें इसके लिए प्रयास करने की आवश्यकता नहीं, अपनी यात्रा जारी रखो।

❖❖

साधकों के लिए दो समय खंड विशेष। 'सुबह व रात्रि' ध्यान के लिए सुन्दर काल हैं। बीच का काल कर्मयोग हेतु उपयोग किया जा सकता है।

❖❖

अगर कोई सन्देश चाहिये तो बस एक है, समर्पण। यह एक ऐसा मन्त्र है जो बाकि सभी मन्त्रों को स्वयं सिद्ध कर देता है। समर्पण, पूर्ण समर्पण, कृष्ण के लिए।

❖❖

एक साधक स्वयं को खोजने हेतु हिमालय की शरण में जा सकता है। अति सुन्दर स्थान होगा, अवश्य ही। जहाँ पर अंश और अंशी के बीच पर्दें नहीं हैं, परन्तु यह कार्य समापन होने के बाद, स्वयं को जान लेने के बाद, उसे वापस समाज में आना होगा ताकि वह उन सूचनाओं को, समाज के उपयोग में व अपने द्वारा निष्पादित किये जाने वाले कार्यों को पूर्ण रूप से सम्पन्न कर सके।

❖❖

यह पथ कोई विशेष पथ नहीं है, न ही यह कोई सामान्य पथ है, यह बस एक पथ है। बाह्य और आन्तरिक पथ में अन्तर सिर्फ इतना है कि आन्तरिक पथ तुम्हें सीधा घर लेकर जाएगा और बाह्य पथ में कई मोड़ घुमावदार ऊँचे-नीचे-लम्बे रास्ते, कभी फूलों तो कभी कांटों से भरे हैं। कभी सुगन्ध तो कभी पथरीले। फिर आगे जाकर एक गली मुड़ेगी आन्तरिक पथ की तरफ, तब चुनाव तुम्हारा होगा। यदि तुम्हारा आकर्षण इस गली की तरफ है तो तुम्हारा शरीर तो पहले पथ पर आगे बढ़ जाएगा लेकिन तुम्हारी चेतना इस गली का रूख ले लेगी फिर दोनों यात्राएँ एक साथ चलती रहेंगी। शरीर की अवधि समाप्त होने के पश्चात यह कार्य करना बन्द कर देगा, परन्तु आत्मा घर पहुँचने का प्रयास करेगी।

❖❖

नशा, विशेषत: तम्बाकू का नशा, धूम्रपान साधकों के लिए विशेष बाधक है। यह चार से पाँच दिनों तक के कार्य को बाधित कर सकता है। मदिरा नुकसानदेह है। इसका असर आपके दो तीन दिन के कार्य पर पड़ता है।

❖❖

धर्मों को जीवन देने का प्रयोजन मानवता को लचीला बनाना था ताकि वह सभी प्रकार की परिस्थितियों का सुगमता से सामना कर सकें। परन्तु जब धर्मो में स्वार्थ और लोभ का रस घोला गया तो वह अमृत, जिसका कार्य एक प्रेम पूर्ण जीवन देना था, वही विष के समान लोगों को आपस में बाँटने व लोगों का जीवन हरने लगा। अगर सभी धर्मों के विद्वतजनों ने धर्मों में घुल चुके इस जहर को मथ कर निकालने की कोशिश न की तो धर्म अपनी प्रासंगिकता खो देगें।

❖❖

जागृत व्यक्तियों ने बहुत सारी सूचनाएँ तुम्हारे लिए रख छोड़ी हैं परन्तु उसकी किसी बात को आँख बन्द करके स्वीकार न करना। वे यह चाहते भी नहीं कि उनकी खींची लकीर के तुम फकीर बन जाओ। वो चाहते हैं कि तुम स्वयं खोजो, अपना मार्ग खुद बनाओ, ताकि तुम कभी धर्म के नाम पर मूर्ख न बन सको।

फिर कोई किसी धर्म के नाम पर तुम्हारी बलि न लेने पाए, फिर कोई धर्म के नाम पर तुम्हारे समाज को गर्त में न ढकेल सके। जागृत व्यक्तियों ने अपना मार्ग स्वयं खोजा, तुम गया जाकर बोधि वृक्ष के पत्ते ना इकट्ठे करने लगना, उससे तुम्हें बुद्ध नहीं मिलेंगे। तुम उन पत्तों को ढूंढना, जो तुम्हें नवजीवन देंगे और फिर किसी से उस स्थान की चर्चा भी न करना, जहाँ पर ये महा घटना घटित हुई वरना वहाँ पर भी लोग जाकर पूजा करना शुरू कर देंगे परन्तु उससे कुछ प्राप्त ना होगा। फिर कोई व्यक्ति वहाँ मन्दिर बनाकर धन उगाही शुरू कर देगा, फिर कोई तुम्हें जन्नत के सपने दिखाकर, तुमसे तुम्हारी सबसे अमूल्य वस्तु भी छीन लेगा जिसे स्वतंत्र सोच कहते हैं क्योंकि अगर ये स्वतंत्र सोच ही ना होगी तो उसको ढूंढोगे कैसे?

आंखों पर पड़ी पट्टी को उतार कर उसे चोटिल लोगों के घावों पर बाँध दो। बस इसमें किसी का धर्म, जाति न देखना। बीमार को सिर्फ बीमार ही समझना, इन्सान को सिर्फ इन्सान ही समझना और जिस दिन ऐसा हो गया, तुम्हारे लिए खुले द्वार को कोई बन्द न कर सकेगा, तुम्हारे द्वार खुलते ही चले जाएँगे।

❖❖

ज्ञान की प्राप्ति का तात्पर्य क्या है? इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ सिर्फ इतना है कि सृष्टि के वो संदेश जो प्राकृतिक रूप में जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हुए हैं, उन संदेशों को पढ़ने की दृष्टि प्राप्त हो जाना। वे संदेश या वे पुरूष जिनका जीवन ही एक संदेश बन चुका है, उनके संदेशों को समझने की, ग्रहण करने की स्थिति प्राप्त कर लेना। वह संदेश जो ब्रह्माण्ड में यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं उन संदेशों को सुनने के लिए कानों का उपलब्ध हो जाना। यह आन्तरिक यात्रा का पहला चरण है। इसकी उपयोगिता सिर्फ उस एक व्यक्ति के लिए है, समाज के लिए नहीं।

यदि दृष्टि किसी व्यक्ति को प्राप्त हुई है तो यह सिर्फ एक व्यक्तिगत घटना है, इसीलिए ये तो यात्रा की बस एक शुरूआत है। वह संदेश तो तुमने सुने जरूर हैं परन्तु उनकी उपयोगिता को सिद्ध करने का कार्य, अब प्रारम्भ होगा। ईश्वर ने तुम्हें एक माध्यम चुना है। एक माध्यम के गुण, धर्म और कर्तव्यों का निर्वहन करना

होगा। अब जीवन स्वयं के लिए नहीं सृष्टि हेतु होगा। कृष्ण की कृपा से तुम्हें वह मार्ग मिल गया है लेकिन अब आगे बढ़ना होगा।

❖❖

पूरा कार्य यही होगा कि जो कुछ भी तुम्हें उपलब्ध है तुम उसके पार देखने की कला सीख जाओ तथा वे व्यक्ति जिनकी भौतिक तल पर उपलब्धता अभी सीमित है, तुम्हारा कुछ कार्य उनकी दिशा में भी प्रवृत हो जाए। दूसरे की यात्रा में सहायता अंतत: तुम्हारी ही यात्रा में सहायक होगा क्योंकि कृष्ण ने कहा है कि हर एक प्राणी, हर एक जीव के हृदय में, मैं बसता हूँ। यदि तुम एक कृष्ण की सहायता करोगे तो कृष्ण अवश्य ही तुम्हारी सहायता करेंगे।

❖❖

भूत से मुक्ति कैसे? भूत सिर्फ स्मृतियों का पिटारा है। हम और हमारी स्मृतियाँ, अच्छी और बुरी, सुन्दर और कड़वीं। यदि हम बैठकर अतीत की अच्छी स्मृतियों को आज टटोलते हैं तो निश्चय ही वर्तमान में कुछ न कुछ गड़बड़ है। यदि हम मुश्किल वर्तमान से गुजरते हैं तो अच्छा अतीत हमें याद आता है। परन्तु अतीत की वो बातें जो सुन्दर होती हैं, सिर्फ अतीत में कुछ किये गये कार्यों के ही परिणाम हैं।

परीक्षा में अच्छे अंक लेकर नौकरी मिल जाना, वो पहली कमाई, वो एक दिन जब प्रेमिका ने तुम्हारे प्रेम अनुरोध को ठुकराया नहीं था। ये सभी किये गये कार्य के परिणाम ही तो हैं। परन्तु ये मत भूलो की परीक्षा में अच्छे नम्बर पाने हेतु तुमने कितना परिश्रम किया होगा। नौकरी पाने के पहले कितने पापड़ बेले गये होंगे। वो पहली कमाई का सुख जिसने दुर्दिनों की यादें धुंधली कर दीं। वो प्रेमिका के मान जाने का आनन्द, उसके पीछे की गई तुम्हारी मेहनत के कष्ट को मिटा देता है। यदि वर्तमान कष्टप्रद है तो पुराने दिनों की अच्छी यादें जरूर सामने आ जाती हैं। विरोध तो यही हो गया कि वर्तमान में चलने वाली प्रक्रिया की तुलना हम भूत में हो चुके कार्यों के परिणाम से कर रहे हैं अत: कष्ट होना सम्भव है।

भूतकाल का कोई बुरा अनुभव, सदा इसलिए परेशान करता है कि भविष्य में भी कहीं उस अनुभव से दुबारा न गुजरना पड़े अर्थात् तुम्हें भूत ही नहीं भविष्य भी परेशान कर रहा है। इन भूतकाल की स्मृतियों में और भविष्य के संशय में सिर्फ एक ही बात समान है, वो है– हम, मैं स्वयं। यदि 'मैं' हूँ तो भूत है, भूत की सुखद और कष्टप्रद स्मृतियाँ हैं और यदि 'मैं' हूँ तो भविष्य का संशय है। एक ही चीज है जो अतीत व भविष्य से मेरा सम्बन्ध जोड़े हुए है वह है 'मैं'।

❖❖

आत्मा, जीवात्मा और चेतना इन तीनों में भेद समझ लेना जरूरी होगा। आत्मा वह 'परमेश्वर का अंश' जो तुम्हारे अन्दर है। वह उतना ही शुद्ध, उतना ही पवित्र है, जितना परमेश्वर में हो सकता है। फिर आवरण आता है, जीवात्मा का। जीवात्मा वह भाग है जिसमें तुम्हारे सारे कर्म, कर्मफल, तुम्हारी विचारधारा, तुम्हारी समाजिक विचारधारा, संस्कार, तुम्हारा दैव, काम, क्रोध, लोभ और मोह, इच्छाएं, ये सारी परतें एक के ऊपर एक जुड़ी हुई हैं। जितनी कम इच्छाओं की पूर्ति, उतना ही मन ज्यादा चंचल।

फिर आती है चेतना। यदि तुम एक दिन ध्यान में बैठे हो और मन को बिल्कुल बंद कर दो, मन में कोई भी तरंग न उठ रही हो तो जो भाग बचता है, चेतना है। वो हो तुम, मन के बन्द होने के बाद भी, तुम्हारे कर्म और कर्मफल चेतना पर आवरण बना के रखेंगे। मन से मुक्ति तो तुम्हारी आवश्यकताओं की पूर्ति, तुम्हारी समृद्धि, तुम्हारी अभीप्सा, तुम्हारी प्यास, ध्यान के द्वारा सम्भव है परन्तु जीवात्मा के ऊपर छाए हुए कर्म और कर्मफल अभी भी शेष बचेंगे। जो तुम्हारी चेतना को आत्मा से मिलने से रोक रहे हैं, इससे कैसे मुक्ति मिले?

इससे मुक्ति पाने का सबसे सुन्दर उपाय है समर्पण, भक्ति। भक्ति की अगली अवस्था समर्पण है। जब तुम इस भाव में आ जाते हो कि तुम्हीं सब जानते हो, अत: तुम्हारी इच्छा पूरी हो। अब छोड़ दो डोर अपनी, बहुत हाँक लिया इस रथ को, मन रूपी घोड़े विदा हो रहे हैं, ये रथ अब हल्का हो चुका है। तो प्रभु अब समर्पित हूँ मैं अब तुम्हारे चरणों में, जो कराना है कराओ। अब मैंने अपना चक्र

पूरा कर लिया है अब वो कार्य होगा, जो आप चाहते हैं। अब मेरी कोई इच्छा नहीं होगी क्योंकि मैं तो जब सोचूँगा तो छोटा ही सोचूँगा।

बड़ी सुन्दर बात कही है ओशो ने, अब मैंने सोचना बन्द कर दिया। अब तुम सोचो मेरे लिए और जो तुम सोचोगे ठीक ही होगा। तुम्हीं ने सृष्टि की रचना की है, सूर्य को तेज दिया, चन्द्रमा को शीतलता और तारों को टिमटिमाहट दी है। जो तुम मुझे दोगे वो सुन्दर ही होगा। मेरे विचार भी मेरी आकृति की तरह ही छोटे हैं अब सोचना ही बन्द कर दिया मैंने।

❖❖

बहुत मन से पढ़ाई की, यहीं तो बनना चाहता था मैं, बचपन से ही मेरा सपना था कि मैं यही बनूँ। यही थी मेरे सपनों की उड़ान, जिसके लिए मैंने अपना पूरा प्रयास किया, अपनी पूरी ऊर्जा दी, अपना बचपन दिया, अपने खेल को भी त्याग दिया क्योंकि मुझे यही तो बनना था। मेहनत सफल हुई और देखो बन भी गया। आज इतने साल बीत गये, ये काम करते-करते, परन्तु अब ये भी बोझ लगने लगा है। इससे भी कभी-कभी ऊब जाता हूँ कभी असफलता हाथ लगती है तो अधीर हो जाता हूँ फिर कुछ दिनों में वापस सामान्य, परन्तु लगता है कि अभी भी कुछ छूटा हुआ है। अभी भी कहीं कुछ खाली है। क्या मैं कुछ और बनना चाहता था? क्या मैं कुछ और करना चाहता था? लेकिन अब लगता है कि हाँ, कुछ और है, कुछ अभी बाकी है।

ये जो प्रश्न तुम्हारे अन्दर उठा, ये तुम्हें एक संकेत दे रहा है और प्रश्न जितना जोर से उठना शुरू होगा तो समझना ये तुम्हें ढकेल रहा है कि खोजो! खोजो, अभी भी कुछ है बाकी, जो छूट रहा है। जो होना था, वो तो हो गया लेकिन अभी कुछ और भी है जो कहीं तुम्हारा इन्तजार कर रहा है, बस उसे समझ नहीं पा रहे हो। कुछ और, शायद कुछ और करना था मुझे, कोई और कैरियर चाहिए। इस प्रकार फिर एक प्रश्न में उलझ जाते हो। कभी-कभी नया कैरियर चुन कर कुछ सालों में यही प्रश्न, फिर सामने खड़ा हो जाता है। यही तो है स्वयं की खोज। तुम्हारी चेतना को अभी भी कुछ खोजना बाकी रह गया है और ये प्रश्न उठकर तुम्हें बार-बार संकेत दे रहा है कि 'खोजो अभी कुछ शेष है' अभी कुछ पाना

बाकी है। कुछ है जो छूट रहा है, यही है 'स्वयं की खोज'।

❖❖

यदि शतरंज की बिसात पर बिछे सारे प्यादे अपनी-अपनी चालें स्वयं ही चलने लगें तो शतरंज का खेल कभी पूर्ण ना हो पाएगा। चालों में कोई नियम ही न रह जाएगा, व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाएगी। ये खेल कब पूरा होगा, पूरा होगा भी की नहीं? काफी सम्भावना है कि कुछ प्यादे चलते-चलते, उतर के बिसात से बाहर ही चले जाएं। खेल का कोई अस्तित्व ही न रह जाएगा। बिसात की कोई आवश्यकता ही न रहेगी और वो सिर्फ एक बन्जर भूमि की तरह होगा, जिस पर कोई खेल ना खेला जा सकेगा।

ये खेल सुरूचिपूर्ण रूप से सम्पन्न किया जा सके इसके लिए प्यादों को खिलाड़ी के प्रति समर्पित होना आवश्यक है। उसका समर्पण ही उसका भजन है, उसका समर्पण ही उसकी पूजा है, अब यह खेल खेलने वाले के ऊपर है। खेल अवश्य ही समाप्त हो जाता है और समाप्त होने के बाद प्यादों को सम्भाल के रख लिया जाता है, ताकि फिर यह खेल कभी फिर से खेलना हो तो किसी तैयारी की आवश्यकता ना हो, शतरंज की विसात पर पड़े उन सभी मोहरों का कार्य पूर्ण हो जाता है।

सिर्फ पूर्ण समर्पण से खेल निश्चित अवधि में पूरा हो जाएगा, वे अपने घर में सँभाल के रख दिये जाएंगे। खेल, खेल बना रहेगा क्योंकि यदि मोहरें नहीं तो खिलाड़ी का भी कोई अस्तित्व नहीं। यदि मोहरे हैं तो खिलाड़ी हैं। अगर मोहरे न होंगी तो वे अपनी कला न दिखा पाएंगे।

इसलिए इस खेल से जल्दी निकल जाने का अत्यंत सुन्दर उपाय है, समर्पण। खेल के दौरान सभी प्यादे अपना-अपना कार्य पूर्ण कर, अपने उसी बक्से में वापस लौट जाएँगे, परन्तु अगर विरोध होता है तो इस खेल को नुकसान होता है। समर्पण से खिलाड़ी अपने मोहरों के प्रति उतना ही समर्पित होता है, जितना समर्पित मोहरे खिलाड़ी के प्रति।

❖❖

ओशो पृथ्वी पर उन संस्कारों को साफ करने आए थे, जो जड़ हो चुके थे जो चलयमान नहीं थे, जो स्थिर हो गये थे और जो तुम्हारी यात्रा में बाधा पहुँचा रहे थे। उनका कार्य सिर्फ उन्हीं संस्कारों को साफ करना था। तुम्हें ये सूचना दे देनी थी कि इनसे मुक्ति पा लो, अब इनकी आवश्यकता नहीं है। इस सृष्टि का सबसे सुन्दर पक्ष यही है कि ये चलयमान है। संस्कार जो इसकी गति के साथ चल नहीं पाते समाप्त हो जानें चाहिए।

उन्होंने हर उस संस्कार की ओर तुम्हारा ध्यान खींचा जो तुम्हें स्वयं रोक रहे थे, बाधा पहुँचा रहे थे। अपनी प्रासंगिकता खो चुके थे, उन्होंने यह कार्य बहुत सुन्दर प्रकार से किया। उन्हें पता था कि इस पृथ्वी पर उनका प्रायोजन क्या है? इस समर्पण ने ही प्रकृति को ये अवसर उपलब्ध करवाया कि ओशो के माध्यम से यह कार्य सम्पन्न करा लिया जाए। अपने जड़ संस्कारों का ज्ञान पहले प्राप्त करो, जानो कि वो क्या है? तत्पश्चात् ही उनसे मुक्ति मिल पाएगी।

यह संसार एक विद्यालय की तरह है, जिसमें हर एक विभाग के शिक्षक अपना-अपना कार्य पूरी जिम्मेदारी के साथ निभाते हैं और उनका अपने कार्य के प्रति समर्पण ही इस विद्यालय का नाम उज्जवल करता है। वो आने वाले विद्यार्थियों को अपनी ओर आकर्षित करता है, उनका अपने विभाग के प्रति समर्पण ही वह पत्थर है जिनसे इस विद्यालय की रचना की गई इसलिए स्वयं को जड़ता से मुक्त करने को ओशो के पास अवश्य जाना। जाओ देखो और सुनो वो क्या कह रहे हैं? एक क्रान्ति घटित होने को है।

❖❖

अपनी बाह्य यात्रा के साथ आन्तरिक यात्रा का भी ध्यान रखो। एक को चलने के लिए दूसरे को बन्द करने की आवश्यकता नहीं है। दोनों साथ-साथ समानान्तर तरीके से चल सकते हैं। बाह्य जगत में अपना अभिनय करते रहो लेकिन आन्तरिक जगत में खोजते भी रहो। खोजते रहोगे तो एक दिन तुम्हे तुम्हारी गली भी मिल जाएगी। जरूरी नहीं कि वो गली सभी के लिए हो, किसी और के लिए कोई और गली होगी। जब तुम्हे पता चल जाए कि तुम्हारी गली कौन सी है, तो वो तुम्हारा

आन्तरिक पथ होगा।

❖❖

परन्तु ये न सोचना कि यात्रा अभी प्रारम्भ हो गई है, अभी तो यात्रा की तैयारी हो रही है। अभी तो सिर्फ सामान ही रखा है, बल्कि सामान भी खोज रहे हो कि कौन-कौन से सामान इस यात्रा पर जाएँगे? आन्तरिक यात्रा पर चलते-चलते और समर्पण भाव में निबद्ध रहते हुए एक दिन आएगा, जब जान जाओगे कि तुम कौन हो, तुम स्वयं को खोज लोगे और लाओत्से ने कहा- 'तुम्हारी आन्तरिक यात्रा वास्तव में प्रारम्भ तब होती है जब तुम स्वयं को खोज लेते हो, क्योंकि उस दिन स्वयं के लिए तुम्हारा कार्य समाप्त हो जाता है। उस दिन तुम्हें कोई और कार्य मिल जाता है और उन कार्यों का सम्पादन ही तुम्हारा आनन्द है। तुम्हारी आनन्द यात्रा वहीं से शुरू है, अनुभव लेते जाना है और उसे बांटते जाना है।'

❖❖

आनन्द जब आता है तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि तुम तो बैठे हो लेकिन तुम्हारे अन्दर कुछ है जो नाच रहा है, झूम रहा है गा रहा है। तुम्हें लगता है कि ये क्या हुआ? ऐसा पहले कभी कुछ जाना नहीं, ऐसा पहले कभी कुछ महसूस नहीं हुआ, ऐसा पहले कभी कुछ अनुभव नहीं हुआ। ऐसा पहले कभी कुछ चखा नहीं, प्रेम रस में डूब जाने को मन करता है। कृष्ण के चारों ओर नाचने का मन करता है। लगता है कि तुम अब समाप्त हो गये हो, बचा है तो सिर्फ नाच।

❖❖

मेरा कार्य शबरी का है- एक सेवक और एक प्रेमी का। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं, बस इतना ही काफी है। बेरों को चखते जाना, खट्टे बेरों को एक तरफ रख देना और मीठे बेरों को मित्रों को देते जाना। अन्तर यही होगा कि वो बेर प्रभु को न देकर मित्रों को देने होंगे। इसी में मेरा आनन्द है, यही मेरा कार्य है।

❖❖

यह मार्ग अभी लम्बा है, अब तक प्राप्त सूचनाओं को बाँट देना है और आगे की यात्रा है। अभी बहुत कुछ जानना-समझना बाकी है और उसे बाँटना है। यही मेरा कार्य है, बहुत कुछ अनुभव करना भी शेष है।

❖❖

जिस प्रकार एक बालक की लीलाओं का पूर्ण आनन्द सिर्फ उस एक स्थान पर उपस्थित रहने से लिया जा सकता है, उस लीला में स्वयं सहभागी बनने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उसकी लीलाएँ स्वयं अपने आप में पूर्ण हैं। दृष्टि ही वो काम करेगी, दृष्टि के ही माध्यम से आप उन लीलाओं में भाग ले सकते हैं। उसे अपनी लीला करने देनी चाहिए।

ठीक उसी प्रकार आन्तरिक दृष्टि से आप ब्रह्म की लीलाएँ देख सकते हैं, सिर्फ द्रष्टा बनने की आवश्यकता है सिर्फ उस स्थान पर रहने की आवश्यकता है। लीला तो सदा चल ही रही है, आपको बस लीला में साक्षी बन जाना है। एक द्रष्टा बन जाना है और वही पूर्ण आनन्द है आपका कार्य बस उस स्थल तक पहुँचने का है, बाकी काम आपकी आन्तरिक दृष्टि ही कर लेगी।

❖❖

क्रोध तब प्रकट होता है, जब सच बीच-बीच में उभरता है। तब व्यक्ति सत्य को बल देने के लिए, क्रोध के आवेग में लपेटकर उसे प्रदर्शित करता है। इससे उसे लगता है कि सत्य का प्रभाव बढ़ जाएगा, सत्य उभरकर सामने आ जाएगा, सत्य में सत्यता की मात्रा बढ़ जाएगी। व्यक्ति क्रोध के माध्यम से असत्य को छुपाने का भी प्रयत्न करता है । उसे लगता है कि उसके अन्दर जो कुछ भी असत्य है उसे क्रोध का आवेग ढँक देगा, विशेषत: तब, जब सत्य को क्रोध के साथ मिलाकर प्रकट किया जाए।

परन्तु वे व्यक्ति जो स्वयं सत्य स्वरूप हो जाते हैं उन्हें सत्य की प्रबलता को प्रदर्शित करने के लिए आवेग की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि सत्य स्वयं ही आवेग है। वो चोट करता ही है, उसे धीमे से बोला जाए या तेजी बोला जाए।

आवाज के ऊँचा या नीचा होने पर सत्य की गुणात्मकता में, उसकी शुद्धता में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अत: जैसे-जैसे सत्य अवतरित होता जाता है क्रोध धीरे-धीरे मार्ग छोड़ता जाता है क्योंकि क्रोध का आवेग सिर्फ सत्यता को छुपाने, उस पर पर्दा डालने के लिए ही उपयोग होता है। सत्य की गुणात्मकता को घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता। अत: पूर्ण सत्य को क्रोध के माध्यम की आवश्यकता नहीं है।

❖❖

वे संस्थान जो सेवा स्वरूप हैं, जिनका कार्य ही सेवा है, जिनका स्वरूप ही सेवा है, यदि वो सेवा करें तो कोई खबर नहीं। क्योंकि उनसे यही अपेक्षित है, यही उनका कार्य है, इसी को मार्ग के रूप में चुना गया है। खबर तो तब बनेगी जब वह संस्थान कुछ असत्य करने लगेगा। यदि स्वर्ण मन्दिर में रोज लंगर में हजारों लोगों को प्रसाद बांटा जाता है, प्रतिदिन भूखे लोग, सभी धर्म, जाति, प्रजाति के लोग वहाँ आश्रय पाकर भोजन ग्रहण करते हैं तो यह कोई सूचना नहीं। परन्तु उस स्वर्ण मन्दिर में जब तलवारें चल जाती हैं, दो गुट आपस में भिड़ जाते हैं तो वह खबर बन जाती है। सिर्फ इसलिए कि यह उनका मार्ग नहीं है।

इसी प्रकार वह व्यक्ति जिसे कभी सेवा के लिए न जाना गया हो जिसने जीवनभर धन ही अर्जित किया हो, यदि वो धन अर्जित करता हो तो उसमें कोई भी सूचना या खबर नहीं है। सूचना तब बनेगी जब वह कभी थोड़ी सेवा कर देगा क्योंकि तब यह आश्चर्य की भाँति हो जाएगा कि वो व्यक्ति जिसने धन ही अर्जित करने में अपनी सारी ऊर्जा लगा दी हो, उसने आज सेवा की। उसने आज स्वयं के पार जाकर किसी और के बारे में, किसी और हेतु कुछ किया, यह खबर है।

❖❖

वह रास्ते का एक पड़ाव ही है जब दृश्य साफ दिखाई देता है। उलझन सुलझती प्रतीत होती है। बिखरे हुए टुकड़े पास आकर जुड़ते हुए प्रतीत होते हैं तथा वह चित्र की सूचना दे देते हैं। बातों में विज्ञान, थोड़ी गहराई भी आती प्रतीत होती हैं परन्तु यह सिर्फ एक पड़ाव है। गहराई को और गहरा बनाएँ।

❖❖

अब विचारों की आवश्यकता नहीं है क्योंकि विचार जब आएंगे तो शब्दों को अपना माध्यम बना के आएंगे और ये जो कुछ भी हैं इन्हें शब्दों में बाँधना किस प्रकार सम्भव होगा? ये जो अनुभूति है, ऐसे कौन से शब्द हैं जो इसे पूरे तरीके से समझा पाएंगे? अब जो भी घटित हो रहा है, लगता है वह शब्दों के पार, शब्दों से समझाऊँगा तो समझा ना पाऊँगा और हमारे बीच का जो माध्यम है वो भी अभी शब्द ही हैं। शब्दों का प्रयोग मुश्किल है सिर्फ अनुभव किया जा सकता है। अब शब्दों की आवश्यकता नहीं है उनकी सीमा प्रतीत होती है कि समाप्त हो चुकी है। कुछ है जो शब्द के भी पार है, उसका वर्णन न कराओ। एक ही मंत्र है– 'चरैवैती–चरैवैती'।

❖❖

प्रेम की परिधि के बाहर हर चीज व्यापार है। जहाँ प्रेम नहीं वहाँ सिर्फ व्यापार और लेन–देन है। वस्तुत: पाने वाले को खुशी और खोने वाले को सदा दुख ही प्राप्त होगा। प्रेम का साम्राज्य ऐसा है जहाँ व्यापार नहीं है और जहाँ व्यापार है वहाँ प्रेम हो ही नहीं सकता। अत: यहाँ सुख और दुख के लिए भी कोई स्थान नहीं है। यहाँ अगर कुछ प्राप्त हो सकता है तो वह है सिर्फ आनन्द, आनन्द ही यहाँ की मुद्रा है। आनन्द ही यहाँ का भोजन और आनन्द ही यहाँ की मित्रता। अक्सर मन्दिरों में भगवान से व्यापार चलता है– इस मनोकामना की पूर्ति हो जाती है तो १०१, उसकी हो जाती है (जो बड़ा काम है) तो ५०१, ये काम जो वर्षों से अटका पड़ा है तो इसका १०,००१।

❖❖

शरीर दुख और सुख का व्यापारी है। जब जन्म हुआ तो सुख और जब कष्ट आया तो दुख। जब कोई व्याधि हुई तो दुख, बुढ़ापा आया दुख, शरीर ना रहा दुख, विवाह हुआ सुख। बच्चे हुए सुख और न हुए दुख। पत्नी से अच्छी बनी तो सुख और नहीं बनी तो दुख। परीक्षा में नंबर अच्छे आए तो सुख वरना दुख । दुख इस बात का ज्यादा कि मेरे नम्बर चलो अच्छे नहीं आए लेकिन वो सामने वाले के

नम्बर कैसे ज्यादा आ गये? जीवन का पूरा ताना बाना शरीर के आस-पास बुना गया है और शरीर, सिर्फ व्यापार करता है। वो सिर्फ सुख और दुख की मुद्रा ही पहचानता है। एक क्षणभंगुर, अल्पजीवी शरीर जो स्वयं में सत्य नहीं है, वो खुशी कैसे देगा? वो आनन्द कैसा देगा? यदि हम एक शरीर ही रह गये तो सुख और दुख अवश्यंभावी है।

सुख और दुख के ताने बाने से निकलना है तो इस शरीर को जीवन मानना छोड़ना पड़ेगा। इस शरीर के अन्दर जो सत्य है उसे ढूँढना होगा, क्योंकि सत्य तो शाश्वत नियम की तरह है जो सदैव विस्तृत होता है, सदा उपस्थित होता है। यदि जीवन शरीर न होकर आत्मा हो गया जो कभी नहीं मिटती तो इस झूठ और सच, इस सुख और दुख के ताने-बाने से निकला जा सकता है। जो कुछ भी जीवन में सत्य है उसे ढूँढना होगा। अगर सारी गतिविधियाँ इस शरीर के आस पास ही चलती रहीं तो दुख होना स्वाभाविक है। उसे ढूंढना होगा जो इस शरीर के पार है क्योंकि वही सत्य है, वही आनन्द का सूत्र है।

❖❖

यदि जीवन में सिर्फ प्रेम भी मिल गया तो ये जान लेना होगा कि इस जीवन के होने की सार्थकता सिद्ध हो गई। यदि प्रेम की प्राप्ति हो गई तो आपके लिए अन्त: यात्रा का पहला द्वार तो खुल ही गया। प्रेम किस रूप में आएगा इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ये किसी भी रूप में आए ये प्रेम ही होगा। ये चाहे आपके दादा-दादी से प्राप्त हो, चाहे आपके माता-पिता से या चाचा-चाची से या कहीं और से, बच्चों से या पत्नी से या प्रेमिका से, जहाँ से भी ये प्राप्त हो लेकिन यदि ये प्रेम है तो निश्चित तौर पर आपने पहला द्वार तो खोल ही दिया। अब वो प्रभु की कृपा से हुआ हो या अपने कर्मों के प्रभाव से या आपकी स्वभावगत विशेषता से जिस किसी भी प्रकार से ये प्राप्त हुआ हो और इसका कारण जो कुछ भी रहा हो, यकीन मानो पहला द्वार खुल गया है।

प्रेम क्या है, इसको समझ लेना भी जरूरी है। जहाँ कहीं भी व्यापार हो, जिस किसी सम्बन्ध में व्यापार हो, लेन-देन का क्रम चले, जब मुझे ये प्राप्त होगा, तब तुम्हें वापसी में ये प्राप्त हो जाएगा। व्यापार चलता है तो वहाँ पर प्रेम की सम्भावना

तो दूर-दूर तक नहीं है। जहाँ कहीं भी व्यापार हो तो समझ लेना कि यहाँ प्रेम नहीं है। प्रेम गोमुख से निकलती वो गंगा है, जो जब प्रस्फुटित होती है तो सागर में पहुँचने से पहले वो सिर्फ बाँटती ही चलती है। वो सिर्फ अभिलाषाएँ पूरी करती ही चलती है, आप भले ही उसे गन्दगी दें, आप भले ही उसमें कचरा फेंके, आप भले ही उसमें नहा लें, अपने शरीर का मैल उसमें प्रवाहित कर दें लेकिन बदले में वो आपको सिर्फ गंगाजल ही देगी। यही प्रेम है, जहाँ पर लेन देन समाप्त हो जाए समझ लीजिएगा कि प्रेम वहाँ से फूट पड़ा है।

आपने जीवन में किसी एक को भी प्रेम दे दिया तो यकीन मानिये आपने उसे सत्य के पथ पर आगे भेज दिया। आपने अपना कार्य कर दिया और इससे ज्यादा धार्मिक कार्य होता हुआ, कोई दूसरा नहीं दिखाई देता। ये सबसे बड़ी पूजा होगी, यदि आपने किसी एक जीवन में प्रेम की प्रवृष्टि करा दी, इससे बड़ी पूजा सम्भव नहीं है क्योंकि आपने उसको सीधे प्रभु के मार्ग पर डाल दिया अब आगे उसके लिए बस एक ही मार्ग शेष बचेगा, बढ़ने का।

अब ये उसकी प्यास पर निर्भर करता है कि उस मार्ग पर वो कब आगे बढ़े लेकिन आपने तो अपना कर्तव्य कर दिया। आप कितने भी धाम हो आए लेकिन इससे बड़ा पुण्य कभी प्राप्त नहीं कर पाएंगे और यदि आप प्रेम बाँटते चल रहे हैं तो यकीन मानिए आपको किसी धाम जानें की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन धामों की सार्थकता तो आपने अपने स्थान पर ही सिद्ध कर दी। जो बातें वहाँ जाकर सीखनी थी-वहाँ जाकर जाननी थी, आपने घर बैठे ही जान ली और सिर्फ जानी ही नहीं, आपने लोगों से उसका परिचय भी कराना प्रारम्भ कर दिया।

❖❖

यदि आपने अपने जीवन में सिर्फ धन ही अर्जित किया है। जीवनभर धन कमाया, सम्पत्तियाँ बनाई, मकान बनाए, जमीनें खरीदीं तो उसका उपयोग आप शरीर रहने तक ही कर सकते हैं। इस शरीर को छोड़ने के पश्चात हो सकता है कि आगे वाली पीढ़ियाँ आपका श्राद्ध और तर्पण मन से करें। हो सकता है वो पांच पंडितों को भोजन कराने की जगह ११ को करा दें। लेकिन शरीर छोड़ने के पश्चात आपको आगे आने वाली पीढ़ियाँ उतना ही प्रेम देंगी ये कोई आवश्यक नहीं, ये

उनकी प्रकृति पर निर्भर करेगा परन्तु यदि आप अपनी आन्तरिक यात्रा पर निकल गये और आन्तरिक यात्रा में पाई हुई अनुभूतियों को लोगों, मित्रों, व्यक्तियों, समाज, देश, विश्व से, परिचित कराया तो यकीन मानिए कई लोगों के लिए आप प्रेरणा के स्वरूप बन जाएंगे।

कई लोगों की आन्तरिक यात्रा प्रारम्भ करने में आप सहायक हो जाएंगे। इस प्रकार हो सकता है आपकी उपयोगिता आपके शरीर छोड़ने के सैकड़ों वर्ष पश्चात् भी बनी रहे। वह निर्भर करता है कि कितनी गहराई तक गोता लगा लिया आपने और कितना बाँट दिया। अब आगे का निर्णय आपका होगा कि आपको आगे आने वाले पीढ़ियों के लिए जीना है, जिनका आदर आपको प्राप्त होगा ही, यह भी कोई आवश्यक नहीं या अपनी बाह्य यात्रा के साथ–साथ एक और पथ खोलना है और हो सकता है वो पथ आगे आने वाले लोगों के लिए एक मार्ग का सृजन कर दे। उन्हें पता चल जाए कि यह भी एक मार्ग है, जिस पर पहले कभी कोई गया है। तात्पर्य यह नहीं कि आप बाह्य यात्रा छोड़ दीजिए सब कुछ छोड़कर संन्यास में निकल जाइये या धन कमाना बन्द कर दीजिए, नहीं ऐसा बिल्कुल नहीं है क्योंकि कृष्ण ने कहा है कर्म तो करना ही होगा, जब तक ये शरीर है। अगर कुछ कर्म नहीं किया जाए तो शरीर प्राप्ति की उपयोगिता भी सिद्ध नहीं होती तो अवश्य कर्म करते रहिए लेकिन अनुरोध बस इतना है कि इस बाह्य यात्रा के साथ एक आन्तरिक यात्रा की शुरूआत कीजिए।

बाहरी जगत में तो आपने काफी कुछ देख लिया, ढूँढ लिया, लेकिन अभी भी बहुत कुछ देख लिया जाना बाकी है। ठीक उसी प्रकार आन्तरिक जगत में भी हर एक कदम के साथ आपको ये ज्ञात हो जाएगा कि थोड़ा पाया है, अभी बहुत कुछ पा लिया जाना बाकी है। इस यात्रा की तरफ भी ध्यान दीजिए प्रेम, इस यात्रा का वाहन है, प्रेम के साथ ही आपकी यात्रा प्रारम्भ हो जाएगी। अपनी सारी व्यवहारिक क्रिया करते हुए बस एक प्रेम का द्वार खोल दीजिए इतना करना ही बहुत होगा। यकीन मानिए, बहुत भारी सम्पदा अन्दर है, बहुत कुछ है जिसे पा लिया जाना है। बहुत कुछ है, जिसे अनुभव कर लिया जाना है। बहुत कुछ है जिसे पी लिया जाना है और जितना पीते जाएँगे प्यास कम न होगी। यदि अभी तक

आपकी आन्तरिक यात्रा प्रारम्भ नहीं हुई है तो प्रेम से उसे प्रारम्भ कीजिए। फिर आगे का मार्ग आप स्वयं ही ढूंढ़ लेंगे।

यदि आप किसी गुरू को ढूंढ़ रहे हैं अथवा यदि आप यह सोचते हैं कि कोई एक व्यक्ति मिलता जो ये बताता कि क्या करना है? कैसे करना है? कौन सा मार्ग हो, क्या तरीका हो? क्या कर लिया जाना चाहिए, क्या छोड़ दिया जाए? इन सारे प्रश्नों के उत्तर प्रेम के मार्ग पर चलते-चलते रास्ते में आपको मिल जाएंगे। बाहर मत ढूँढ़िये, प्रेम सबसे बड़ा गुरू है, वहीं से प्रारम्भ कीजिए।

❖❖

आपका शरीर ही आपका मन्दिर है, इसमें पशुता से लेकर दिव्यता का पूरा मार्ग है। एक पूरा रास्ता है जो आपको सामान्य से दिव्य बना सकता है, जो आपको कुछ से सब कुछ बना सकता है और आपको बहुत कुछ से शून्य बना सकता है। बाह्य मन्दिरों में बहुत सारे ऐसे संकेत छुपे हुए हैं जो इशारे करते हैं कि अपने शरीर रूपी मन्दिर को पहचान लीजिए। बहुत कुछ ऐसा है बहुत सारे संदेश हैं, जिन्हें पढ़ने की आवश्यकता है, जिन्हें जान लिये जाने की आवश्यकता है। आप अपनी यात्रा बाह्य मन्दिर से प्रारम्भ कर सकते हैं लेकिन मध्य में कभी न कभी वो आपके आन्तरिक मंदिर की तरफ संकेत कर ही देगा कि अभी भी यात्रा है। इसको भी प्रारम्भ करो, समर्पण बहुत सुन्दर उपाय है।

❖❖

ऐसा प्रतीत होता है कि जब सहस्त्रार खुल जाये तब आप पूरे तरीके से केन्द्र में स्थित हो जाते हैं। समय का अभाव हो जाता है। शुरूआत से ही आप महसूस करते हैं कि धीरे-धीरे समय का प्रभाव, सघनता कम हो रही है, जब व्यक्ति छठवें या सातवें स्तरों पर होते हैं (आज्ञा या सहस्त्रार्थ चक्रों पर)। मेरा मानना है कि सहस्त्रार पर आकर समय का प्रभाव बहुत ही विरल हो जाता होगा। मजबूत बंध थोड़े-थोड़े टूटते प्रतीत होते हैं, शरीर के साथ जुड़ाव ही वजह है पुर्नजन्म का।

चेतना सात विभिन्न तलों अर्थात् विभिन्न चक्रों अर्थात् सात विभिन्न शरीरों में

क्रम से एक चक्र से दूसरे चक्र तक पहुँचती हुई अन्ततः सहस्त्रार के माध्यम से शून्य में विलीन हो जाती है। यही है आन्तरिक उत्थान, यह यात्रा पशु से परमेश्वर अर्थात् मूलाधार से सहस्त्रार के बीच की है।

❖❖

समय का तात्पर्य है– 'काल' और काल का चक्र सदैव चलायमान है। यह घूमता रहता है इसीलिए इसे चक्र कहते हैं, इसके एक पक्ष पर सुख और दूसरे पक्ष पर दुख है। जब तब काल है तब तक सुख और दुख बने रहेंगे। यह शरीर काल से बंधा है क्योंकि शरीर की जीवनयात्रा निर्धारित है। जो शरीर काल से बँधा हो, जिस काल के दो पक्ष सुख और दुख हो, वह शरीर कभी सुख और दुख से विरत नहीं हो सकता। अर्थात् यह शरीर सुख और दुख से बना है इस सुख और दुख से पार जाने का सिर्फ एक रास्ता है जो शरीर के पार जाता है। सुख और दुख के पार जाने का तात्पर्य, काल के पार जाना है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने यह बात जान ली थी तभी उन्होंने विभिन्न माध्यमों की खोज की। जो माध्यम मनुष्य की चेतना को काल के पार ले जा सके।

❖❖

यदि चमत्कारों में ही आपकी रूचि है तो इससे बड़ा चमत्कार क्या होगा कि आपको अपना कार्य पूरा करने के लिए एक शरीर मिला है। जो आपके विचारों और उनके क्रियान्वयन के लिए पूरी तरीके से समर्पित है। बस इस पर पूर्ण नियंत्रण की एक ही शर्त है कि स्वयं को आइने में देख लिया जाये। स्वयं को पहचान लिया जाए। जिस दिन आप स्वयं को पहचान लेते हैं, स्वयं की खोज कर लेते हैं यह शरीर एक सेवक की भाँति आपके कार्यों को पूर्ण करने हेतु पूर्ण समर्पित हो जाता है। परन्तु जब तक स्वयं की खोज न की गई हो, तब तक हम शरीर ही बने रहते हैं, हमारा शरीर पर भी नियंत्रण नहीं होता, मन का हम पर नियंत्रण होता है। फिर जो शरीर चाहता है वो होता है। आप अनुचर होते हैं और शरीर स्वामी।

स्वयं को जान लेने के पश्चात् भूमिकाएँ बदल जाती हैं, आप स्वामी और शरीर आपकी आज्ञा का पालन करता है। आप जब तक रथ बने रहते हैं तो रथ अपने

हिसाब से यात्रा तय करता रहता है परन्तु वास्तव में वहाँ कोई यात्रा ही नहीं है। वो तो एक मैदान में गोल-गोल घूमना है परन्तु जब ये बात जान ली जाती है कि आप रथ नहीं, इस रथ के सारथी हैं तब ये रथ आपके पूर्ण रूप से उपयोग के लिए उपस्थित रहता है। अब इसका जिस प्रकार से उपयोग कीजिए, ये आपकी पूर्ण सहायता करेगा। इस शरीर के अपने गुण धर्म हैं। शुरुआत में तो ये नये घोड़े के समान ही है, जो हर दिशा में दौड़ना चाहता है। जैसे लगता है कि सभी अनुभव एकत्र कर लेना चाहता हो। परन्तु समय बीतने के साथ-साथ इसे व्याधि और जरा उपलब्ध होती है क्योंकि यही शरीर के आवश्यक अंग हैं और अन्त में यह मृत्यु को प्राप्त होता है।

अत: इस शरीर की अवधि पूर्ण होने से पहले इसका पूर्ण उपयोग कर लिया जाना ही सार्थकता है। ये आपके लिए बना है आप इसके लिये नहीं। इसका उपयोग कीजिए यह वाहन है, स्वयं सारथी बनिए। जिस प्रकार नेत्रों के बहुत नजदीक कोई वस्तु रखी जाए तो वह साफ दिखाई नहीं देती। उसे साफ दिखने हेतु एक निश्चित दूरी जिसे फोकल लेंथ कहते हैं, वह प्राप्त करनी आवश्यक है। फोकस में आने के बाद वस्तु स्पष्ट हो जाती है, ठीक उसी प्रकार जब आप शरीर के काफी नजदीक रहते हैं तब तक आपको चीजे धुंधली ही दिखाई देती हैं। उस धुंधलेपन के कारण आपकी खोज हर दिशा में चलती रहती है, उसका कोई परिणाम नहीं होता।

जब आप शरीर से एक निश्चित दूरी अर्थात् फोकस दूरी पर आ जाएगें, तब चीजे स्पष्ट हो जायेंगी, साफ दिखाने लगेंगी। जो भी जैसा है, उसी स्वरूप में दिखाई देने लगेगा। सबसे पहला कार्य तो यही है कि उस फोकस दूरी को प्राप्त किया जाये, ताकि स्वच्छ और स्पष्ट दिखाई दे। जब दृष्टि साफ हो जायेगी, तब कार्य भी आसान हो जायेगा।

❖❖

एक माध्यम की सम्पूर्णता इसमें है कि वह सदैव उपलब्ध रहे। वह सदैव स्वयं को तैयार रखे, वह सदैव ग्रहण करने की स्थिति में रहे ताकि ग्रहण करके

सुन्दर रूप दे, उस सूचना को आगे की ओर प्रेषित कर दे। माध्यम एक सुन्दर अवस्था है जिसके स्वयं के गुण धर्म नहीं होते। उसकी पहली शर्त यही है कि स्वयं के गुण धर्मों से मुक्ति पा लेना। उन्हें क्षीण कर देना ताकि वो कमजोर होते चले जायें और अन्त में समाप्त। स्वयं के गुण धर्मों की आवश्यकता नहीं, माध्यमों के लिए।

माध्यम जितना गुण धर्मों से रहित होगा उसका कार्यक्षेत्र बढ़ता चला जायेगा क्योंकि वह स्वयं को उपलब्ध कर देता है उस वाहन के रूप में, जो सत्य के निमित्त कार्यों को करने के लिए समर्पित है। उसका स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं, उसकी स्वयं की कोई इच्छा भी नहीं, वो तो कार्य की सम्पूर्णता में ही आनन्द प्राप्त करता है। यही उसका आनन्द है, यही उसका कर्तव्य है और यही उसकी आराधना।

❖❖

उत्तर की स्पष्टता या अस्पष्टता, ग्रहण करने वाले की क्षमता पर आधारित है। ग्रहण क्षमता जितना अधिक होगी, उतने ही उत्तर स्पष्ट होंगे। ग्रहण करने वाले को, स्वयं को इतना स्वच्छ, इतना निर्मल बना लेना होगा कि वह उत्तर में अर्थ को खोज ले। उत्तर तो सिर्फ उत्तर ही होगा परन्तु सत्य तो स्पष्टीकरण देने को तैयार है। विस्तार में व्याख्या करने को भी तैयार है परन्तु उस उत्तर को, उत्तर समझ लेने लायक क्षमता आपको स्वयं ही विकसित करनी होगी। हाँ या ना में उत्तर की अपेक्षा न्याय संगत नहीं होगी। हाँ या ना आपकी बुद्धि से टकराकर वापस लौट आएँगे क्योंकि बुद्धि से टकराने के पश्चात् उनकी तार्किक व्याख्या होगी और फिर उन्हें कचरे की डिब्बे में फेंक दिया जायेगा।

यहाँ कुछ ऐसा है जो बुद्धि के पार है, उत्तरों को समझने से पहले, उनके स्पष्टीकरण को जान लेने के पहले, स्वयं का क्षेत्र विस्तृत कर लीजिए। अपनी गहराई महसूस करना प्रारम्भ कीजिए क्योंकि उत्तर तो विस्तृत है उथली जगहो में वे समा न पायेंगे। थोड़े स्थान की आवश्यकता है, उसे खाली तो कर लीजिए। जैसे ही वो स्थान उपलब्ध हो जायेगा, आपके भीतर उत्तर स्वयं ही समा जाएंगे, अपने

खाँचे में फिट हो जायेंगे। अत: बुद्धि की कसौटी पर इन उत्तरों को कसने का क्या लाभ है? आपकी बुद्धि तर्कों को मान लेगी या उन्हें नहीं मानेगी, दो ही चीजे होंगी। लेकिन मान लेने से या नहीं मानने से जो कुछ भी तथ्य है उसमें परिवर्तन तो नहीं आएगा। ग्रहण करने की क्षमता तो स्वयं को विकसित करनी होगा।

❖❖

आन्तरिक जगत में अनुशासन नहीं, उपलब्धता है। अनुशासन वाह्य जगत तक सीमित है। स्वयं को अनुशासन में बाँधना ही मन को अतिक्रमण करने हेतु, आज्ञा या फिर अधिकार देना है क्योंकि उपयुक्त समय पर मन वापस संकेत भेजना शुरू करेगा कि समय हो गया, चलो अब ये कार्य करना है। अत: अनुशासन को वाह्य जगत में छोड़ देना ठीक है। आन्तरिक जगत में सिर्फ उपलब्धता है, यहाँ कोई बंधन नहीं है। यहाँ कोई अतिक्रमण नहीं है। अतिक्रमण नहीं सिर्फ उपलब्धता, सदैव।

❖❖

गुणों के क्षेत्र वाह्य जगत तक सीमित हैं। रंगों का क्षेत्र वाह्य जगत तक सीमित है। आन्तरिक जगत में कोई गुण नहीं है, कोई भी रंग नहीं क्योंकि रंग की आवश्यकता ही नहीं है। श्री कृष्ण ने इसीलिए कहा कि तुम्हें सत्व, तम और रज तीन प्रकार के गुणों की प्राप्ति हुई। तुमने इन तीन गुणों के बीच अपनी यात्रा तो तय की है परन्तु कुछ है जो इनके भी पार है। यदि उसे जानना है तो इन तीनों गुणों को ही छोड़ देना होगा क्योंकि गुणों का अतिक्रमण नहीं है, कुछ है जो गुणों से भी पार है। वहाँ गुणों की भी आवश्यकता नहीं है। इसीलिए ईश्वर को गुणातीत कहा गया है, 'जो गुणों से भी परे है-पार है'। अपनी वाह्य यात्रा में इन तीन गुणों का ध्यान रखना आवश्यक है और सत्व पर पहुँचने के पश्चात् उससे पार जाने की भी तैयारी आवश्यक है।

आन्तरिक जगत के यात्रियों को रहस्यवादी इसीलिए कहा गया क्योंकि यहाँ पर वाह्य जगत की दृष्टि काम नहीं करती। उसका कोई भी काम अथवा सार्थकता नहीं है आन्तरिक जगत में। जो भी दृष्टि से परे है वो रहस्यमय है। आन्तरिक जगत

के यात्री उस सीमा का अतिक्रमण कर, उस क्षेत्र में जा पहुँचते हैं जहाँ वाह्य दृष्टि की आवश्यकता नहीं, इसीलिए उन्हें रहस्यवादी कहा जाता है। मिस्टिक क्योंकि उनकी बातें रहस्यमयी प्रतीत होती है, वास्तव में उनमें कोई रहस्य है ही नहीं, वास्तव में उनमें कुछ है ही नहीं।

'उनके पास कुछ है ही नहीं', शब्द ही वह माध्यम है जो उन्हें वाह्य जगत से जोड़ते हैं। उन्हें अपने शब्दों के माध्यम से अनुभूतियों का वर्णन करना होता है क्योंकि आन्तरिक जगत की यात्रा शब्दों से परे है। यह एक ऐसा कार्य है जो उन्हें करना होता है क्योंकि उस जगत में मग्न तो रहा जा सकता है परन्तु इशारे करना, संकेत करना, पहेलियाँ बुझाना, उनका कर्तव्य बन जाता है ताकि वे सभी लोग जो तैयार हो रहे हैं या तैयार हो चुके हैं, वो पहेलियों को बूझना तो शुरू करें। इन्हीं पहेलियों के माध्यम से इसमें रस लेना तो शुरू करें।

वास्तव में उनके पास कार्य ही नहीं होता क्योंकि कार्य भी तो किसी गुण और धर्म से ही संबद्ध है परन्तु कर्तव्य तो बचता है। ये बताना कि जो कुछ मैंने पीया तुम भी तो चख के देखो। जो स्वाद मुझे प्राप्त हुआ, आओ चखने की कोशिश करके तो देखो। ये स्वाद तुम्हें भी प्राप्त हो सकता है। एक बार इस रेखा का अतिक्रमण तो करो। यहाँ कोई स्वाद न प्राप्त होग। यही तो विशेषता है, परन्तु मुझे तो कहना होगा कि यहाँ स्वाद है शायद स्वाद के ही भ्रम में तुम खिचे चले आओ क्योंकि जब तुम निःस्वाद हो जाओगे, फिर स्वाद की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

❖❖

जिस प्रकार एक देश से दूसरे देश की सीमा में जाने पर आपको एक भव्य द्वार मिलता है, एक द्वार से आपका स्वागत होता है। वह द्वार ही यह बताता है कि एक सीमा समाप्त हो रही है और दूसरी सीमा प्रारम्भ हो रही है। यही वह स्थान है जो एक नई यात्रा प्रारम्भ करेगा। उस द्वार का तात्पर्य सिर्फ ये सूचना देना है कि आइये स्वागत है। उसी प्रकार आंतरिक जगत का द्वार सदैव खुला है। इसमें दरवाजे नहीं है, यदि दरवाजे होते भी तो एक ही तरफ खुल सकते थे। इसी प्रकार बुद्धत्व सिर्फ एक द्वार या सिर्फ एक रेखा है, जो यह घोषणा करती है कि एक

सीमा से अतिक्रमण, दूसरी सीमा में हो गया है। एक राज्य की परिमिति को छोड़ दूसरे राज्य की परिमिति में प्रवेश हो गया। एक यात्रा सम्पन्न हुई, अब आगे की यात्रा है।

बुद्धत्व को सिर्फ एक घटना माना गया वो कोई स्थान नहीं है। वो रूकने का भी स्थान नहीं है, वहाँ पर विश्राम करने का भी स्थान नहीं बना है। वो सिर्फ एक रेखा है जिसे पार कर लिया तो नई यात्रा का प्रारम्भ है। बुद्धत्व सिर्फ एक घटना है इससे ज्यादा कुछ भी नहीं, अब इसके आगे की यात्रा है। वह यात्रा अकेले ही तय की जाती है परन्तु कोई अकेलापन नहीं है। एकांत तो है परन्तु एकांत कहीं नहीं है। मौन तो है परन्तु अकेलापन कहीं नहीं है। यात्रा तो है परन्तु यात्रा कही नहीं है।

❖❖

यदि आपको बुद्ध के विचारों को जानना हो तो पुस्तकों के माध्यम से उनके विचारों से अवगत हुआ जा सकता है। परन्तु कृपया उन्हीं पुस्तकों का चयन करें जिनमें बुद्ध के शब्दों में ही बात कही गयी हो। बुद्ध के शब्द को ही उतारा गया हो। बुद्धत्व के ऊपर जो टीकाएँ लिखी गयीं, यदि किसी बुद्ध व्यक्ति ने उसे लिखा है तो उन पुस्तकों को ग्रहण किया जा सकता है क्योंकि एक शून्य व्यक्ति ही बुद्ध को ठीक से वर्णित कर पायेगा।

वो पुस्तकें जो लिखी गई हैं, उन लेखकों के माध्यम से जो अपनी बुद्धि द्वारा उनका वर्णन करेंगे, अपनी समझ द्वारा उनका वर्णन करेगें, वे बुद्ध के साथ अन्याय ही करेंगे। वे बुद्ध के शब्दों को आप तक पहुँचा सकते है लेकिन उनके आशय को समझने के लिए कृपया उन्हीं पुस्तकों को दखें, जो स्वयं बुद्ध व्यक्तियों द्वारा लिखी गईं हैं ताकि बुद्ध को वर्णित किया जा सके। बुद्ध के साथ अन्याय न करना, उनकी अनुभूतियों को अपनी समझ से वर्णित न कीजिएगा क्योंकि अनुभूतियों को वर्णित करना सम्भव नहीं है। ऐसी पुस्तकें जो उनसे दूर से निकल जाए, आप भी उनसे दूर से निकल जाइएगा।

❖❖

उचित समय आने पर उसे आगे बढ़ना ही होगा क्योंकि वो रूक गया तो कुन्द

हो जायेगा। उसका उपयोग न किया जा सकेगा, उसकी सार्थकता सिद्ध न हो पाएगी। उसे नये क्षितिज ढूँढने होंगे, वहाँ कार्य करना होगा।

एक नियत स्तर तक संतृप्त होने के पश्चात्, उस क्षितिज को भी छोड़ देना होगा। यही उसका कार्य है, फिर कोई नया क्षितिज। उसके रूक जाने में उसकी उपयोगिता नहीं है, उसके चलने में उसकी उपयोगिता है। कार्य सिद्धि आवश्यक है। कर्तव्य सिद्धि आवश्यक है। चलना आवश्यक है। उसका कार्य क्षेत्र अलग है। उसका कार्य क्षेत्र दूसरा है, उसका कार्य क्षेत्र परे है, वह रेखा के उस पार है। उपयोगिता भी है और कर्तव्य भी परन्तु ये कर्तव्य, कर्तव्य न होकर वह कर्तव्य शून्यता है।

❖❖

ऊर्जा का प्रवाह उर्ध्व दिशा में होता है, ये सदैव मूलाधार से सहस्त्रार की तरफ विभिन्न चक्रों से होती हुई बहती है और सहस्त्रार पर पहुँचकर अन्तरिक्ष में विलीन हो जाती है अर्थात् ऊर्जा का चक्र पूर्ण हो जाता है। ऊर्जा जहाँ से आई, वहीं चली जाती है।

एक समय ऊर्जा जो आपके बुद्धि, ज्ञान, धन, सम्बन्ध, समृद्धि और भौतिक उपलब्धियों को उपलब्ध करने में, प्राप्त करने को खर्च होती है अगर ये उर्जा एक तल पर आकर रुक जाए और जब प्राप्त करने को शेष न हो (क्योंकि प्राप्त करने की तो कोई सीमा नहीं लेकिन उसको सहेज कर रखने की एक सीमा है, शरीर की एक सीमा है। प्राप्त तो आप दुनिया भर का धन कर सकते हैं लेकिन क्या आप उसे पचा सकते हैं, क्या आप उसका उपयोग कर सकते हैं? आप यदि दो रोटी खाते हैं तो बीस रोटी खाना शुरू नहीं कर सकते। दो रोटियाँ ही आपकी एकत्र करने की क्षमता है। यदि उससे ज्यादा एकत्र करने की कोशिश या प्रयास किया जाये तो यह ऊर्जा विचलित होगी) और यही ऊर्जा अवरुद्ध हो जाये तो विभिन्न प्रकार के दोषों के रूप में बाहर निकलती है। जिसे हम लाइफ स्टाइल प्राब्लम्स या डिजीज कह सकते हैं।

आपने देखा होगा गरीबों में, निर्धनों मे असम्पन्न समाज में ये परेशानियाँ उभर कर सामने नहीं आती क्योंकि सारी ऊर्जा, सारा ध्यान तो प्राप्त करने में है। संचय करने की क्षमता अभी संतृप्त नहीं हुई है, पाने को अभी बहुत कुछ है भौतिक जगत में। इसलिए ये बीमारियाँ उन्हें उतना परेशान नहीं करती हैं।

आर्थिक विकास के साथ समृद्धि अभी नयी आयी है, कुछ पन्द्रह बीस वर्ष ही बीते है, नई समृद्धि आई, नये क्षितिज खुले। जो लोग साइकिल पर चलते थे, मोटर-साइकलों के दायरे से बाहर निकल कारों तक पहुँच गए हैं। जहाँ पर घर छोटे होते थे, अब वो घर अपार्टमेंट में-फ्लैट में बदल गये हैं। जहाँ पहले सड़कें प्लेग्राउंड होती थीं। वहाँ अब बड़े-बड़े पन्द्रह हजार, बीस हजार स्क्वायर फीट या उससे बड़े-बड़े इलाके। कभी-कभी सोच के भी बाहर, उन्हें अर्जित किया जाता है। अर्जित करना बुरा नहीं, यह भी एक सामान्य घटना है क्योंकि अर्जन करने को बहुत कुछ है, अपरिमित है, कितना अर्जित करोगे। कभी भी यह खत्म नहीं होगा।

हम सभी यहाँ एक छोटे से डायमण्ड के लिए परेशान रहते हैं, यदि धर्मपत्नी को डायमण्ड की अंगूठी गिफ्ट कर दी तो कम से कम पन्द्रह दिन तक सुबह शाम चाय तो पिलाएंगी ही प्रेम से। बिना किसी अन्य बात को छेड़े, मुस्कुराती मुद्रा में, सुरूचिपूर्ण तरीके से आपको चाय मिलेगी। एक छोटा सा डायमण्ड क्या-क्या कर सकता है, इसीलिए कहते हैं कि 'डायमण्ड इज मेड फॉर एवर' परन्तु ये सूचना भी विचित्र थी जो टीवी और पत्र-पत्रिकाओं में आई कि एक ग्रह खोज लिया गया है जो पूरा का पूरा डायमण्ड से बना है।

अब अगर डायमण्ड की अंगूठी क्या डायमण्ड का बिस्तर भी बना लें, उस ग्रह तक पहुँच बन जाये तो डायमण्ड के घर, डायमण्ड की अल्मारियाँ, टीवी, पंखे, डायमण्ड की बत्तियाँ तो फिर निश्चय ही ये खोज डायमण्ड से आगे बढ़ जायेगी, क्योंकि तब मिट्टी की कमी हो जायेगी। हर जगह डायमण्ड ही डायमण्ड होगा, तो होगा कि मिट्टी खोजो क्योंकि भोजन तो उसी में उगता है, पौधा उसी में पनप सकता है, नव जीवन वही सृजित होता है।

पाने की कोई सीमा नहीं है, अपरिमित है, जितना पाना चाहो पा सकते हो। यह सामान्य घटना है लेकिन संचय करने की सीमा है, रखने की सीमा है, बचाने की सीमा है, हिफाजत करने की सीमा है। तो वो ऊर्जा जो अर्जित की जा रही है, धन के रूप में ही सही, यदि उसे संचित न किया जा सके, तो कहीं से तो निकलेगी ही। कहीं ना कहीं उसका दुष्परिणाम तो होगा ही। उतनी समृद्धि तो ठीक है जब सारी जरूरतें पूरी हो जाएं, सारा काम पूरा हो जाए, कमीं न रहे, कभी काम धन के अभाव में न रूके, जो भी आप चाहें प्राप्त कर सकें। उतनी समृद्धि तो ठीक है। लेकिन समृद्धि भी आवश्यकता से अधिक बढ़ती है और ऊर्जा समृद्धि के तल पर आकर रूक जाती है और आगे नहीं बढ़ पाती तब समस्या उत्पन्न होती है। समृद्धि के उस तल पर, उस संतृप्त तल पर, आपके लिए एक छोटा सा द्वार खोलना चाहता हूँ ताकि वह ऊर्जा जो आपकी आवश्यकता से ज्यादा है, उसे बाहर की तरफ निकाल सकें। इसका कदापि अर्थ नहीं है कि धन ऊर्जा को छोड़ दीजिएगा। उसका अर्थ सिर्फ इतना है कि ये ढूँढिए की वो कौन सा उपाय होगा, जहाँ पर इस ऊर्जा का उचित उपयोग किया जा सकेगा। धन के बाद अब ढूँढने को क्या बचा? कौन–सी चीज होगी जो अभी भी ढूँढ लेनी चाहिए क्योंकि उस तल पर चलने के बाद आप भी महसूस कर रहे हैं कुछ अवरुद्ध सा हो गया है। कुछ रूक सा गया है, कहीं कुछ ठहर गया है, इकट्ठा होता जाता है, अन्दर दबाव बढ़ता जाता है।

वहीं पर एक छोटा सा द्वार खोलना चाहता हूँ। जहाँ से आप अपनी ऊर्जा को परिवर्तित करें आध्यात्मिक ऊर्जा में ताकि आपकी यात्रा, जो अगर मैं चक्रों की भाषा में कहूँ तो मूलाधार से शुरू हुई वह सहस्त्रार पर पहुँच कर, अनन्त में विलीन हो जाये। अगर यदि अनन्त में विलीन भी न होना चाहे तो भी कम से कम अतिरिक्त ऊर्जा जो हानि पहुँचा रही है उसके निकलने का मार्ग तो खुल जाये। आप भले ही रूक जाना बीच में, समृद्धि के तल पर वो आपका निर्णय, लेकिन वो ऊर्जा आपको परेशान न करे, बल्कि उसका सदुपयोग हो जाए। इस पूरे के पूरे कथन का मतलब सिर्फ यही है।

❖❖

हिन्दू धर्म में शरीर को जला दिया जाता है लेकिन शरीर को जलाया क्यों जाता है? शरीर पाँच तत्वों से मिलकर बना होता है ऐसा भारतीय दर्शन में हम मानते हैं- पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल और आकाश। जला देने से शरीर अपने सारे अवयवों में टूट जाता है, धरती वाला भाग धरती में, अग्नि वाला भाग अग्नि को समर्पित, जल वाला भाग जल में प्रवाहित और आकाश वाला आकाश में विलुप्त हो जाता है। शरीर में आत्मा और जीवात्मा ये दो प्रकार की स्थितियाँ है। आत्मा परमेश्वर का वह हिस्सा है जिसके आस-पास यह पूरा शरीर बुना जाता है, जो पूर्णतया पवित्र है, वो कर्मों में लीन नहीं होता। वो सिर्फ अन्दर बैठा-बैठा आपके कर्मों को देखता रहता है। जीवात्मा वह हिस्सा है जिस पर कर्म और कर्म फल की परते चढ़ीं होतीं हैं, जो आपने अपने कई जन्मों में अर्जित की हैं, साथ ही साथ आपके पिछले जन्मों के कर्म के जो फल हैं और प्रारब्ध के रूप में विभिन्न जन्मों में लिए गये संस्कार।

संस्कार वे भाग होते हैं, जिनके हिसाब से हम विशेष परिस्थितियों में एक विशेष तरीके से सोचते हैं। अगर परिस्थितियाँ ऐसी बनी तो किस प्रकार से हमको प्रतिक्रिया देनी है। संस्कार वे हिस्से हैं, जो बचपन से सिखाए जाते हैं कि ये सही ये गलत, ये उचित ये अनुचित, ये करना ये मत करना। आपने अपनी शुद्धता को लेकर जन्म लिया था परन्तु ये शुद्धता अब इन संस्कारों के आने के बाद कहीं खो जाती है। आप उसी तरीके से सोचते हैं जिस प्रकार से आपके समाज की विचारधारा और धर्म सोचता है या आपका परिवार, यह है संस्कार। जीवात्मा शरीर से बहुत गहरे तक जुड़ी होती है, हिन्दू धर्म दर्शन में हम ये मानते हैं कि जीवात्मा का यह जुड़ाव ही बार-बार जन्म लेने का कारण है।

कुरान में एक जिक्र आया है कि अन्दर दो पंक्षी बैठे हैं, एक सिर्फ देखता है और दूसरा करता है। अगर कोई इस बात पर ध्यान दे तो उन्हीं दो पंक्षियों की बात हो रही है अर्थात् आत्मा और जीवात्मा की। शरीर को जलाया जाता है तो जीवात्मा का वह हिस्सा जो अभी भी जुड़ाव महसूस कर रहा है शरीर के समाप्त हो जाने के बाद उसे पता चल जाता है कि इस शरीर से अब मोह छोड़ना होगा

क्योंकि अब शरीर जा चुका है अब शरीर नहीं बचा, अब आगे की यात्रा करनी होगी। अब एक नया शरीर लेना होगा ताकि वो सारी चीजें, वो सारी क्रियाएं जो अभी की जानी बाकी है, मन में विचार जो अधूरे रह गये हैं, जो कर्म अधूरे रह गये हैं, जो सोच पूरी नहीं हो पाई हैं वो सारी सोच एक शरीर को धारण कर पूरी की जा सके। इसलिए शरीर को जला दिया जाता है परन्तु महात्माओं के शरीर को जलाया नहीं जाता है, उसे समाधि दे दी जाती है।

समाधि कभी-कभी धरती के अलावा जल में भी दी जाती है। अब महात्माओं के साथ ये व्यवहार क्यों? तो ये पहले समझना पड़ेगा कि वो महात्मा संत या स्वामी, वो हैं कौन? 'स्वामी' ये दो शब्दों से मिलकर बना है 'स्व् और आमि' अर्थात् वह जो अपना स्वयं स्वामी हो अर्थात् जिसकी चेतना अब आत्मा में विलीन हो गई हो। दो पक्षी अब नहीं बचे, अब बचा है सिर्फ एक पक्षी।

अब जीवात्मा आत्मा में विलीन हुई तो हुई कैसे? पहले जो मन है उसे विलीन होना पड़ेगा। जीवात्मा और आत्मा के बीच में यही फर्क है, मन वो हिस्सा होता है आत्मा का, जिसमें तरंगे उठती हैं। जिसमें इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं, जिससे आप काम, क्रोध, लोभ और मोह में फँसते है या उनका सेवन करते हैं। इच्छा उठी, पूरी नहीं हुई तो क्रोध आया। क्रोध के साथ लोभ आया और मोह तो बना ही हुआ है। जो स्वामी है, जिसका अपने पर नियंत्रण है या जो आत्मा को जानता है उसका मन अब शान्त हो चुका है। काम, क्रोध, लोभ और मोह अब विदा हो चुके हैं लेकिन बची जीवात्मा। जीवात्मा पर अभी भी कर्म और कर्मफल का आवरण चढ़ा हुआ है इस आवरण से, प्रभु की भक्ति से, समर्पण से, मुक्ति पाई जा सकती है क्योंकि आप जब समर्पण कर देते हैं तो आप खुद के मालिक न होकर आप परमेश्वर को मालिक स्वीकार कर लेते हैं। अर्थात् मैंने अपनी कमान आपके हाथ में दे दी। कौन-सा रास्ता उचित है? अब आप समझिए, अब आप जानिए। अब मैं वही करने वाला हूँ जैसा मुझे आदेश मिलेगा। तो इस प्रकार से जो दिव्य सत्ता है सृष्टि की, वो आपको सही दिशा में ले जाकर, कर्म फलों से मुक्ति का उपाय सुझाती है।

स्वामी अपने मन से, अपनी जीवात्मा पर पड़े सारे आवरणों से मुक्त हो चुका है ऐसा माना गया है। यदि वो सच्चा स्वामी है तो उसका जीव, आत्मा में विलीन हो गया है। उसकी ऊर्जा उस स्थल पर पहुँच चुकी है जहाँ से वो ब्रहमाण्ड में विलीन हो जायेगी। अर्थात् अब शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया परन्तु इसी शरीर की सवारी करते हुए आपने ये यात्रा पूरी की। आपने इस शरीर का उपयोग किया अपने सारे कर्म बंधनो से मुक्त होने के लिए तथा परमेश्वर की आज्ञा का पालन करने के लिए। अर्थात् अब ये उन दूसरे शरीरों से अलग है जो सिर्फ अपने मन के जंजाल में फँस कर अपना जीवन सिर्फ मन के आदेशों के पालन हेतु जीते हैं।

स्वामी परमहंस योगानन्द एक बड़े पहुँचे हुए ज्ञानी थे। उन्होंने पश्चिमी देशों में भारतीय धर्मदर्शन का प्रचार किया। उन्होने शरीर ५९ साल के उम्र में त्याग दिया था। शरीर के त्यागने के बाद शव को दर्शन हेतु रख दिया गया और मर्चुरी में रखने के बाद करीब २० दिनों तक जब शरीर की समाधि नहीं दी गयी। शरीर मे नष्ट होने के या उस पर बैक्टीरिया एक्टीविटी या डिग्रेडेशन के कोई भी चिन्ह या संकेत नहीं मिले। मतलब शरीर में वो सारी क्रियाएँ नहीं हो रही थीं जो एक शरीर के मृत होने के बाद तुरन्त शुरू हो जाती हैं। जब शरीर को समाधि दे दी जाती है तो उसके शरीर से जो जुड़ा हुआ ऊर्जा क्षेत्र होता है, वह आगे आने वाले साधकों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, वो उसका फायदा अपनी साधना में ले सकते है।

वो सात्विक ऊर्जाएँ जो उस शरीर से आबद्ध हैं। उस शरीर से इतना जप-तप और कीर्तन हो चुका है कि वो शरीर भी शुद्ध हो चुका है। शरीर की शुद्धि को प्राप्त करना एक विकट काम है क्योंकि शरीर को ही माया माना गया है और ये नश्वर है, तो जो भी चीज नश्वर है वो सत्य नहीं हो सकती क्योंकि सत्य कभी नष्ट नहीं होता है परन्तु उन्होंने अपने जीवनकाल में अपने शरीर का इस प्रकार से उपयोग किया, कि अब शरीर भी पूजनीय हो चला है इसलिए उस शरीर को समाधि दे दी जाती है। सिर्फ आगे आने वाले साधकों के लिए, आगे आने वाले सत्यान्वेशियों के लिए ताकि वो समाधि के आस पास बैठ कर, ऊर्जा ग्रहण कर सकें।

इसका उपयोग सिर्फ समाज के हित में होता है इससे साधु-संन्यासी जिसने शरीर त्याग दिया है उसका अब इस शरीर से कोई मतलब नहीं। यही वजह है कि सामान्य जनों के शरीरों को अग्नि को समर्पित कर दिया जाता है और स्वामी अर्थात् जिसने आत्म-साक्षात्कार कर लिया। वो शरीर से तभी मुक्त हो गया जब वह शरीर था इसलिए उन्हें समाधि दे दी जाती है, अब चाहे भूमि में दी जाये चाहे जल में दी जाये।

❖❖

वह सुविधा जो ज्यादा देर तक रह जाये, बाधा बन जाती है। ठीक उसी प्रकार धर्म है। धर्म का कार्य मन्दिर और मस्जिद बनाना है। आपको पहला इशारा दे देना है। पहला द्वार आपके लिए खोल देना है, आपको ढूँढ़ना न पड़े इसकी व्यवस्था कर देनी है । लेकिन मन्दिर और मस्जिद में यदि ज्यादा देर तक रूक गये तो कुन्द होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। हर वह सुविधा जिसका नियत समय पूर्ण हो चुका हो। उसको छोड़कर आगे बढ़ जाना ही उचित है। मन्दिर और मस्जिद से आगे बढ़ने का अर्थ ये नहीं कि उनके प्रति नकारात्मक हो जाया जाये।

उनके प्रति नकारात्मकता तो सर्वथा अनुचित ही होगी क्योंकि पहला द्वार तो उन्होंने ही दिखाया है। पहला दर्शन उन्होंने ही करवाया। पहली बात तो उन्होंने ही बनायी लेकिन वहाँ पर सब कुछ नहीं, वो सिर्फ एक द्वार है। जो अनन्त के रास्ते, अनन्त का मार्ग आपके लिये खोलता है। अत: अपनी यात्रा वहाँ रोकिए मत, आगे बढ़िए दूसरे लोगों के लिए जगह खाली कीजिए।

प्रभु भी कदापि नहीं चाहते कि आप रूक जाए, कोई भी प्रेम करने वाला व्यक्ति कभी नहीं चाहेगा कि उसका प्रेम कुंद हो जाये। वो सिर्फ यही चाहते हैं कि आप अपनी यात्रा आगे बढ़ाइए। सत्य कहता है मन्दिर में तो सिर्फ मेरी झलक मिलेगी। अभी और आगे आओ, मुझे पूर्ण रूप से पा लो, धर्म के जितने भी प्रतीक चिन्ह है, वो समारोह की भाँति हैं। विवाह का समारोह जिसमें सब कुछ बहुत चमकीला और दमकीला होता है। नये नये सुन्दर वस्त्र, आभूषण, श्रृंगार, सजावट, बहुत कुछ होता है लेकिन शादी एक समारोह ही है। असली शादी का जीवन,

शादी के बाद प्रारम्भ होता है।

समारोह तो सिर्फ एक घोषणा है। मैंने अपनी यात्रा आज प्रारम्भ कर दी लेकिन सारा जीवन उसके आगे है इसलिए किसी द्वार पर रूक मत जाइएगा। समारोह में ज्यादा भीड़ मत कीजिएगा। जब समारोह का प्रयोजन पूरा हो जाये, भोजन कर लिया गया हो, वर-वधू के दर्शन हो गये हों, मिलने वालों से मिलना-जुलना हो गया हो तो आगे आने वाले लोगों के लिये स्थान खाली कीजिए। अब आगे बढ़िए।

❖❖

जब ऊर्जा का प्रवाह थम जाये तब विकृति आती है। यदि बहता हुआ जल तालाब के रूप में रूक जाए तो वह सड़ने लगता है। यदि ऊर्जा भौतिक तल पर आकर रूक जाती है तो बीमारियाँ उत्पन्न कर सकती है। यदि मौसम परिवर्तित होने से मना कर दे तो हाहाकार मच जाये। यदि हवा कमरे में बन्द हो जाये, उसके निकलने का कोई स्थान न हो, तो दुर्गन्ध आ जाती है। ठीक उसी प्रकार उन धर्मों में जहाँ पर ऊर्जा आने के बाद कुन्द हो जाती है। (जिन धर्मों ने अपना मार्ग आध्यात्मिकता के लिए नहीं खोला, जिन धर्मों में आध्यात्मिकता के लिए स्थान नहीं, धर्म को ही परम आश्रय माना गया।) उन धर्मों में विकृतियाँ पैदा होने लगीं।

भारतीय ऋषि-मुनि इस बात को समझते थे, यह बात अनुभव से सिद्ध हो चुकी थी इसीलिए धर्म के नाम पर बल ही नहीं दिया गया। नाम रखा भी गया तो 'सनातन' अर्थात् जो सदैव चलायमान है, सदैव स्थित है। इसी कारण उन्होंने धर्म के पश्चात् ध्यान की खोज की, धर्म के पश्चात् योग की खोज की, धर्म के पश्चात दान की खोज की, धर्म के पश्चात ज्ञान की खोज की, धर्म के पश्चात समर्पण की खोज, की, ताकि ऊर्जा धर्म के तल पर आकर रूक न जाए। इसका प्रवाह उर्ध्वदिशा में होता रहे। यह सदैव आगे की तरफ बढ़ती रहे क्योंकि ऊर्जा रूक गयी तो इसका परिणाम विनाशकारी होगा। विकृति, ग्रन्थि, व दुर्गन्ध पैदा होने लगेगी।

भारतीय मनीषियों ने ये बात पहले ही जान ली थी कि धर्म सिर्फ प्रथम आश्रय

है इसीलिये वो महात्माजन जिन्होंने विदेशों में जाकर आध्यात्म का प्रचार किया, उन्होंने कभी धर्म परिवर्तन को बढ़ावा नहीं दिया। स्वामी विवेकानन्द जी ने शिकागो में विश्व धर्म संसद में भाषण देते हुए यही कहा कि किसी को कुछ परिवर्तित करने की आवश्यकता नहीं, जो जहाँ पर है, वहीं से उठ सकता है। मैं नहीं चाहता कि आप हिन्दू बन जाएं, यदि आप क्रिश्चियन हैं, मुस्लिम हैं, यहूदी हैं या किसी और धर्म को मानने वाले। आप जहाँ हैं, वहीं से अपनी यात्रा प्रारम्भ कीजिए। मैं आपको सनातन धर्म की इसी विशेषता से परिचित कराने अमेरिका आया हूँ क्योंकि सनातन धर्म ने ये बात बहुत ही पहले समझ ली थी इसीलिए उन्होंने धर्म को दो भागों में विभक्त कर दिया था। कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड अर्थात् प्रारम्भ में सभी कर्म काण्डों को करके, उनके महत्व समझते हुए अगले चरण पर जा सकते हैं।

जब आप ज्ञानकाण्ड में प्रवेश कर जायें तो कर्मकाण्डों की कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी इसीलिए वे धर्म जिसमें आध्यात्मिकता का कोई स्थान नहीं, धर्म को ही परम आश्रय माना गया है। उन धर्मों ने धर्म परिवर्तन को एक उचित मार्ग माना क्योंकि उनके हिसाब से एक विशेष धर्म में चले जाना ही ईश्वर तक पहुँचने के लिए पर्याप्त है। सनातन धर्म में पहले ही स्पष्ट कर दिया गया कि कर्मकाण्डों का स्थान वहीं तक है, जब तक आप ज्ञानकाण्ड में प्रवेश नहीं कर जाते। इसीलिए भारतीय धर्म के अनुसार मोक्ष को परम आश्रय माना गया, स्वर्ग को नहीं क्योंकि स्वर्ग की अवधारणा तो सिर्फ इतनी सी है कि जब आपके पुण्य कर्म इतने संचित हो जाएंगे, तब आप स्वर्ग में प्रवेश करने के लिए उत्तराधिकारी बन जायेंगे।

कुछ वर्ष तक, कुछ साल तक, नियत समय तक, जब तक आपके पुण्य कर्मों का प्रताप चूक नहीं जाता आप स्वर्ग में बने रहेंगे परन्तु वापस गिरना इसी मृत्यु लोक में पड़ेगा। इसीलिए स्वर्ग को भी तुच्छ माना गया। परम आश्रय माना गया मोक्ष को, जब आप सुख और दुख से पूर्णतया मुक्त हो जायेंगे क्योंकि स्वर्ग में जाकर भोगोगे तो सुख ही, नरक में जाना हुआ तो दुःख मिलेगा। चक्र चलता ही रहेगा।

अब इस चक्र को कब तक चलाना होगा? इससे बाहर निकलने का क्या उपाय है? यदि सुख आया है तो दुःख आना स्वाभाविक है सृष्टि रूकती नहीं, आप

भले ही रूक जाइये। कुछ ने धर्म परिवर्तन हेतु विशेष प्रयास किया क्योंकि वे मानते थे कि इस धर्म में आ जाना और इन नियमों का पालन कर लेना ही प्रभु तक पहुँचने के लिए पर्याप्त है। परन्तु गीता में कृष्ण ने साफ कहा कि जो मुझे तत्व से जानता है, वो परम पद का अधिकारी बन जाता है।

अत: पहले मुझे तत्व से जानो, पहले इस बात को खोजो की तुम किस स्थान पर जाना चाहते हो? उस स्थान पर तुम्हें प्राप्त क्या होगा? वहाँ है क्या? क्या विशेषता है उस स्थल की? पहले ये तो जान लो कि, जिस मुझको पाना चाहते हो, वो मैं हूँ क्या? क्या है वो सृष्टि का परम रहस्य? पहले इस बात की खोज तो कर लो। इसीलिये भारतीय रहस्य दर्शियों ने सदैव इस बात पर जोर दिया। उन्होंने कहा तुम क्या हो? कौन हो? कहाँ हो? किस तल पर हो? मुझे इससे कोई मतलब नहीं। तुम्हारा अतीत क्या है, तुम्हारा वर्तमान क्या है? मेरा इससे कोई अभिप्राय नहीं क्योंकि तुम जहाँ कहीं भी हो, जो कुछ भी हो इससे मुझमें तुम्हारे लिये जो भी प्रेम हैं उस पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

कृष्ण ने गीता में इस बात का वर्णन कई जगहों पर किया है। पहले समत्व का भाव लाओ, तुम्हारी दृष्टि में किसी इन्सान, प्राणी, किसी जानवर, किसी वृक्ष में भी भेद नहीं होना चाहिये। सभी को समान तल पर रखना ही होगा क्योंकि यही प्रथम नियम है। यहीं से प्रेम का जन्म होगा। प्रेम ही इस सृष्टि का प्रधान भाव है। इसीलिए ओशो ने भी कहा कि तुम जहाँ हो वहीं से तुम्हारी यात्रा प्रारम्भ हो सकती है। तुम वहीं से ऊपर उठ सकते हो।

❖❖

जब गंगा का प्रवाह आपके क्षेत्र में प्रारम्भ हो जाता है । गंगा का जल अतिनिर्मल अतिशुद्ध जल है। यह ज्ञान की गंगा है। यह संदेश की गंगा है। एल्कोहल या नशीले पदार्थ उस गंगा में डाले गए नाले के समान है। जो उसे प्रदूषित करते हैं। गंगा का जल शांत और आनन्द के साथ प्रवाहित हो रहा है और नाले अपने प्रदूषण के साथ उसमें विक्षोभ पैदा करते हैं। अत: कुछ समय के लिए जल के शांत प्रवाह में बाधा पहुँचती है। साथ ही साथ प्रदूषण भी आता है। गंगा

तो अपने प्रवाह से बहती हुई सागर में समा ही जायेंगी। परन्तु उसका जल जितना पवित्र रहेगा, मार्ग में आने वाले लोगों को उतनी ही सेवा प्रदान कर पायेगा क्योंकि गंगा का पवित्र जल उसके सभी भक्तों के लिए अमृत समान है। अत: इस जल को अपवित्र करना भी पाप है।

वे साधक जो आन्तरिक यात्रा पर चल रहे हैं तथा जिनकी गंगा का प्रवाह, प्रारम्भ हो गया है, व्यसनों से दूर रहने में ही, सभी का कल्याण है क्योंकि उनका कार्य अब उनका न होकर मानवता के लिए है, सृष्टि के लिए है। अत: किसी भी नशीले पदार्थ से दूर रहना ही उचित है। गंगा के प्रवाह को किसी भी प्रकार से दूषित नहीं होने देना चाहिये। वह जितनी निर्मल रहेगी जितनी पवित्र रहेगा, मार्ग में आने वाले विभिन्न स्थलो पर अनेकानेक पशु-पक्षी, वृक्ष व मनुष्य जाति का कल्याण करती जायेगी। जो उस अमृत समान जल को ग्रहण करना चाहे, ग्रहण कर लेगा। वो गंगा भले ही आपके क्षेत्र में बह रही हो लेकिन वह गंगा सभी के लिए है। प्रदूषित करने से बचिए, यह पाप है।

❖❖

तुम्हारा प्रयास उसके प्रयास से सदैव छोटा है, तुम्हारी इच्छा उसकी इच्छा से सदैव छोटी है। तुम्हारा दायरा उसके दायरा से कहीं छोटा है। तुम्हारी अभीप्सा उसकी अभीप्सा से कहीं छोटी है। तुम्हारा प्रेम उसके प्रेम से कहीं कम है। अत: समर्पित होने से तुम अपनी तुच्छ इच्छाओं से मुक्त हो जाते हो। साथ ही साथ तुम उस परम सत्य के अपरिमित दायरे में आ जाते हो। उसकी ज्यादा गहराई उसके ज्यादा घने प्रकाश और उसके संतृप्त प्रेम के अधिकारी बन जाते हो। यात्रा तो तुम करते हो, परन्तु इन्तजार वो करता है क्योंकि उसका प्रेम तुम्हारे प्रेम से कहीं ज्यादा बड़ा है।

अब उस यात्रा के बारे में सोचो जब तुम्हें ये बात पता हो कि घर पहुँचने पर कोई है? जो तुम्हारा बेसब्री से इन्तजार कर रहा है। तुम्हारे लिये, कितनी तैयारी की है उसने। बार-बार खिड़की पर आकर देख जाता है। उसकी नजरें उस पथ पर गड़ी होती हैं जिस रास्ते से तुम पहुँचोगे। उस मिलन में भावना तो कोई न होगी

परन्तु आनन्द असीम होगा, क्योंकि वह आनन्द की ही सत्ता है।

❖❖

तुम्हें उस घटना का जिक्र करना आवश्यक नहीं क्योंकि सूर्य कब उगा, इसका दर्शन भले ही कोई न करे परन्तु प्रकाश उपस्थित हुआ और अपने चरम पर पहुँचा। सूर्य का उदय होना उतना महत्वपूर्ण नहीं, वो समय इतना महत्वपूर्ण नहीं परन्तु ये घटना महत्वपूर्ण है। यदि सूर्य उदय हुआ है तो इसकी सम्भावना ही नहीं, कि जगत प्रकाश का अनुभव नहीं करेगा। अवश्य ही करेगा; करेगा ही करेगा। अत: सूर्य के उदय होने की घटना का उतना महत्व नहीं, जितना उसके प्रकाश और उसके कार्य का महत्व है। जो वह दिन भर की अवधि में करता है। घटना तो छोटी-सी थी, कुछ समय की थी, बीत गई। लेकिन उसका प्रभाव दिन भर रहेगा और उसका प्रभाव महसूस किया जायेगा। प्रकाश को छुपाना सम्भव नहीं, प्रकाश स्वयं अन्धकारों को दूर कर देता है। यदि प्रकाश आया है तो उसको महसूस किया ही जायेगा। नहीं किये जाने का प्रश्न ही नहीं है।

किसी भी सिद्धि का प्रदर्शन सिर्फ उसके प्रभाव प्रदर्शन के लिए कार्य करना है। सिर्फ उसकी उपस्थिति को प्रदर्शित करने के लिए करना, सर्वथा अनुचित है। इससे आने वाली सिद्धियों का मार्ग स्वयं अवरुद्ध हो जायेगा। अत: सिद्धि के पा लेने के भाव से मुक्ति जरूरी है ताकि आगे का मार्ग प्रशस्त रहे क्योंकि ये जो मिला है ये तो बहुत तुच्छ है। यदि इसी में अटक जाओगे तो परम घटना के साक्षी कैसे बनोगे? ये जो भी प्राप्त हुआ इसका कोई मोल नहीं है, इसे एक घटना समझकर भूल जाना उचित है। ऐसी अनेक बातें घटित होने को है, उचित समय आने पर।

❖❖

सामान्यत: जागृत व्यक्ति सम-समायिक विषयों की जानकारी तो रखते हैं परन्तु उनमें उनका कोई हस्तक्षेप नहीं होता क्योंकि उनका कार्य एक विभिन्न तल पर है, उनका कार्य विशिष्ट है। बस इतना ही इससे ज्यादा कुछ नहीं।

योगी विचारों के तल के पार जाकर उन संदेशों को समेट लाता है, जिनकी परिणति विचारों के रूप में होती है तथा भविष्य में जिनका प्रयोजन सिद्ध होगा।

उसका काम एकत्र करना और बाँट देना है। वह उस कड़ी का काम करता है, जो एहिक को पार लौकिक से जोड़ती है।

❖❖

जागृत होने की घटना एक तुच्छ घटना है। जागृति होगी ही, कोई कब तक सोया रह सकता है। अत: इस घटना का कोई विशेष मोल नहीं। मोल इस बात का है, जो आगे घटित होगा। क्रान्ति की सम्भावनाएँ हैं और यह सुखद क्रान्ति होगी। इसमें आनन्द के तत्व होंगे। यह दिशा दे सकती है इसमें आनन्द के गुण मौजूद हैं। यह घटित हो तो परम सुन्दर होगी।

❖❖

विभिन्न धर्मस्थलों पर ऐसे ब्राह्मण मिल जायेंगे। जो पूजा पाठ के नाम पर धन उगाही किया करते हैं। यह एक अस्थाई, अभासी जाल है। इसका निर्माण किया गया है। जो भी भक्त इस आभासी जाल के पार स्थित उस सत्य तक पहुँच जाता है, उसका चुनाव कर लिया जाता है। वर्तमान काल में यह चुनाव स्थल है। यह जाल बनाया गया है।

धर्मपत्नी एक आवरण है, वह आवरण जिसे इसलिए प्रदान किया गया ताकि कार्य उस आवरण के पीछे शान्ति में किया जा सके। इस आवरण के लिए परमपिता का कृतज्ञ होना जरूरी है।

❖❖

जागृत व्यक्तियों के आस-पास घटित घटनाओं के बारे में सिर्फ जागृत होने की आवश्यकता है, हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं क्योंकि जो कुछ भी उनके आस पास घट रहा है उसका कुछ प्रयोजन है। हस्तक्षेप से प्रकृति कार्य में बाधा है। सिर्फ दृष्टि रखनी है। साक्षी होना है। घटती हुई चीजों को घटने देना ही इनका अभिप्राय है।

❖❖

जीवन की हर एक अवस्था का पूर्ण आनन्द लिया जाना अति आवश्यक है। बचपन में बचपन का, जवानी में जवानी का, बुढ़ापे में बुढ़ापे का। बुढ़ापे को उसके पूर्ण सौन्दर्य में तब तक नहीं जिया जा सकता, जब तक जवानी संतृप्त न हुई हो। हर एक अवस्था के बीतने पर उसे त्यागकर, अगली अवस्था का आनन्द लेना आवश्यक है क्योंकि हर उस अगली अवस्था में कुछ विशेष गुण है। कुछ विशेष संदेश है। जिन्हें समझ लिये जाने की जरूरत है। उन संदेशों के समझने के बाद वह अवस्था अपने पूर्ण सौंदर्य में उभरती है।

❖❖

कर्मकाण्ड में 'प्रे' अर्थात् प्रार्थना की प्रधानता है। प्रार्थना जो कभी की जाती है कुछ प्राप्त करने हेतु, कभी की जाती है इच्छाओं की प्राप्ति हेतु क्योंकि व्यक्ति उस समय, उस चरण से गुजर रहा होता है जहाँ इन सभी इच्छाओं की पूर्ति आवश्यक है। ताकि वह अपनी पढ़ाई पूरी कर सके, परीक्षा में अच्छे नम्बर लेकर पास हो सके और एकाध नौकरी या व्यवसाय हो जाता तो क्या बात है! क्योंकि उसके बिना तो बात न बनेगी। नौकरी में तरक्की बहुत जरूरी है क्योंकि ठहराव कुण्ठा को जन्म दे सकता है। नौकरी के साथ आयेंगी जिम्मेदारियाँ, परिवार, बच्चे, माता-पिता, समाज, धर्म। इन सभी जिम्मेदारियों की पूर्ति के लिये व्यक्ति प्रे करता है, अर्थात प्रार्थना और इस दौरान वह जान जाता है कि प्रार्थना कितनी उपयोगी सिद्ध हुई।

इन सभी कार्यों की सिद्धि के साथ और इस प्रार्थना के चक्र के और आगे बढ़ने के साथ, जब व्यक्ति उस परमपिता के थोड़ा और पास पहुँचता है तो उसे समझ आता है कि ये जो मैं माँग रहा था वास्तव में और कोई था ही नहीं, जो इस मांग की पूर्ति कर पाता क्योंकि एक बच्चे की मांग की पूर्ति माता-पिता ही करते हैं। उन्होंने ही उसे जन्म दिया उसकी सारी जिम्मेदारियाँ वहन करते हैं परन्तु ये कठिन वक्त बीत जाने के पश्चात् वह बालक समझ लेता है कि जिससे इतना मांगा, जिसने इतना दिया, उसने कभी-कभी सोच से बहुत ज्यादा दिया, इतना तो मांगा भी नहीं था, इतना तो सोचा भी नहीं था परन्तु उसने सोचा मेरे लिए।

तब व्यक्ति को धीरे-धीरे ये समझ आना शुरू होता है कि जिसने अभी तक इतना दिया उसने सिर्फ प्रेम के अधीन होकर ही दिया। मैं तो लोभ में था प्रेम नहीं दे पाया लेकिन उसके मन में तो प्रेम ही था क्योंकि प्रेम ही है जो सिर्फ आपको देता है, कभी लेने की इच्छा नहीं करता। उसके पास देने को बहुत कुछ है, पूरा संसार है परन्तु वह आपसे कुछ मांगता नहीं क्योंकि प्रेम सिर्फ देना है लेना नहीं है, व्यापार नहीं है। उस क्षण व्यक्ति रूपांतरित हो जाता है। वो क्षण उसे सब सिखा देता है, उसे सब समझा देता है, उसे सब पढ़ा देता है- वक्त आ गया है कि 'प्रे' से प्रेम की तरफ चलना होगा।

अब प्रार्थना ने प्रेम को जन्म दे दिया। मैंने अपनी इच्छाओं की पूर्ति खूब की परन्तु वास्तव में कुछ और भी है जो इच्छाओं की पूर्ति और इन इच्छाओं के पार है, अब तो मैं सबको प्रेम दे रहा हूँ, अपना कर्तव्य कर रहा हूँ, जो भी कमाया परिवार के लिए रख देता हूँ लेकिन कोई, कहीं और से मुझे देख रहा है। कार्य जो मेरे द्वारा हो रहा है उसकी ऊर्जा देता है, मुझसे जो कार्य सम्पादित होना है उसकी भावना देता है वो बचपन से अब तक सिर्फ देता ही चला आया है। मुझे कभी-कभी तो बिना मांगे दे दिया और सच कहूँ तो अधिकतर चीजे बिना मांगे ही मिली हैं। जिन माता-पिता के यहाँ जन्म हुआ था उन्हें जानता भी नहीं था, बिना मांगे ही मिल गए। वह प्रेम जो मुझे परिजनों से मिला, बिना माँगे ही मिल गया।

इतना कुछ तो मिल गया, बिना कुछ मांगे लेकिन मिलने का क्रम अभी टूटा नहीं, मिलता ही जाता है। ऊर्जा आती ही रहती है, मैं काम करता ही रहता हूँ और तब वो क्षण आता है जब व्यक्ति 'प्रे' के पार चला जाता है। तब वो प्रेम में उतर जाता है और तब भाव जागता है कि बहुत दे दिया प्रभु, बहुत मिला मुझे, इतना सब कुछ, आज इस जगह पर लाकर खड़ा कर दिया तुमने कि रोटी मिल जाती है। इच्छा पूरी हो जाती है, काम निकल जाता है पर अब मांगना अच्छा नहीं लगता।

हमेशा मांगता ही रहा और तुम भी ठहरे परम प्रेमी, देते ही रहे। बदले में कुछ मांगा ही नहीं, दिन रात जब कभी भी पुकारा तुम्हें, तुमने सुना। कभी प्रार्थना के तुरन्त बाद, कभी बाद में, उनका उत्तर मिला। जैसे-जैसे उचित वक्त आया प्रार्थना का उत्तर मिला। परन्तु अब मांगने को जी नहीं करता, अब बस मुझे प्रेम का पात्र दो, मुझे प्रेम का रस दो, प्रेम का भोजन दो मुझे, अब उस रस को पीना

चाहता हूँ, जिससे तुम्हारे शरीर की संरचना हुई। अब उसका स्वाद ले लेना चाहता हूँ। अब जान लेना चाहता हूँ कि तुम कैसे इतना प्रेम दे पाते हो? और तब जन्म होता है भक्ति का तथा इसी के साथ जन्म लेता है भक्त भी क्योंकि इसके पहले तो वो याचक था, वह मांगने की मुद्रा में था। सिर्फ पा लेना चाहता था परन्तु अब वो जान लेना चाहता है कि क्या है ये? यह सम्भव किस प्रकार हुआ?

मुझे बताया गया कि कोई है परम प्रेमी, कोई है परम ऊर्जा–परम सत्ता, क्या है वो और किस प्रकार जान पाऊँगा उसे? कैसे समझूंगा? कौन सा मार्ग चुनना होगा, क्या करूँ कैसे जाऊँ, कैसे पहुँचना होगा, मार्ग कैसा होगा? परन्तु ऐसा करने को वक्त भी कहाँ है? ये थोड़ा सा ही तो वक्त है, जो दिन भर में निकाल पाता हूँ, अभी कितना कुछ है करने को लेकिन इसके साथ जानना भी जरूरी है। ये भी जरूरी ही है, वो भी जरूरी है। ये तो जो किया सो परिवार के लिए परन्तु मन में इच्छा उठती है कि जानूं कि कौन है वो, जो अभी तक, हर कदम पर, हर पल कहीं न कहीं सुनता रहा मेरी पुकार? उसे पहचान तो हो थोड़ी, साक्षात्कार तो हो। कभी सामने तो आये परन्तु माँगना छोडूँ तो कैसे? व्यापार भी बढ़ाना है, बच्चों की पढ़ाई भी है, शादी भी करनी है, स्वयं के लिए धन भी संचित करना है। घर–परिवार की जिम्मेदारियाँ भी हैं, तो किससे माँगूंगा? माँगना छूटेगा नहीं परन्तु जानना भी चाहता हूँ, अब देखना चाहता हूँ, समझना चाहता हूँ, क्या करूँ?

किसी ने कहा फलाँ मन्दिर के दर्शन करो, बड़ी जागृत जगह है तो वहाँ चला गया। किसी ने कहा अरे तुम वहाँ नहीं गए, इस बार वहीं जाना, बड़ा ही दिव्य आनन्द होगा, तो मन लग जाता है कि कब पहुँच होगी वहाँ? किसी दिव्य आनन्द की बात हो रही थी? फिर किसी ने कहा, ये यात्रा करनी आवश्यक है, ये कर ही लो क्योंकि ये न किया तो कुछ छूट जायेगा। तब उस यात्रा का भी तरीका ढूँढ लेना होगा, ये भी कर लेना होगा। मौका मिलते ही इसे भी कर लूँगा तब तक नहीं तो शहर के मन्दिर में ही चलता हूँ अच्छा लगता है जब जाता हूँ वहाँ, थोड़ी शान्ति मिल जाती है। इस जीवन की आपा धापी से दूर, कुछ पल तो चैन के मिल जाते है। प्रभु के दर्शन हो जाते हैं।

बच्चे के परीक्षा में बड़े ही अच्छे नम्बर आये नौकरी मिल गई उसे। कुछ

पैसे जमा कर रखे थे, छोटे वाले का व्यापार शुरू करवा दिया। व्यापार भी ठीकठाक चलने लगा और लड़की की शादी पिछले ही साल हो गई। वो भी सुखी है कितना कुछ हो गया, लगता है कल की ही बात थी। धन्यवाद देते अब मन नहीं थकता। इतना कुछ दे दिया, कभी कभी तो शर्म भी आती है कि कैसे माँगू?

अब व्यापार नहीं होना चाहिए। बहुत हो गया व्यापार, अब इस क्रम को यहीं रूकना चाहिए, अब माँगूगा नहीं, सिर्फ दर्शन करूँगा। आऊँगा-बैठूँगा दस मिनट शान्ति के मिलेंगे लेकिन माँगने से परहेज करूंगा क्योंकि कई बार तो उसने बिना माँगे ही दे दिया था, अब जो हो-सो हो। अब तुम्हारे हाथ में है प्रभु, जो जरूरत हो, जहाँ कहीं थोड़ी बहुत कमी हो, उसे पूरा कर देना लेकिन अब कुछ माँगूगा नहीं। यही भक्ति की आगे की अवस्था है। जहाँ पर समर्पण धीरे-धीरे प्रारम्भ होता है। समर्पण साथ में लाता है प्रेम, भाव, भक्ति की सघनता और ये कोई द्वार नहीं एक मार्ग है। जिसकी लम्बाई कई बातों पर निर्भर कर सकती है।

❖❖

प्रकृति के हर एक कार्य में प्रयोजन छुपा है। यदि आपके आस-पास अकारण ही कुछ ऐसी घटनाएँ घटती हैं या ऐसी कोई क्रिया होती है जिसकी कोई आवश्यकता न थी। फिर भी आकरण हुई क्रियाओं के फलस्वरूप कष्ट होना सम्भव है, परन्तु निश्चय ही इन क्रियाओं के पीछे कुछ ना कुछ प्रायोजन है। आपके समर्पण की स्थिति में निश्चय ही प्रकृति आपको माध्यम बनाकर कुछ एक सम्भावनाएँ तलाश रही है। वे सम्भावनाएँ जिनकी परिणति कुछ विचारों के रूप में हो सकती है। जिसका उपयोग या लाभ आगे आने वाली संततियों को होना सम्भव है। अत: जागृत व्यक्ति को अपने आस-पास की परिस्थितियों का विरोध न कर, उनके प्रायोजनों को समझने की आवश्यकता है। हो सकता है कि उनकी परिणति कुछ अनुभवों के रूप में हो या किसी सम्भावना या किसी उत्तर के रूप में।

❖❖

प्रकृति प्रतिदिन अपने रहस्यों को खोलकर हमारे सामने रख देती है लेकिन बस हम ही उसे समझने में जन्मों-जन्म लगा देते हैं। प्रतिदिन सुबह सूर्य प्रकाश

के साथ उदित होता है। जीवन अब प्रारम्भ हो चुका है। सुबह की किरणें लालिमा के साथ अंगड़ाई लेते हुए उदित हुई और प्रकाश दोपहर तक अपने पूरे तेज में होता है। जिस प्रकार एक किरण पूर्ण विकसित प्रकाश बन जाता है और फिर शाम होते-होते, प्रकाश मध्यम होने लगता है, शान्त और स्थिर होने लगता है। वह तेज कम हो जाता है जो तेज दोपहर में शरीर को तपाता था। शाम होते-होते वही सुखद होने लगता है। आखिर आती है रात, जब सूर्य अस्त हो जाता है। हमारा जीवन भी कुछ इसी प्रकार से है बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक। एक सूर्य जो दिन भर में अपना चरण पूरा कर लेता है, वही चरण हमारा कई वर्षों में पूरा होता है। परन्तु जो अस्त होता है अगले दिन पुन: उदित भी होता है। फिर वही चक्र- अर्थात् अस्त होना भी, उदित होने के लिए आवश्यक है। अत: अस्त होने से डरने की आवश्यकता नहीं, बस उदय होने का इन्तजार करो। फिर वही तरूणाई, फिर वही बाल्यकाल और फिर वही युवा-अवस्था इसे ठीक प्रकार से समझ लेने की आवश्यकता है।

❖❖

किसी जागृत व्यक्ति के शरीर त्याग करने पर दु:खी होना सर्वथा अनुचित है ये उसके साथ अन्याय है। वह जागृत आत्मा है, अब उसका प्रयाण आनन्द से परम आनन्द की ओर हो चुका है। मृत्यु उसके लिए मृत्यु नहीं। इस जीवन चक्र में वापस पड़ने का मार्ग नहीं, अंत उसके लिए महाजीवन की शुरुआत है, परम आनन्द का द्वार है। उस आत्मा के लिए सिर्फ आनन्द उत्सव ही हो सकता है। उसके साथ अन्याय करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि इस परम घटना का साक्षी हो जाना ही तुम्हारी जागृति में सहायक हो सकता है। अत: शोक न करो, आनन्द का उत्सव करो क्योंकि पहले वह तुम्हारे लिये शरीर में उपलब्ध था। अब वह तुम्हारे लिए सदैव उपलब्ध है। वह परम प्रेम की तरफ चला गया क्योंकि उसने परम प्रेम को जान लिया। जीवन में जो कुछ भी करना बस जागृत हो जाना, बस जाग जाना क्योंकि यदि जाग जाओगे तो सवेरा होना निश्चित है। उसे रोका नहीं जा सकता परन्तु सोते रहने पर सवेरा तब होगा जब आँख खुलेगा, इसलिए सोओ मत जागो। जागो और खुद को तैयार करो, इन्तजार करो सूरज के उदित होने का।

❖❖

उस तक पहुँचने का सबसे आसान तरीका है 'प्रेम'। अपने हृदय में प्रेम का जागरण कर लो, तुम्हारा प्रेम निस्वार्थ हो जाएगा, तुम्हारा प्रेम अकारण हो जाएगा। तुम्हारे प्रेम में चुनाव न होगा, तुम्हारा प्रेम सर्वत्र हो जाएगा और जब तुम स्वयं प्रेम स्वरूप हो जाओगे, तब तुम्हें उसके पास जाने की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी क्योंकि तब तुम योग्य हो जाओगे और योग्य व्यक्ति का चुनाव कर लिया जाता है। तुम उनके पास भले ही मत जाना, वह स्वयं तुम्हारे पास चलकर आएंगे। वह स्वयं तुम्हें मार्ग का दर्शन करा देंगे। बस थोड़ी-सी उत्सुकता अवश्य रखना। जानने की कोशिश करना, नहीं भी जानोगे तो भी शर्त नहीं जानने की, बस प्रेम स्वरूप हो जाओ। आगे के द्वार खुलने लगेंगे।

❖❖

एक छोटे अबोध बालक को जब उसके माता-पिता घर में आये हुए मेहमान के पैर छूने को बोलते हैं और वो छोटा बालक अज्ञान स्वरूप ही क्योंकि उसे पता नहीं होता कि इस क्रिया का क्या महत्व है और अज्ञानता में ही, जब किसी का पैर छूता है तो आपने मेहमान की प्रतिक्रिया अवश्य ही देखी होगी। वह व्यक्ति बालक को गोद में उठाकर अपना जितना प्रेम है, अपनी सारी प्रेम की शक्ति को एक जगह एकत्र करके उस पर उड़ेल देता है। अपनी जितनी सात्विकता, (आशीर्वाद सदैव सात्विक गुणों की परिणति होती है) व्यक्ति में जो गुण है, जो कुछ भी उसमें सात्विक है, वह अंश जो सत्व का अंश है, वह उसपर उड़ेल देता है। जितना भी प्यार उसके शरीर में होगा, उस सभी प्रेम को एकत्र करके उस बच्चे को दे देता है। ठीक यही क्रिया होती है जब आप मन्दिर में भगवान के सामने अपना शीश नवाते हैं, जितना कुछ भी प्यार, जितना कुछ भी प्रेम है प्रभु वो सब आप पर उड़ेल देते हैं।

आशीर्वाद सत्व गुणों की परिणति होती है। यदि आप किसी ऐसे व्यक्ति से भी आशीर्वाद लें जिसके अन्दर काफी कुछ असत्य है। जो अभी भी अंधेरे में भटक रहा है, आशीर्वाद देते समय वो अपना अन्धेरा आपको नहीं देता, अपने मन में जो थोड़ा कुछ प्रेम या जो कुछ भी सत्व का अंश है, उसी भावना को एकत्र करके

आपके सिर पर हाथ रख कर, आपके अन्दर आरोपित कर देता है। तो हर व्यक्ति से प्राप्त करने के लिये कुछ न कुछ है, हर व्यक्ति के पास देने के लिये कुछ न कुछ है। यह लेने वाले पर निर्भर है, उसके लचीले पन पर निर्भर है, उसके झुकने की कला पर निर्भर है और उसकी प्यास पर निर्भर है।

वासना को इसीलिए त्याग देने योग्य माना गया है क्योंकि वह स्वार्थ से प्रेरित है, उसमें अपने सुख की कामना है। मुझे सुख मिलता जो मैं थोड़ा और भोग लेता। सुख में सदैव स्वार्थ है। सुख सदैव अपने लिए खोजा जाता है, अपने परिवार के लिए खोजा जाता है। अपने नाते रिश्तेदारों, अपने मित्रों के लिए खोजा जाता है परन्तु आनन्द में स्वार्थ नहीं, आनन्द पर सबका हक उतना ही होता है, जितना किसी पहुँचे हुए व्यक्ति का। उसकी सान्द्रता कम या ज्यादा हो सकती है परन्तु उपलब्ध वो सबके लिए है। सुखों से दूर जाने के लिए सिर्फ इसलिए कहा गया है कि कहीं ना कहीं इसमें स्वार्थ जुड़ा है, परन्तु आनन्द सबके लिए उपलब्ध है। उसके होने या न होने का सम्बन्ध किसी एक व्यक्ति, विचारधारा या स्थिति से नहीं है।

❖❖

ब्रह्मा जी ने सृष्टि की रचना की परन्तु उन्हें पूजा नहीं जाता अर्थात् रचना करने वाला महत्वपूर्ण है, पालन करना, उच्च शिक्षा देना, ज्ञान देना, जीवन के लक्ष्य बताना, उन्हें पूर्ण करने में सहयोग देना, आवश्यकता पड़ने पर मार्ग बताना, उस मार्ग पर चलने को प्रोत्साहित करना, मार्ग में यदि काँटे चुभे तो उनको निकालने की व्यवस्था करना, जब कभी रोग-जरा, परेशान करे तो उनसे भी पार जाने का रास्ता बताना और अन्त में उन्हें बताना की क्या है परम लक्ष्य? जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु प्रोत्साहन करना, यदि सहायता की आवश्यकता पड़े तो तैयार रहना। यह काम कृष्ण या यह कहिए कि उनका अस्तित्व आपके लिए करता है, अत: अस्तित्व का वह भाग जो जीवन प्रदान करता है। उससे कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण वह भाग है, जो आपको मार्ग प्रदान करता है।

❖❖

जागृत व्यक्तियों के आस-पास होने वाली हर एक घटना में कुछ न कुछ संदेश छुपा है उन्हें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं, द्रष्टा बनने की आवश्यकता है, उन संकेतों को देखने की आवश्यकता है।

❖❖

जागृति का तात्पर्य है, आन्तरिक दृष्टि का उपलब्ध हो जाना। वाह्य दृष्टि के अलावा आन्तरिक दृष्टि जो अभी तक सुषुप्त अवस्था में पड़ी थी, वह जागृत हो चुकी है। अब आप चीजों को देख ही नहीं सकते, उनके पीछे छिपे मन्तव्यों को जान सकते हैं, इस जगत के रहस्यों को समझ सकते हैं, सृष्टि का रहस्य अब आपके लिए उपलब्ध है। हर वो चीज जो सदैव से आपके लिये उपलब्ध थी परन्तु उसमें छुपे संदेश को, उसके रहस्य को जाना न जा सका था, अब वो संदेश, वो रहस्य आपके लिए उपलब्ध है। अब वह संकेत आपके लिए संदेश बन चुका है उस रहस्य की परतें जब आप पर खुलने लगेंगी, उनके होने के मन्तव्य को तब आप जानने लगेंगे।

वह सब कुछ जो आपके आस-पास चल रहा है उसके कारण को व उसका प्रयोजन अब आपके लिए उपस्थित होने लगता है। हर वो चीज जो सदैव से आप जानना चाहते थे, जिन प्रश्नों के उत्तर ढूँढा करते थे। यहाँ-वहाँ विभिन्न जगहों पर, विभिन्न यात्राओं में, विभिन्न व्यक्तियों में, पुस्तकों में, समाचारों में जहाँ कहीं से सम्भव हो, उसका उत्तर प्राप्त करने की कोशिश करते थे, अब वह उत्तर आपके लिए उपलब्ध है। अब उन उत्तरों को खोजने आपको कहीं जाना न होगा। आप जहाँ कहीं भी हों उत्तर वहीं उसी स्थान पर उपलब्ध है, जो प्रश्न आपको परेशान किया करते थे-खाये जाते थे। वो प्रश्न अब धीरे-धीरे समाप्त होने लगते हैं। अब आप पहले जैसे बिल्कुल नहीं रहेंगे। बहुत कुछ बदल जायेगा भीतर।

❖❖

स्वयं की खोज का तात्पर्य है इस सृष्टि में अपने महत्व को जान जाना। इस

सृष्टि में अपने होने की उपयोगिता को जान जाना। यह बात जान लेना कि आपकी उपस्थिति किस प्रयोजन के लिए है? यह जान लेना कि अस्तित्व आपसे क्या चाहता है व आपको कौन-सा कार्य सौंपा है? उस कार्य के लिए स्वयं को तैयार कर लेना। यह जान लेना कि इस धरा पर होने का कुछ प्रायोजन है, प्रायोजन की सार्थकता उसकी कार्य की सिद्धि में है। स्वयं को जान लेने के बाद उस कार्य सिद्धि में पूरी शक्ति झोंक देनी आवश्यक है क्योंकि यही एक कार्य है जिसके लिए आपकी उपस्थिति हुई है।

❖❖

आन्तरिक दृष्टि के उपलब्ध होने का तात्पर्य है- 'जागृति' और जागृति का तात्पर्य है- 'आन्तरिक दृष्टि का उपलब्ध हो जाना' अर्थात् अब जो कुछ भी है जिस रूप में है उस रूप में दिखायी दे सकता है। आप उसे देखने के बाद उसके प्रायोजन को समझ सकेंगे, प्रायोजन आपके लिए उपलब्ध है । अब उत्तर आपके लिए उपलब्ध है। परम ने आपको वो सारी जानकारी दे दी, जिसके योग्य आपने स्वयं को बना लिया है। जिसकी योग्यता प्राप्त हो चुकी थी और अब जिसका उचित समय आ चुका था। परन्तु आन्तरिक दृष्टि का उत्पन्न हो जाना और स्वयं की खोज पूर्ण हो जाना, ये दो अलग-अलग चीजें हैं, दो बिल्कुल अलग चीजें क्योंकि यदि आन्तरिक दृष्टि के साथ आपने स्वयं की खोज भी पूरी कर ली तो आपको आपकी भूमिका भी बता दी गयी, इसका तात्पर्य यही है कि सृष्टि ने आपके हेतु कार्य निश्चित कर रखे हैं। वे कार्य जो आपके माध्यम से सम्पन्न करा लेने हैं इन दोनों अवस्थाओं का उपलब्ध हो जाना कोई संयोग नहीं, इसके पीछे स्पष्ट कारण है। अब आपको स्वयं को तैयार करना होगा उन कार्यों के लिए जो आपके माध्यम से सिद्ध किये जाने है, और अपनी तैयारी के लिए आपको पूर्ण वक्त भी मिलेगा।

❖❖

बुद्धि आने के साथ कामों का विस्तार होगा। बुद्धि के साथ सम्पदा, समृद्धि, शक्ति, प्रभाव, आदर, विद्या, और प्रसिद्धि आती है। बुद्धि जीवन का उच्च स्तर है। अत: बुद्धि के पार जाने हेतु बुद्धि के उस स्तर पर आना व उन सभी भागों को

प्राप्त कर लेना आवश्यक है। बुद्ध धर्म, बौद्धिक धर्म है। बुद्ध स्वयं एक राजा की सन्तान थे। उन्होंने सभी प्रकार के सुख समृद्धि को बहुत नजदीक से देखा था और इस नजदीकी से देखने के बाद ही उन्हें इनके असार होने की अनुभूति हुई। बौद्धिक धर्म उन व्यक्तियों के लिए बहुत उचित है जो बुद्धि के उच्चस्तर पर और सम्पन्नता के उस स्तर पर पहुँच गये हैं परन्तु वे सभी व्यक्ति जो समाज के निम्न स्तर पर हैं। अभी उन्हें समाज में कई सीढ़ियाँ चढ़नी बाकी है। कई स्तर हैं, जिन्हें पार कर लेना है, सम्पन्नता को उसके ऐश्वर्य में भोग लेना है। इससे पहले कम से कम दो वक्त की रोटी की व्यवस्था कर लेनी है, उनके लिए बौद्धिक धर्म बहुत दूर की कौड़ी है। इसी कारण भारत में बुद्ध धर्म अपने पूर्ण व्यविस्थत रूप में सफल नहीं हो पाया।

❖❖

सत्वगुणों के चक्र से बाहर जाने हेतु सबसे सुन्दर उपाय है समर्पण। समर्पण के द्वारा आप सत्वगुणों के मोह से भी बाहर जा सकते हैं। फिर जो आगे की अवस्था होगी वो आपका मार्ग सदैव प्रशस्त ही करेगी क्योंकि तब प्रधानता होती है कि जो कुछ भी उसमें था वह तो एक निमित्त मात्र था। इन सभी कर्मों को करने में मेरा कोई भाग नहीं, वो सभी कार्य जो मेरे माध्यम से करवा लिये गये, उनमें मैं सिर्फ माध्यम ही हो सकता था। अत: सभी कार्य आप ही को अर्पित, मुझे इनमें भी अब कोई रूचि नहीं, मुझे अब समर्पण में ही रहना है।

अपनी सहस्त्रार मंथन की प्रक्रिया को सदैव आगे की तरफ ही बढ़ाना होगा। अन्त में निकलेगा अमृत परन्तु अमृत निकलने से पहले कई रत्न निकलेंगे। जो आपको स्वयं की ओर आकर्षित कर सकते हैं। आकर्षण की कोई आवश्यकता नहीं, उसकी कोई उपादेयता भी नहीं है क्योंकि अमृत तत्व सबसे आखिर में निकलता है और वही सत्य है।

❖❖

आन्तरिक दृष्टि के उपलब्ध होने पर वर्तमान में स्थित हो सकते हैं। अतीत और भविष्य से तारतम्य टूट जाता है। अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। जो

कुछ भी है सिर्फ वर्तमान में ही है। ध्यान के प्रयोग और समर्पण की अवस्था आपको इस स्थिति में पहुँचाने के लिए पर्याप्त है। दोनों ही क्रियाओं की पूर्ण सम्पन्नता में इस अवस्था की सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

❖❖

सारी की सारी समस्या की जड़ बस इतनी सी ही है कि हम अतीत में जीते हैं या भविष्य में, या तो अतीत में घटित स्मृतियों से परेशान हैं या उनसे पार जाने की कोशिश कर रहे हैं, उनसे उबरने की कोशिश कर रहे हैं। जो नुकसान हो चुका है उसकी भरपाई करने की कोशिश कर रहे हैं और भविष्य के लिए सशंकित हैं या भविष्य में होने वाली घटनाओं की तैयारी आज ही कर लेना चाहते हैं। ये जो भी तैयारियाँ हैं, भौतिक जगत की तैयारियाँ हैं। कल पैसे की जरूरत पड़ेगी, तो आज ही इन्तजाम कर लेना है। एक घर हो चुका है, एक घर और हो जाता तो और अच्छा हो जाता। मेरी सम्पति इतनी है, अगर दुगुनी हो जाती एक साल में या दो साल में तो क्या आनन्द आता? सारी की सारी दौड़-भाग इसी को लेकर चल रही है और इस आपा-धापी में वर्तमान खो गया है।

सब एक आभासी दुनिया में जीना चाहते हैं। भविष्य या अतीत दोनों ही आभासी हैं। एक जो कभी लौट कर आ नहीं सकता और दूसरा जो आयेगा या नहीं, कोई भरोसा नहीं लेकिन जीवन चल रहा है। वर्तमान के बारे में तो कोई सोच भी नहीं रहा है। आप वर्तमान में जीयेंगे तो आपको आज का भी विचार नहीं करना पड़ेगा क्योंकि आज घटित हो ही रहा है और इसके घटित होने में आपका कोई हस्तक्षेप भी नहीं है। इसकी अनुभूति मात्र कर सकते हैं, इसकी योजना नहीं बना सकते। आप इसकी सिर्फ अनुभूति कर सकते हैं, इसका आनन्द ले सकते हैं। वर्तमान में जीने वाले लोगों की संख्या यदि गिनें तो गिने-चुने लोग ही मिलेंगे क्योंकि अधिकतर लोग अतीत या भविष्य में जी रहे हैं।

मेरा पूरा का पूरा कार्य वर्तमान में जीने वाले लोगों की संख्या बढ़ाने का है। उन्हें यह समझाने का है कि आपका अस्तित्व आज है-इसी पल में है। इसके बारे में यदि जान लिया, इसका अनुभव कर लिया, इसको भोग लिया तो अतीत से मुक्ति

तो यूँ ही प्राप्त हो जायेगी और भविष्य भी आने वाले समय में वर्तमान ही हो जायेगा तो यदि आनन्द का चक्र आज, आप शुरू करोगे तो ये आने वाले समय तक चलता रहेगा। ये वो चक्र है जो रूकता नहीं है, प्रवेश सम्भव है और उसके बाद घनत्व बढ़ता ही जाता है। आज के बारे में सोचना आवश्यक है।

❖❖

आपके पूरे कैरियर में एक ऐसा समय आयेगा जब वो सभी चीजें, जो हमेशा से प्राप्त करना चाहते थे, अच्छे कॉलेज में एडामिशन, अच्छा एजुकेशन, अच्छे नम्बरों से अपनी परीक्षा पास करना, अच्छी नौकरी, अपना व्यवसाय, धन सम्पदा, समृद्धि, यात्राएँ, सम्बन्ध, संतति ये सारे आपको मिल जाये और फिर भी आपको महसूस हो कि कोई चीज छूट रही है। अभी-भी कुछ खोया हुआ है। पजल के कुछ भाग अभी भी मिसिंग है, कुछ खालीपन सा अभी भी बाकी है। तब एक बार अपने अन्दर झाँक लेना। यही है जो मिसिंग है। वाह्य यात्रा तो पूरी पूर्णता से पूरी कर रहे हैं, चरम की तरफ बढ़ रहे हैं। एक चरम तो पा ही लिया आपने, वो सब तो पा ही लिया जिसकी आपने कल्पना तक नहीं की थी लेकिन अब नये चरम बन गये हैं। नये प्रतिमान बन गये हैं। नयी महत्वकांक्षाएँ उपस्थित हो गयीं हैं। वो उपस्थित भी इसीलिये होती है कि लगता है कि शायद इस और चरम को प्राप्त कर लूँ तो खालीपन भर जायेगा।

यदि ऐसा कभी महसूस हो तो अपने अन्दर झाँक कर देख लीजिएगा क्योंकि एक यात्रा जो आपने बाहर तय की है, वैसे ही एक मार्ग अन्दर की तरफ भी जाता है। ये आपके खालीपन का मार्ग है क्योंकि इसमें कोई यात्रा नहीं की, इसलिए खाली-खाली सा लगता है। 'अन्दर बस उसी द्वार की पहचान करना चाहता हूँ' यदि कभी जीवन में ऐसा महसूस हो तो अपने अन्दर झाँक कर देखियेगा क्योंकि तब वह वक्त आ चुका होगा जब वो द्वार आपकी प्रतीक्षा कर रहा होगा। जीवन में पूर्णता कभी भी सिर्फ वाह्य मार्ग पर चलकर प्राप्त नहीं हो सकती।

कितना भी आप पैसा कमा लीजिये लेकिन खालीपन बना रहेगा, कभी यदि उस खालीपन की याद आ जाये, तो बस इतना याद रखियेगा कि एक मार्ग और

भी है। जब इतना किया तो एक बार उसको भी टटोल कर देख लेता हूँ। इतना जीवन उसे बाहर खोजने में लगा दिया अब थोड़ा वक्त निकाल कर ये देख लेता हूँ कि ये मार्ग है क्या है? और ये जा कहाँ रहा है? क्योंकि यदि मार्ग है तो कहीं ना कहीं तो पहुँचेगा ही। क्या यही तो बाकी नहीं रह गया? क्या यही तो वह निर्वाह नहीं जो बार-बार मुझे महसूस होता है बस यदि आप उस तरफ झाँकने के लिए भी, अपनी दृष्टि डालने के लिये भी, एक बार सोचने के लिए भी, कुछ वक्त निकालने के लिए भी, कुछ खोने के लिए भी, कुछ पाने के लिए भी तैयार होंगे, तो इस पुस्तक की सफलता हो गयी।

❖❖

आन्तरिक जागृति आपके वाह्य जीवन को सुन्दरता में भर देती हैं। एक पूर्णतया जागृत व्यक्ति का वाह्य जीवन आनन्द, प्रेम, संगीत, नृत्य से भरा होता है। फिर जीवन उसके लिए सौन्दर्य है। फिर जीवन उसके लिए रास है, परम् रास जिसका आनन्द वे सभी लोग उठा सकते हैं, जो उसके पास से गुजरे भी हों, जिन्होंने कभी उसे देखा हो, जिन्होंने उसे कभी जाना हो। वाह्य जीवन में पूर्णता के लिए आन्तरिक जीवन की पूर्णता महत्वपूर्ण कारक है।

❖❖

वहाँ कोई जल्दी नहीं है, किसी बात की हड़बड़ाहट नहीं है। कुछ छूटा नहीं जा रहा है क्योंकि वहाँ समय नहीं है तुम जल्दी में हो, भाग रहे हो कहीं पहुँचना चाहते हो, काम छूटा जा रहा है क्योंकि तुम्हारे पास समय सीमित हैं। इस समय के बन्धन से, समय के पार भी एक छलांग है। इस पार से उस पार की, जो तुम्हारे भीतर से ही जाती है। इसके लिए किसी टाइम मशीन की भी जरूरत नहीं पड़ेगी।

❖❖

जैसे ही हृदय में प्रेम का आगमन हो जायेगा, जैसे ही उसकी उपस्थिति निश्चित हो जायेगी, वैसे ही धर्म विदा हो जायेंगे। धर्म की उपस्थिति तभी तक अनिवार्य है, जब तक प्रेम उपस्थित न हो और प्रेम की उपस्थित होने के बाद किसी

धर्म की आवश्यकता नहीं क्योंकि प्रेम सबसे बड़ा धर्म है। हर धर्म का कार्य सिर्फ इतना है कि वह प्रेमपूर्वक जीना सिखा दे। अगर धर्म ने प्रेमपूर्वक जीना सिखा दिया तो उसका काम पूरा हो गया अब किसी धर्म की आवश्यकता नहीं क्योंकि इसके बाद उदय होगा प्रकाश का, आपके भीतर। धर्म सदैव बाहर से आता है, प्रकाश अन्दर से आता है और जब प्रकाश उपस्थित हो जायेगा तो आप किसी दायरे से बँधे नहीं रह जायेंगे।

आप धरती के भी पार जाकर, इस सृष्टि को भी अपना दायरा बना लेगें। धर्म का कार्य उस दरवाजे तक पहुँचा देना है, प्रेम का दरवाजा, प्रेम का द्वार। यदि धर्म ने बस इतना ही कर लिया तो सफल हो गया इससे ज्यादा उसकी आवश्यकता नहीं है। यदि आप प्रेम तक पहुँच जायेंगे तो निश्चय ही आप उस धर्म का सार जान जायेंगे, जिस धर्म ने आपको उस प्रेम तक पहुँचाया है।

यदि आपको धर्म ने प्रेम नहीं सिखाया तो धर्म चूक गया या आप धर्म से कहीं दूर से ही निकल गये। आप दोहों, चौपाइयों और कलमों को रटते रहे लेकिन आप उसकी आत्मा तक नहीं पहुँच पाए। रटते रहिते, कई और जन्म बीत जायेंगे, रटते रहेंगे और कोई फर्क नहीं पड़ेगा। जिस दिन, आप चाहे जिस किसी धर्म से आते हों, अपने धर्म की आत्मा को समझ लिया, उसी दिन धर्म विदा हो जायेगा क्योंकि ईश्वर धर्म से परे है। धर्म सिर्फ उसका द्वार दिखाता है। धर्मों का निर्माण ही इसलिए हुआ कि आपको द्वार तक पहुँचा दिया जाये। हम पहले जंगलों में इधर-उधर घूमकर, लकड़ियों को काटकर, पेड़-पौधों की पत्तियों को खाते थे, उनकी छालों पर, जीव-जन्तुओं पर निर्भर रहते थे अपनी उदर की क्षुधा को शान्त करने के लिए। हमें वहाँ से एकत्र कर सिर्फ दरवाजे तक पहुँचाने के लिये धर्मों का निर्माण किया गया। भविष्य में धर्म भी यदि मात्र व्यापार बन कर रह गया तो धीरे-धीरे उनकी प्रासंगिकता भी कम होने लगेगी। प्रासंगिकता सिर्फ उन्हीं लोगों के लिये बनी रहेगी जिन्हें धर्म का व्यापार करना हो और वे सामान्य भोल-भाले व्यक्ति जो ईश्वर को ढूँढते हुए उस व्यापारी के साथ व्यापार करने लगेंगे, उसकी दुकान पर कुछ खरीदने पहुँच जाएंगे।

एक बार बंगलौर में घूमते हुए एम.जी. रोड पर मुझे दो लोग मिले, एक लड़का व एक लड़की १९-२० साल उनकी उम्र रही होगी। अभी जरूर कहीं पढ़

ही रहे होंगे। उन्होंने कहा- 'क्या हम लोग दो मिनट बात कर सकते हैं?' मैंने कहा- 'हाँ जरूर!' उन्होंने कहा- 'आप जीसस की शरण में क्यों नहीं आते वो आपके सारे दु:ख दूर कर देंगे। ये पर्चा लीजिये और इसे पढ़िये। इसे पढ़कर आप समझ जायेगें कि क्राइस्ट आपके सारे दु:ख दूर करने ही आये थे और जैसे ही आप उनकी शरण में पहुँचेंगे, दु:खों की समाप्ति हो जायेगी। फिर कहीं कोई दुख नहीं रहेगा।'

उस समय मैं भी उन्हीं की उम्र का रहा होऊँगा। कुछ खास समझ नहीं पाया था इस बात को लेकिन मुझको इतना अवश्य पता था कि ये मित्र अभी केन्द्र तक नहीं पहुँच पाये हैं अभी ये कैरल तक ही सीमित है। आत्मा से भी दूरी है इनकी। इन्होंने ये जाना कि जीसस एक व्यापारी हैं। आओ मेरी शरण में और दुखो से मुक्ति ले लो। ये दोनों बच्चे ये ही मानते हों कि धर्म ही चरम है। अन्याय किया उन्होंने जीसस के साथ और अन्याय किया अपने साथ। वही बात समझाने निकले जो खुद ही समझे नहीं थे। यदि उन्हें व्यापार ही करना था तो फिर श्रद्धा क्या? बहुत सारी चीजे थी।

आज सारी मानवता, अभी भी क्यों दुखी है? अभी भी क्यों पीड़ित है? सिर्फ नाम रख लेने से कि मैं ये हो गया, मैं फलाँ धर्म में पहुँच गया, क्या इसी से दु:ख चले जायेंगे? और यदि वास्तव में ऐसा है तो फिर किसी इसाई को दु:खी नहीं होना चाहिये। उसके जीवन में कोई आपाधापी नहीं होनी चाहिये। सदैव सुख और शान्ति रहनी चाहिए। यदि सच्चा सुख और शान्ति रहेगी तो धर्म की जरूरत ही क्या पड़ेगी? इसलिए किसी को समझाने से पहले खुद को समझ लेना आवश्यक है, वरना अन्याय ३ लोगों के साथ हो जायेगा। सबसे पहला तो जिन्हें आपने समझाने की कोशिश की। दूसरा अन्याय आप स्वयं से करेंगे, खुद तो समझे नहीं और दूसरों को समझाने निकल पड़े और तीसरा अन्याय आपने उस जाग्रत पुरुष के साथ किया। शुरूआत ही आपने गलत कर दी। अब इसका पाप कैसे चुकाया जायेगा?

ये यात्रा कुछ पाने वालों के लिये नहीं है। ये अपना सब कुछ न्यौछावर कर देने वालों के लिये है। जो प्राप्त है, उसे खो देनें की यात्रा है। समत्व के आते ही आप जाति का बन्धन तोड़े देंगे। जाति विलीन हो जायेगी। प्रेम प्राप्त होते ही धर्म विलीन हो जायेगा। अगले कुछ चरणों में अपनापन और परायापन विलीन हो

जायेगा। आन्तरिक दृष्टि उपलब्ध होते ही तुम्हारा नाम भी विलीन हो जायेगा। नाम जो पहचान होती है, जिसके लिये संसार में सारे उपद्रव चलते हैं, जिसके लिये लड़ाईयाँ लड़ी जाती हैं। जिसके लिये सम्बन्ध टूट जाया करते हैं। जिसके हेतु सब कुछ दाँव पर लगा दिया जाता है, वो नाम भी विलीन हो जायेगा और नाम के साथ तुम्हारा अहंकार भी विलीन हो जायेगा। प्रकाश प्राप्त होते ही तुम्हारा काम, तुम्हारा व्यवसाय, तुम्हारा कार्य भी विलीन होना प्रारम्भ हो जायेगा क्योंकि अब दिशा परिवर्तित हो चुकी होगी। अन्त में इन कार्य की पूर्ण समाप्ति पर जीवात्मा का जीव ज्ञान में विलीन हो जायेगा और बचेगी तो आत्मा, शुद्ध आत्मा।

ज्ञान उपलब्ध हो सकता है। ज्ञान के उपलब्ध होने से पहले सबसे बड़ी आवश्यकता है खोने की। 'मैं' अर्थात् असत्य क्योंकि 'मैं' की एक जीवन सीमा होती है। विभिन्न पशुओं से लेकर मानव जाति तक, सत्तर-अस्सी-नब्बे या सौ साल तक 'मैं' की उम्र है, उसके बाद मैं को विलीन होना ही पड़ता हैं और जो विलीन हो जाये वह कभी सत्य नहीं होता क्योंकि सत्य कभी विलीन नहीं होता। सत्य सदैव हर युग में स्थिर रहता है क्योंकि ये समय से परे है।

कृष्ण ने कहा है कि मुझे तत्व से जानो। ये जानों की पूरी सृष्टि का तत्व क्या है? पूरी सृष्टि कर क्या रही है? वास्तव में देखें तो पूरी सृष्टि परहित के काम में लगी हुई है, प्रदान करती है। भोजन, वस्त्र जो वृक्षों से बनाये जाते है। फल-फूल, ऑक्सीजन, रहने को धरती, आसमान, बादल, प्रकाश। सृष्टि का मूल तत्व ही प्रदान करना है इसीलिये कृष्ण ने कहा कि मुझे तत्व से जानो क्योंकि जब तुम मुझे तत्व से जानने लगोगे तो आभासी 'मैं' से तुम्हारा छूटना प्रारम्भ हो जायेगा। जब तुम मुझे तत्व से जान जाओगे, इस सृष्टि को तत्व से जान जाओगे तो तुम सृष्टि के भाग हो जाओगे। उस क्षण आत्म साक्षात्कार घटित होगा।

आत्म साक्षात्कार अर्थात् ये बात जान लेना कि इस सृष्टि में मेरी क्या स्थिति है? क्योंकि सृष्टि का हर एक कण परहित में लगा हुआ है। स्व हित से उसका कोई सरोकार नहीं है क्योंकि उसने खुद के लिये कभी कुछ माँगा ही नहीं। जब आप सृष्टि से एकाकार हो जाते हैं तो उस दिन से आपका स्वहित में भी काम करना मुश्किल हो जाता है। ज्ञान प्राप्ति यही है। सृष्टि में अपनी उपयोगिता जान लेना है

और ये जानना तभी हो पायेगा जब सृष्टि के एक भाग के रूप में स्वयं को जाने लेंगे।

ये न जानना ही, आपको परम् पथ से दूर रखता है इसीलिये सनातन धर्म में ज्ञानकाण्ड का विशेष महत्व है। कर्मकाण्ड के समाप्त हो जाने के बाद जो अवस्था शुरू होती है वो है ज्ञान काण्ड। जान लो आपके लिए सृष्टि ने क्या काम रख छोड़ा है और जब आप पूर्ण निष्ठा से, पूरी ऊर्जा से, सृष्टि की मूल भावना से एकाकार होते हुए उस कार्य को सम्पादित कर देते हैं, तब आप सृष्टि हो जाते हैं। यही है परम पद, यही है मोक्ष, यही है मुक्ति, यही है कृष्ण।

यदि सृष्टि का मूल तत्व परहित है तो कोई भी परहित का कार्य करने से क्या कार्य पूर्ण हो जायेगा? क्या उस अवस्था में ज्ञान प्राप्ति की आवश्यकता नहीं पड़ेगी? क्योंकि ज्ञान प्राप्ति करके भी करना वही है जो सृष्टि की मूल भावना के अनुरूप है। सृष्टि ने सभी को यथा योग्य काम बाँटा हुआ है। एक अमरूद का वृक्ष, केवल अमरूद ही पैदा करता है, आम का आम और लीची का वृक्ष लीची प्रदान करता है क्योंकि उसे वही कार्य सौंपा गया है। नदी का कार्य जल प्रदान करना है और मेघों का वर्षा, कुछ पेड़ फल नहीं देते, छाया देते हैं, आक्सीजन ज्यादा देते हैं। घास स्वयं को समर्पित कर गायों का भोजन बनती है और उसी घास से दूध का निर्माण होता है और वह दूध मनुष्यों के काम आता है।

विभिन्न वनस्पतियाँ औषधि के काम में आती हैं। एक औषधि की पूर्ण उपयोगिता तभी सिद्ध होगी जब वो अपना कार्य पूरी ईमानदारी और पूरी ऊर्जा से करे। औषधि का वृक्ष हमें अमरूद नहीं दे सकता, औषधि के वृक्ष को औषधि ही देनी पड़ेगी। संजीवनी बूटी खाकर हम अपनी भूख नहीं मिटा पायेंगे। संजीवनी बूटी से किसी को जीवित किया जा सकता है। इसी कारण आत्म साक्षात्कार की आवश्यकता पड़ती है। ये जान लेना कि सृष्टि में मेरी क्या उपयोगिता है? वो कौन से विशेष काम हैं, वो कौन सा विशेष गुण है? जिसे मुझे प्रदान करके भेजा गया है। जिसके आधार पर मुझे कार्य सम्पादित करना है।

अमरूद का वृक्ष, अपने जीवनभर अमरूद प्रदान करके, अपना जीवन काल पूर्ण कर सूख जाता है इस प्रकार उसकी पूर्ण उपयोगिता सिद्ध हो जाती है। औषधि प्रजाति का कोई पौधा जब अपने जीवन भर औषधि का निर्माण करता रहे तब उसकी उपयोगिता सिद्ध होती है। यदि वो आक्सीजन प्रदान करना चाहे तो कर सकता है लेकिन वो बरगद के पेड़ जितनी आक्सीजन प्रदान नहीं कर पायेगा। इसी कारण आत्मज्ञान की आवश्यकता है। इसी कारण इसे परम पद के पहले की अवस्था माना गया है।

❖❖

सत्य तो सत्य ही होता है फिर वो आधा व पूरा सत्य नहीं हो सकता। वो सिर्फ सत्य ही होगा, आधा अधूरा कुछ भी नहीं। या तो सत्य है या परम सत्य है तो सत्य और परम सत्य में अन्तर क्या है? सत्य और परम सत्य में आवृत्ति व घनत्व का फर्क है। ओम को ब्रह्म ध्वनि माना गया है क्योंकि इसकी आवृत्ति सृष्टि के आवृत्ति के बाराबर है परन्तु अन्य शब्द, सारे शब्द भी सत्य है क्योंकि शब्द ध्वनि के माध्यम से, ध्वनि के वाहन पर सवार होकर आते हैं। ध्वनि एक ऊर्जा है और ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती मात्र उसका स्वरूप बदलता है। ये विज्ञान ने हमें बताया हालांकि भारतीय ऋषि–मुनि इस बात को बहुत पहले से जानते थे। लेकिन सदियों बाद हाइपेथेसिस से थ्योरी के रूप में बदलकर अब ये फैक्ट बन गया।

जब आप सत्य के दायरे में प्रविष्ट होते हैं और उससे सम्बन्धित कार्य निष्पादित करते चले जाते हैं, तो सत्य का घनत्व आपमें बढ़ता चला जाता है। आपकी कक्षा, जीवात्मा की कक्षा सिकडुती जाती है, वह अपने केन्द्र की तरफ बढ़ती जाती है, जो है आत्मा। और ये इस घनत्व के ऊपर ही निर्भर करती है। जितना जीवात्मा निर्गुण होती चली जायेगी, उतनी ही वह केन्द्र की तरफ आकर्षित होती चली जायेगी क्योंकि केन्द्र भी निर्गुण है। इस निर्गुणता की सान्द्रता निर्भर करती है आपके कार्य पर। प्रकाश प्राप्ति के पश्चात् आपके द्वारा किये गये कार्य पर यही अन्तर है सत्य में और परम सत्य में।

❖❖

आन्तरिक दृष्टि के उपलब्ध होने के पश्चात् प्रश्न गिरते नहीं प्रश्न तो वहीं के वही रहते हैं परन्तु अब वे उत्तरों के साथ आते हैं। प्रश्न के आने के एक दो दिन के भीतर उत्तर भी आ जाते हैं।

अपने पहले प्रश्न पर आप कई जन्मों तक रूक गये थे लेकिन अब प्रश्न आते हैं तो उत्तर भी साथ में चले आते हैं क्योंकि अब उनकी उपयोगिता बढ़ गयी है। अब उनका उपयोग सृष्टि की भावना के अनुरूप उपयोग किया जाने वाला है। अत: उनका प्रकट होना कुछ-कुछ अनिवार्य जैसा है क्योंकि ये सृष्टि के निमित्त कार्य में व्यक्ति की सहायता करता है। इसके पश्चात् जागृत व्यक्ति दूसरों के भी प्रश्न स्वीकार कर सकता है। सृष्टि के साथ अपने तादात्मय का उपयोग करके वह उन प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ सकता है। यह उत्तर बुद्धि से, तर्कों को गिराने के लिए उपयोगी होंगे।

यही है एक गुरू का कार्य कि बुद्धि को संतृप्त करके बुद्धि के पार जाने का रास्ता खोल देना। वो मन का निषेध नहीं करता और न ही प्रश्नों का निषेध करता है। वो प्रश्नों को संतृप्त कर देता है और संतृप्तता के बाद अन्य प्रश्नों के उठने की आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि सुपर सैचुरेशन की स्टेट ऐसी है कि उसमें कुछ और नहीं घोला जा सकता।

एक समय तक ही तर्क मन में उपस्थित होंगे। वो उन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो जाने के बाद विदा हो जाते हैं। तब प्रश्नों के पार जाने का, मन के पार जाने का, बुद्धि के पार जाने का रास्ता खुला जाता है। ये कोई चिंतन नहीं है क्योंकि चिंतन जब कभी भी उदित होगा, वह बुद्धि से ही उदित होगा। यह जो कुछ भी है बुद्धि के पार है। चिंतन सदैव सापेक्ष होता है। किसी के सापेक्ष, किसी विचार धारा के सापेक्ष परन्तु सत्य निरपेक्ष होता है। चिंतन बुद्धि से उत्पन्न होता है और सत्य शून्यता से।

❖❖

सिर्फ ये जान लेने से की वह अमरूद का पेड़ है, इससे उसकी उपयोगिता सिद्ध नहीं होती। उपयोगिता तब सिद्ध होगी जब वह अपने पूरे जीवन काल में, पूरी ऊर्जा से अमरूदों का निर्माण करके उसे समाज को बाँट देगा। ये है उसकी उपयोगिता। सिर्फ ज्ञान होना काफी नहीं, उसकी उपयोगिता ही उसकी सार्थकता सिद्ध करती है। सिर्फ ज्ञान प्राप्ति से क्या होगा? ज्ञान प्राप्ति के पश्चात कार्यों का निष्पादन ही मुख्य कार्य है।

❖❖

सनातन धर्म में किसी व्यक्ति के शरीर छोड़ने के पश्चात् उसकी अन्तिम यात्रा में एक वाक्य प्रयोग किया जाता है। वह है 'राम नाम सत्य है'। राम एक शब्द है। ध्वनि ऊर्जा है और उर्जा कभी नष्ट नहीं होती मात्र ऊर्जा का स्वरूप बदलता है। अर्थात् ऊर्जा सत्य है और सत्य कभी नष्ट नहीं होता इस प्रकार कहने का तात्पर्य उस मृत व्यक्ति से कुछ नहीं है, क्योंकि वो तो प्रयाण कर गया। इसका तात्पर्य उन लोगों से है, जो उस यात्रा में शामिल हैं। ये उन्हें बताने के लिये है कि ये जो व्यक्ति चला गया, भले ही इस बात की खोज न कर पाया हो लेकिन तुम कर लेना। ये भले ही सत्य नहीं ढूँढ़ पाया हो लेकिन तुम ढूँढ़ लेना और अतिंम यात्रा में तुम्हारा जो आगमन हुआ है, कम से कम इसमें कुछ साकारात्मक घर ले जाना और इस पर चिंतन करना।

अब राम ही क्यों? रमेश, दिनेश, सुरेश, महेश क्यों नहीं? राम को पुरूषोत्तम कहा गया है। पुरूषोत्तम अर्थात् पुरूषों में उत्तम। वह व्यक्ति जो अन्य पुरूषों की अपेक्षा सत्य के कहीं ज्यादा नजदीक थे। वह व्यक्ति जिसने जीवन को सत्य स्वरूप में जीया। सत्य के लिये जीया क्योंकि वे यह बात जानते थे कि जीवन का सत्य स्वरूप तत्व क्या है? जीवन में अगर कुछ भी सत्य है तो ढूँढ लिया जाना चाहिये। इसी प्रकार से उन्होंने एक मर्यादित जीवन जीया और सदैव सत्य का साथ देने की कोशिश की। इसीलिये जो व्यक्ति पुरूषोत्तम थे उनके अलावा किसका चयन किया जा सकता था, यह बता देने के लिए क्योंकि कभी रमेश ने मर्यादा पुरूषोत्तम जीवन

नहीं जीया। सुरेश, दिनेश और महेश यदि व्यक्ति के रूप में हैं तो अभी तक उन्होंने अपने नाम की सार्थकता सिद्ध नहीं की। राम ने अपने जीवन को सत्य स्वरूप में जीया। इसी कारण यात्रा में सम्मिलित लोगों को संकेत दिया जाता है कि सत्य को खोज लो वरना बिना सत्य की खोज किये ही कहीं ऐसा न हो कि प्रयाण हो जाए।

❖❖

अगर कैरियर बनाने के लिये आप्शन ढूँढा जा रहा हो तो वही आप्शन सेलेक्ट कीजियेगा, जिस काम को करने में समय का बिल्कुल भान न रहे। जब उस काम को करे तो समय आपको परेशान न करे। हर वो काम जिसको करने में समय की बाधा बीच में नहीं आता, वही सबसे उपयुक्त काम है उस व्यक्ति के लिए।

❖❖

हर वो व्यक्ति जिसने जीवन पूर्ण आनन्द से जिया, काम में इतना डूब के जिया कि जीवन कब बीत गया पता ही नहीं चला। कुछ और करने की आवश्यकता भी महसूस नहीं हुई। उसने उस काम से आनन्द की पूर्ति कर ली। उसे आत्म साक्षात्कार नहीं मिला तो उसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। उसने वही किया जिसके लिए उनका अवतरण हुआ था।

❖❖

जिन्होंने ऋषि तुल्य जीवन जिया। सदैव काम में ही व्यस्त रहे। सदैव तपस्या में ही व्यस्त रहे। उस तपस्या का लाभ भले ही उन्हें न मिलकर पूरे समाज को मिला हो। उन्हें कुछ मिला नहीं मिला, तपस्वी कभी लाभ के लिये कार्य नहीं करता। उनके कार्य का दायरा समान्य व्यक्तियों के दायरे से अलग है क्योंकि उनके कार्यों का लाभ पूरी सृष्टि लेती है। उन व्यक्तियों को विवाह करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। विवाह करने की मुख्य उपादेयता है सृष्टि के चक्र को चलाने में योगदान।

एक सन्तति पैदा हुई तो आपने सृष्टि को चलाने में अपना योगदान दे दिया।

इसे ही कहते हैं पितृ ऋण। पुत्र ने एक सन्तति पैदा की और अपने पिता का ऋण चुका दिया। वास्तव में ये पिता का ऋण नहीं ये सृष्टि का ऋण है। क्या अपने सृष्टि को चलाने में अपना योगदान दिया? परन्तु ये नियम तब तक उचित था जब तक धरती पर इतनी भीड़ नहीं बढ़ी थी। आज जब इतनी भीड़ बढ़ चुकी है तो इस नियम का उल्लंघन किया जा सकता है। अब जब संसाधन ही कम पड़ने लगे हैं। भीड़ ज्यादा बढ़ने लगी तो ये ऋण तो वैसे ही चूक गया। परन्तु ऋषियों को, कर्म योगियों को, वैज्ञानिकों को विवाह करने की आवश्यकता नहीं, यदि वो चाहें तो। क्योंकि वे अपने कार्य से ही सृष्टि का ऋण चुका रहे हैं। बल्कि सामान्य व्यक्तियों से अधिक चुका दिया उन्होंने, सामान्य व्यक्ति अपने लिए कार्य करता है या परिवार के लिये।

❖❖

जब लड़का बिगड़ने लगे तो कहा जाता है कि इसकी शादी करवा दो सुधर जायेगा। इसके पीछे कारण बस इतना है कि इसे बन्धन में बाँधो ताकि सृष्टि को चलाने में कुछ तो योगदान दे सके, अपनी ऊर्जा को यूँ ही व्यर्थ किये जा रहा है परन्तु वे व्यक्ति जो दिन रात सिर्फ काम में ही व्यस्त हैं, जिन्होंने पूरा जीवन परहित में ही काम किया, उनका कार्य श्रेष्ठ है। क्योंकि उनका कार्य एक व्यक्ति या एक परिवार तक सीमित न होकर पूरे समाज के लिये है। पूरी सृष्टि के लिए है। उनका जीवन सामान्य व्यक्तियों के जीवन से कही धार्मिक है। उन्हें मन्दिर जाने की भी आवश्यकता नहीं, मस्जिदों में उनका कोई काम नहीं। मन्दिर और मस्जिद की जरूरत उन्हें है, जो समाज और सृष्टि में अपने योगदान को खोज नहीं पाये। अभी जानना बाकी है प्रक्रिया चल रही है, या फिर योगदान सीमित है, परिवार तक।

❖❖

अर्जित विद्या से धन लाना अनुचित नहीं है। इस प्रकार से अर्जित विद्या का उपयोग जीवन को सुचारू रूप से, सुगमता से निर्वहन करने में किया जा सकता है परन्तु प्राप्त ज्ञान का उपयोग धन प्राप्ति में नहीं किया जा सकता क्योंकि ज्ञान सदैव प्राप्त होता है, विद्या अर्जित की जाती है।

यदि ज्ञान का उदय हुआ, प्रकाश उपस्थित हुआ तो उसका व्यापार नहीं हो सकता। पुष्प, सुगन्ध देने के बदले धन नहीं मांगता, अन्न के पौधे, अन्न देने के पश्चात् धन नहीं मांगते। वृक्ष अपनी शीतलता और फल के बदले धन नहीं मांगते क्योंकि उन्हें पता है कि सुगन्ध, वृक्षों में शीतलता, फल, अन्न किसने प्रदान किया? उन्हें पता है कि यह सिद्धि लेन-देन के लिये प्राप्त नहीं हुई, इसका व्यापार नहीं किया जा सकता है। बुद्ध यदि प्रवचन देने के उपरान्त यदि धन चाहते तो न धन ही प्राप्त होता और जो प्राप्त हुआ ज्ञान है वो भी चला जाता क्योंकि प्रकाश प्राप्त होने के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण, उस स्थिति के लिए स्वयं को योग्य बनाना है। योग्य बनाने के पश्चात् ही प्रकाश अवतरित होग। इसका व्यापार नहीं हो सकता।

❖❖

शरीर पंच तत्वों से निर्मित एक सजीव पुतला है, जिसे आत्मा को केन्द्र बनाकर बनाया गया है। यदि आत्मा उपस्थित न हो तो शरीर का अस्तित्व सम्भव नहीं। जीवात्मा में उपस्थित जीव, शरीर को उसकी विशेषता प्रदान करता है। शरीर की प्राप्ति जीवात्मा द्वारा कुछ विशेष कार्यों के सम्पादन हेतु की जाती है। शरीर आभासी चित्रण से ज्यादा कुछ भी नहीं। आभासी जाल भी भ्रम में डालने हेतु बुना गया है। शरीर में वास्तविकता कुछ भी नहीं, वास्तविक जीव तो अन्दर है। वह जीव जो सरलता से शरीर प्राप्त भी कर सकता है, और उसका त्याग भी कर सकता है। वास्तविकता भीतर है। शरीर वास्तविकता नहीं है। मन के जाल को भेदकर जीवात्मा में अवस्थित जीव तक पहुँचना आवश्यक है क्योंकि तभी वो बता सकेगा कि शरीर की प्राप्ति किस कार्य हेतु की गई। तभी वास्तविक कार्य प्रारम्भ हो पायेगा। जीवात्मा में उपस्थित जीव ही सारे कष्टों, सुख और दुख का कारण है। जीव अपने निमित्त कार्यों को करना चाहता है जिन कारणों से जीव की उपस्थिति है। वह तरंगित होता रहता है और तरंगित होने के कारण शरीर के स्तर पर कष्ट का अनुभव होता है क्योंकि वह स्वयं को पहचान लिये जाने का प्रयास करता है। वह प्रयास करता है कि उसकी होने की सार्थकता सिद्ध की जा सके। यही तो मुख्य कारण है।

❖❖

प्रारम्भिक काल में चेतना अपने वाह्य तल पर स्थित होती है। जिसकी संकल्पना शरीरों के रूप में की गई। वाह्य तल का एक पूरा चक्र घूमने के पश्चात्, उस तल की संतृप्ति के पश्चात्, वह अगले तल की ओर प्रस्थान करती है। अगला तल उससे भीतर ही स्थित है। इस प्रकार यह वाह्य से भीतर की ओर यात्रा है और उस तल पर संतृप्तता आने के पश्चात् फिर वह और भीतर की ओर आती है। अन्त में जब जीव अपने कार्यों का पूर्णतया संपादन कर लेता है, उसकी शरीर लेने की उपयोगिता सार्थक हो जाती है। तब जीव भी आत्मा में ही विलुप्त हो जाता है। इसी घटना को जीवमुक्ति कहते हैं। इसी कारण ज्ञान की प्राप्ति को विशेष दर्जा दिया गया। ज्ञान की प्राप्ति का तात्पर्य यह है कि जीव ने अपनी वास्तविकता समझ ली। जो वाह्य परतों की यात्रा थी अब वह आन्तरिक पथ पर, अपने कार्यों की सिद्धि चाहती है। अब उसका सारा कार्य उनकी सिद्धि के लिये होगा ताकि उनकी संतृप्ति भी हो सके।

❖❖

चेतना के जीव के तल तक (जीव शरीर) पहुँचने के पश्चात् उसे सभी अन्य जीव उसी रूप में दिखायी देते है। अर्थात् अब उसे पता चल जाता है कि सामने उपस्थित शरीर में भी वही जीव है। अब चेतना उस जीव की पहचान कर सकती है। अब उसे वाह्य आवरण और उपद्रव दिखायी नहीं देते क्योंकि अब वो इन्हे पार कर चुकी है। अब वह शरीर को जीव के रूप में देखने में समर्थ हो चुकी है। इसी अवस्था को कृष्ण ने ''समत्व'' की अवस्था कहा।

जब तुम जीव को जीव रूप में देखने को समर्थ हो जाओगे, तब तुम इस तल पर आ जाओगे। तुम अपने केन्द्र से बहुत दूर नहीं रह जाओगे क्योंकि तब तुम उन जीवों की उपादेयता, उनकी उपस्थिति के कारणों को समझने में भी समर्थ हो सकोगे।

उस जीव की उत्पत्ति के निमित्त अर्थात् उसके कारणों के बारे में, उसे समझाने में सफल हो सकते हो क्योंकि वो जीव अपनी बाहरी परतों को संतृप्त करने में लगा है। यह सूचना पहुँचा देना कि खोजना प्रारम्भ करो, अपने अन्दर उपस्थित

जीव का, यह भी एक प्रकाश की किरण की भांति ही होगा उसके लिये क्योंकि अब उसके हाथ में एक किरण है। इसका छोर पकड़कर वो आगे की ओर की यात्रा कर सकता है ।

❖❖

जीव तल तक पहुँचने के पश्चात वाह्य तलों में अब कोई विशेष रस नहीं रह जाता है। वाह्य तल के उपद्रव, उपद्रव ही रह जाते हैं। वाह्य तल की गतिविधियों में अब कोई विशेष इच्छा नहीं रह जाती। उन तलों की यात्रा अब जीव ने कर ली है। यदि किसी कारणवश जीव को कुछ समय के लिए वाह्य तल पर जाना भी पड़े तो वह अपनी उपस्थिति जानते हुये कि वास्तविक उपस्थिति कहाँ पर है, उस तल पर रूकता नहीं वापस आत्मा की तरफ गति कर जाता है। वास्तव में वाह्य तल उसे रूचि प्रदान नहीं कर पाता । कुछ असामान्य तरंगे भी धीरे-धीरे शान्त हो जाती हैं क्योंकि अब कार्य क्षेत्र सीमित हो चुका है। यही है केन्द्र की ओर यात्रा।

जीव तल पर आने के पश्चात्, जब तक अपने कार्यों को पूर्ण नहीं कर लिया जाता, तब तक जीव की संतृप्ति सम्भव नहीं। अपने कार्यों को पूर्णता प्रदान करना ही जीव के परम सत्य में विलीन होने की उस परम घटना, उस परम आनन्दमयी घटना, हेतु आवश्यक है। जब वो वाह्य तल के सभी उपद्रवों को त्यागकर परम शान्ति, परम आनन्द की तरफ गमन कर जाता है। अत: उन कार्यों की पूर्णतया संतृप्ति, उनका निष्पादन आवश्यक है। अपने कार्यों को जान लेना ही ज्ञान की प्राप्ति है। जीव की उपस्थिति के कारण को ढूँढ लेना ही ज्ञान की प्राप्ति है और कदाचित् इस स्तर पर अपने कार्यों की पूर्णता हेतु आन्तरिक दृष्टि भी प्रदान कर दी जाती है।

❖❖

ध्यान के प्रारम्भिक चरणों में नेत्रों का प्रयोग किसी विशेष स्थल पर एकाग्रता हेतु किया जाता है परन्तु जैसे-जैसे यात्रा आगे की तरफ बढ़ती है, वाह्य नेत्रों के कार्य क्षेत्र में कमी आने लगती है। धीरे-धीरे एकाग्रता स्वयं उन स्थलों पर जाकर एकत्र होने लगती है। वाह्य नेत्रों की आवश्यकता नहीं उस बिन्दु पर एकाग्रता प्राप्त हेतु। आन्तरिक दृष्टि के उपलब्ध होने के पश्चात् वाह्य नेत्रों की उपयोगिता समाप्त हो

जाती है। फिर ध्यान में उतरने हेतु आन्तरिक नेत्र ही क्रिया को सम्पन्न करते हैं। वाह्य नेत्र सिर्फ ध्यान के वाह्य तल तक ही सीमित रह जाते हैं।

❖❖

जीव शरीर तक पहुँचने के पश्चात् ध्यान, प्रयासरहित हो जाता है। प्रारम्भ में जब तक मन की गतिविधियाँ चलती रहती हैं, तब तक ध्यान में उतरना, कभी-कभी एकाग्रता तो कभी-कभी प्रयास के माध्यम से किया जाता है। इसीलिए विभिन्न चक्रों के ध्यान की विधि बताई गयी ताकि इस प्रक्रिया को गति प्रदान की जा सके और एक बार वाह्य तल की तरंगों के होने पर आन्तरिक दृष्टि के अवतरित होने के पश्चात्, आँखे बंद करने पर निर्गुणता का सम्राज्य सामने उपस्थित होता है। इस अवस्था में जीव अपने सामान्य कार्यों को संपादित करता रहता है परन्तु उनमें कोई विशेष रस नहीं रह जाता क्योंकि उसे अपना विशेष कार्य सम्पादित करना होता है। जीव वाह्य तल के अपने कार्यों को पूर्वत: करता हुआ, विशेषत: अपने आन्तरिक तल पर स्थित रहते वास्तविक कर्मों को करता रहता है। इसी को कृष्ण ने 'स्थित प्रज्ञता' कहा है।

❖❖

हमारे समाज में माता को या फिर दादा-दादी को काफी उच्च स्थान दिया जाता है। इन तीनों में एक बात समान है। इन तीनों को ही पता है कि प्रेम अकारण होता है। प्रेम का कोई कारण नहीं, उसमें कोई स्वार्थ नहीं, कोई व्यापार नहीं। उनका प्रेम जब बच्चों को प्राप्त होता है तो उसका कोई कारण नहीं होता। वहाँ पर प्रेम दोनों हाथों से उलीच-उलीच कर बिखेरा जाता है। उस बालक को नहला दिया जाता है, सराबोर कर दिया जाता है। वह शुद्ध स्वरूप है प्रेम का जिसमें कुछ पाने की इच्छा नहीं, इसी कारण हमारे समाज में माता को इतना उच्च स्थान प्रदान किया गया है। माता को इस बात का पयार्यवाची मान लिया गया कि मनुष्य जाति में इसे ही पता है कि प्रेम क्या होता है और यही बात उसे अन्य लोगों से अलग करती है। यही स्थिति उन्हें एक ऊँचा पद प्रदान करती है।

जो कुछ भी घटता है वह अवश्य किसी मन्तव्य के साथ घटता है। विशेषत:

उन लोगों के जीवनकाल में जो प्रेम और भक्ति से जुड़े है या समर्पण की अवस्था तक पहुँच चुके है। आस-पास घटने वाली बातों का मतलब कभी-कभी तुरन्त समझ में आ सकता है, तो कभी उसके मन्तव्य समझने में कुछ साल लग सकते है, लेकिन एक समय पर उनका मन्तव्य सामने उपस्थित हो जाता है।

कहीं ना कहीं से किसी ना किसी रूप में यदि आप आन्तरिक यात्रा के इच्छुक हैं या आन्तरिक यात्रा के बारे में सोचा भी नहीं, भक्ति और प्रेम तक भी पहुँचे हैं तो कृष्ण आपको आन्तरिक यात्रा की ओर अग्रसर कर देते हैं। आप भले ही उस बारे में कुछ जानते हो या न जानते हो, अपनी आसपास की घटने वाली घटनाओं को कृष्ण की इच्छा समझिए। वह अवश्य ही एक दिशा में लेकर जाने को घट रही, है कुछ ना कुछ विशेष है।

❖❖

एक बार पूर्णभाव से समर्पण के पश्चात् प्रारम्भिक काल में यह प्रतीत हो सकता है, कि कहीं बहता-बहता मैं किनारे की ओर न चला जाऊँ और किनारे पर चट्टान से टकराकर कहीं बाहर छलक न जाऊँ। परन्तु यह उसकी अज्ञानता ही है क्योंकि पूर्ण समर्पण के पश्चात् उसका अस्तित्व समाप्त हो चुका है। अब वह नदी का ही एक भाग है परन्तु अज्ञानता उसे सोचने के लिए विवश करती है, धीरे-धीरे यह भ्रम विलुप्त हो जायेगा पूर्ण समर्पण में, पूर्ण आनंद में।

❖❖

ज्ञान के तल पर स्पष्टीकरण उपलब्ध है। विद्यायें या वो विद्या जो आपने सीखी, उसका स्पष्टीकरण तथा सृष्टि के रहस्यों का स्पष्टीकरण उपलब्ध है। इसी अवस्था को कृष्ण ने तत्व से जानना कहा है।

वह प्रश्न जो दिमाग में आज उठा, वो अध्याय जो आज पढ़ा गया, उसका स्पष्टीकरण ज्ञान के तल पर पाया जा सकता है। इसका उदाहरण है बेंजिन की संरचना। अगर मैं गलत न हूँ, तो हक्सले को निद्रा में पता चला। उन्होंने एक साँप को अपनी, पूँछ अपने मुँह में दबाये हुए देखा। इससे उन्हें बैंजीन संरचना की प्राप्ति

हुई जो विचार उनके मस्तिष्क में दिन भर चलते रहे। उनका स्पष्टीकरण उन्हें प्रकाश के तल पर मिल गया, यह कुछ इसी प्रकार से कार्य करता है।

❖❖

संस्कारों का पूरा प्रयोजन उचित पथ की ओर मोड़ना होता है और धर्म का पूरा प्रयोजन आपको उचित विचारों की ओर मोड़ता है क्योंकि वह जानता है कि यह पूरा जीवन विचारों की ही अभिव्यक्ति है और हर विचार अपने साथ कुछ गुण और कुछ अवगुण लाता है। कुछ सत्य और कुछ असत्य, कुछ खुशी-कुछ दु:ख। इन विचारों के जंजालों और उनके उपद्रव से पार पाने के लिए धर्म ने सर्वप्रथम विचारों पर काम करना शुरू किया। पहले विचारों को शुद्ध करना होगा, विचारों को एक उचित तल पर लाना होगा। बुरे विचारों से दूर और अच्छे विचारों की ओर गमन करना होगा। रज और तम गुणों से पार जाकर सत्व गुणों की तरफ आना होगा। धर्म का सारा कार्य विचारों के तल पे है। विचारों में परिवर्तन के तल पर है। सद्विचारों की उत्पत्ति के लिए है।

इस नश्वर शरीर के सारे कर्म, विचारों के आवागमन के ही कारण हैं परन्तु विचारों के साथ ज्ञान के तल पर नहीं जाया जा सकता। विचारों के साथ आन्तरिक दृष्टि नहीं प्राप्त की जा सकती। विचारों के साथ प्रकाश प्राप्त नहीं किया जा सकता। उसे प्राप्त करने के लिए विचारों को शान्त करना पड़ेगा परन्तु शान्त करने से पहले विचारों को सत्व करना पड़ेगा, क्योंकि दुर्विचार आसानी से शान्त नहीं हो सकते। उन्हें शान्त करने से पहले उनकी प्रकृति में परिवर्तन करना होगा। उन्हें लचीलेपन के फायदे समझाने होंगे। धर्म आपको प्रकाश के द्वार पर अर्थात् आध्यात्म के द्वार तक ले जाता है। आध्यात्म के सुपुर्द कर देता है क्योंकि आध्यात्म के तल पर या आत्मा के तल पर, न कोई विचार न कोई चहल-पहल, सिर्फ निर्गुणता।

धर्म आपका वाह्य मार्ग है और आध्यात्म आन्तरिक मार्ग। इस मार्ग का प्रथम चरण वाह्य अर्थात् धर्म परन्तु अगला चरण आध्यात्म है। अत: हर एक धार्मिक व्यक्ति को आध्यात्म में छलाँग लागानी ही होगी। अपनी यात्रा को आगे बढ़ाना ही होगा और प्रकाश के तल पर आपको उन सभी उपद्रओं का स्पष्टीकरण प्राप्त हो जायेगा, जिनके कारण आपने कष्ट झेले हैं। जिन्होंने आपको सालों-साल, कई जीवन तक परेशान किया है। इसी कारण सनातन धर्म को कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड में

बाँटा गया। कर्मकाण्ड वाला भाग वाह्य यात्रा हेतु और ज्ञानकाण्ड जब प्रारम्भ होता है तो कर्मकाण्डों की आवश्यकता समाप्त हो जाती है और ज्ञानकाण्ड के साथ ज्ञान का मार्ग सुलभ हो जाता है। अब कर्म काण्डों की आवश्यकता नहीं। अत: कर्मकाण्ड वाह्य यात्रा के लिए और ज्ञानकाण्ड आन्तरिक यात्रा के लिए। कर्मकाण्ड धर्म और ज्ञानकाण्ड आध्यात्म है। प्राचीन ऋषियों ने बहुत स्पष्टता के साथ इसके विभेद का स्पष्टीकरण कर दिया था।

विचारों की परिणति शरीर के कर्मों में होती है। जिस प्रकार के विचार उस प्रकार के कर्म। परन्तु विचारों की गतिविधि को रोक कर उन विचारों को मूर्त रूप न देकर उनके कर्मों के बन्धनों से बचा जा सकता है। फिर इस शरीर से जो भी कार्य होंगे, वो प्रकृति की एकात्मकता के साथ होंगे। ये उसी प्रकार से होंगे, जिस प्रकार से प्रकृति कार्य करती है। इसमें विचारों की गतिविधियों का स्थान नहीं होगा। आम मनुष्य सिर्फ अपने विचारों के पीछे ही भागते रहते हैं और विचार हैं कि थमने का नाम नहीं लेते। जब इस शरीर के सारे कर्म प्रकृति के कर्मों के साथ एकात्मक हो जायेंगे या इनका स्तर उसी स्तर पर आ जायेगा, जिस स्तर पर प्रकृति है तो प्रकृति से एकात्मकता की सम्भावनाएं बढ़ जायेंगी।

रूपांतरण तब प्रारम्भ होता है जब इस शरीर से वे कार्य होने लगते हैं जो विचारों की परिणति नहीं है। वे कार्य जो समान्यजनों की दृष्टि में विशिष्ट हैं परन्तु प्रकृति के लिए समान्य है। यह रूपांतरण की प्रक्रिया है। धीरे-धीरे इस शरीर से ज्यादा वे ही कार्य होने लगेंगे। जब इनकी मात्रा बढ़ने लगें, विचारों की परिणति स्वरूप किये जाने वाले कार्य कम होने लगें तो आपमें प्रकृति का तत्व बढ़ता जाता है और एक समय आने पर जब विचारों की गतिविधि और उनके फलस्वरूप किये जाने वाले कार्य तथा कर्म पूरी तरह थम जाते हैं। तब आप पूरी तरह प्रकृति के साथ एकात्म हो जाते हैं और उस अवस्था में यह मन भी दिव्य हो जाता है, समान्यजनों के लिए पूजनीय लेकिन प्रकृति के लिए इसमें कुछ भी विशेष नहीं, यही वह करती आ रही, सृष्टि के प्रारम्भ से ही।

विचारों के आवागमन के फलस्वरूप शरीर के द्वारा किये जाने वाले कार्यों को 'कर्म' कहते हैं। जब चेतना आन्तरिक तल, प्रकाश तल तक पहुँचती है तो कर्मों की गति धीरे-धीरे मंद होने लगती है। अब शरीर द्वारा किये जाने वाले कार्य विचारों की परिणति कम होते हैं। सामान्यजनों द्वारा इसे 'त्याग' कहा जाता है परन्तु प्रकृति के लिए यह कोई विशेष घटना नहीं है, यह सामान्य घटना है। आपके चारो और फैली प्रकृति, सिर्फ यही कार्य करती है।

आन्तरिक तल पर विचार नहीं, विचार सिर्फ वाह्य तल पर स्थित है। विचार असत्य है अत: सत्य के साम्राज्य ने उनका प्रवेश सम्भव नहीं। विचार या तो सात्विक हो सकते हैं या असात्विक परन्तु सत्य सदैव निर्गुण है। अत: विचारों का सत्य से कुछ भी लेना देना नहीं, विचार सदैव बाहरी तल पर आते हैं। सत्य केवल भीतरी तल पर स्थित है। जब कभी विचार आये तो उन्हें सिर्फ देखने की जरूरत है। वे एक तरफ से आकर दूसरी तरफ से बाहर निकल जायेंगे।

❖❖

जब वैचारिक तल की गतिविधियाँ शान्त हो जाये। शरीर मात्र विचारों की परिणति ना रह जाये, विचारों का आवागमन थम जाये। चेतना आन्तरिक तल पर जाकर केन्द्रित हो जाये। प्रकृति के साथ चेतना साम्य में हो जाये। उस अवस्था में किसी उचित समय पर आत्म-साक्षात्कार घट सकता है। आत्म-साक्षात्कार अर्थात् 'स्वयं को देख लेना, स्वयं को पहचान लेना'। 'स्वयं' का तात्पर्य ही यह है कि स्वयं को शुद्ध चेतना स्वरूप जान लेना। परम् साक्षात्कार के साथ ही 'मैं' स्वयं विलीन हो जाएगा। जो लगता है कि मैं शरीर हूँ, आत्म-साक्षात्कार में अपने वास्तविक रूप के दर्शन हो जायेंगे।

❖❖

ईश्वर निर्गुण क्यों है? क्योंकि वो निरपेक्ष है। निरपेक्षता के लिए, निर्गुणता आवश्यक है। सामान्यत: सत्व, सत्व को ही चुनेगा, तम का तिरस्कार करेगा। परन्तु सृष्टि को सुचारू रूप से चलाने के लिए निरपेक्षता अतिआवश्यक है। यह वह प्रथम भाव है, जिसकी आवश्यकता पड़ती है और निर्गुण ही ईश्वर हो सकता है क्योंकि

निर्गुणता ही समत्व का भाव लाती है। न पक्ष में, न विपक्ष में, न राग में, न वैराग में, जिसे वीतराग कहा गया और जहाँ वीतराग होगा वहाँ आनन्द ही हो सकता है क्योंकि सापेक्षता सदैव सुख या दु:ख ही लेकर आयेगी। एक पक्ष सुख, दूसरा पक्ष दु:ख होगा। परन्तु वीतरागता में सुख या दु:ख की आवश्यकता नहीं, कोई कार्य नहीं।

❖❖

आइये जीवन को सिर्फ तीन तलों में बाँट कर देखें। पहला तल सबसे बाहरी तल विचारों का तल है सभी प्रकार के विचारों का आवागमन होता है और विचारों की परिणति कर्म के रूप में होती है। उसके भीतर का तल है प्रकाश का तल। जब विचारों की धुंध कमजोर पड़ जाती है उसकी सान्द्रता घट जाती है। विचारों की शून्यता प्रकाश के आने के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। तब प्रकाश का उदय होता है। इस स्तर पर विचार नहीं है परन्तु व्यक्ति इसमे अभी पूर्णतया प्रविष्ट नहीं कर पाया। प्रारम्भ मे वह उस अवस्था में होता है जब थोड़ा प्रकाश, थोड़े विचार।

योग के पश्चात् वह प्रकाश में और विलीन होता जाता है और उसी के साथ विलीन हो जाते हैं विचार भी वह मध्यतल है। मध्यतल में व्यक्ति सिर्फ विचारों की अभिव्यक्ति न होकर प्रकाश की परिणति हो जाता है। समान्यजनों की भाषा में वह दिव्य हो जाता है। पूजनीय हो जाता है परन्तु सृष्टि की परिभाषा में वह सामान्य हो जाता है। सृष्टि के साथ एकात्म होने को स्वंय को तैयार करता है और सबसे भीतर केन्द्र है आत्मा का। आत्मा जो परमात्मा का अंश है इस जीव शरीर में वह पूर्णतया निर्गुण व निराकार है, आंतरिक तल तक प्रकाश से होकर मार्ग जाता है।

❖❖

दिनभर मन में सोच-विचार चलता ही रहता है। यदि ऐसा हो जाता तो कितना अच्छा होता। यह भी प्राप्त हो जाता तो सुख मिल जाता, ये चीज हो जाती तो जिम्मेदारियों से छूट जाता। एक मकान बन जाता, कुछ पैसे इकट्ठे हो जाते, पढ़ाई बच्चों की पूरी हो जाती, ये समस्या जो उपस्थित हो गई, कुछ इस तरह से सुलझ जाती। दिन भर कारण या अकारण, आवश्यक या अनावश्यक, सार्थक या निरर्थक,

सुन्दर और कुत्सित, शुभ व अशुभ सभी प्रकार के विचार मन में चलते रहते हैं। ये खेल की भांति हो जाता है कि विचारों के बीच अपनी नाव खेते हुए कैसे आगे बढ़ें? बचपन से लेकर आज तक जबसे होश सम्भाला, सोचने की प्रक्रिया है जो अनवरत चलती रहती है। रात में सोने पर ही छुट्टी मिलती है।

यदि विचार ऐसे ही आने जाने हैं तो क्यों नहीं किसी को सोचने के लिए अधिकृत कर देते? किसी को ये काम दे क्यों नहीं देते, कि मेरी जगह आप सोचो क्योंकि आप आपका विचार, आपकी सोच और आपकी दृष्टि कहीं विस्तृत है। यह कार्य ईश्वर को क्यों नहीं सौंप देते? उन्होंने सृष्टि का निर्माण किया, वह इस सृष्टि के बारे में भीतर से बाहर तक सब कुछ जानते है। आपको क्या प्राप्त होना है, आपके लिए क्या उचित होगा? ये वो आपसे अच्छे से समझते हैं। हमारी सोच बहुत छोटी है। उसका दायरा छोटा है विस्तृत बिलकुल भी नहीं है। जहाँ तक दृष्टि गई वहाँ तक ही ये सोच गई। कभी-कभी दृष्टि के पार जाकर सोच लिया। पाने पर सुख के सागर में डूब गये। परन्तु हमारी दृष्टि दुनिया के नक्शे पर एक बिन्दु बराबर है। वह जिसने पूरी सृष्टि का निर्माण किया न सिर्फ इस ग्रह का। उसे ही यह सोचने का काम क्यों नहीं दे देते। आप सिर्फ आनन्द लीजिए। यकीन मानिये वो आपसे कहीं बेहतर सोच सकते हैं, आपके लिए।

सूर्य हमारे केन्द्र पर है, कठिनाई बस इतनी है कि हम विचारों के घने बादलों के इस पार स्थित हैं। इन बादलों को पोषण भी हमने ही दिया। जितना इसमें रस लेंगे उतने ही यह घने होते जायेंगे और सूर्य की किरणें उतनी ही कम मात्रा में हम तक पहुँच पायेंगी। जैसे-जैसे इन विचारों में रस लेना कम होता चला जायेगा, वैसे-वैसे ये कोहरा घने से विरल होता चला जायेगा। तब प्रकाश दिखना प्रारम्भ हो जायेगा, जब ये विचारों के बादल पूर्णतया अनुपस्थित हो जायेंगे, उस अवस्था में आप स्वयं प्रकाश स्वरूप हो जायेंगे। आप अपने अन्दर छुपे उस प्रकाश के स्रोत से एकात्मक हो जायेंगे। आप उसे ढूँढ़ लेंगे।

विचारों में रस लेना ही उनका पोषण करना है, प्रकाश से उनको दूर रखना है। विचारों के घने बादलों के घनत्व को और बढ़ाते जाना है। जैसे-जैसे इसमें रस लेना कम हो जायेगा, ये बादल स्वयं ही विरल होते जायेंगे। फिर इनकी उपस्थिति

के लिए कोई कारण न बचेगा क्योंकि इनमें रस लेने वाला मन न होगा। सामान्य बने रहने के लिए इन विचारों में रस लेना आवश्यक है। जितना इन विचारों को भोजन दिया, उतने ही आप सामान्य से समान्तर बनते चले जायेंगे और जैसे ही ये विचार विरल होने शुरू हुए आपका जीवन दिव्य हो उठेगा। फिर आप सामान्य से विशिष्ट होने की तरफ बढ़ जायेंगे। सामान्यों और विशिष्ट में, बुद्धि और बुद्धि से पार जाने में सिर्फ एक यही अन्तर है, विचारों के तल से पार छलांग की अभीप्सा की उपस्थिति।

जो व्यक्ति बुद्धि, विचारों व मस्तिष्क के तल से पार चला जाता है, वो प्रकाश के साम्राज्य की ओर बढ़ जाता है। जहाँ प्रकाश है और गुणों का सर्वथा अभाव है। ऐसा व्यक्ति सदैव स्थिर रह सकता है। यदि कोई मस्तिष्क के द्वारा अवस्था का आकलन करने की कोशिश करेगा तो उसे पागल कहेगा, फक्कड़ कहेगा या मस्त कहेगा। वास्तव में उनकी समस्या ये है कि वह मस्तिष्क के पार की अवस्था की मस्तिष्क द्वारा विवेचना कर रहे हैं, चूक जाना स्वाभाविक ही है।

❖❖

बुद्ध ने पहाड़ों पर समाधि में प्रवेश नहीं लिया। महावीर ने पर्वतों पर जाकर शरीर नहीं त्यागा। बुद्ध पुरुषों ने अपने अनुयायियों के बीच रहते हुए शरीर त्यागना बेहतर समझा। श्री राम ने अयोध्या में ही जल समाधि ली परन्तु कई गृहस्थ हजारों सालों से वन गमन करके अपना शरीर त्यागते रहे हैं। क्या अन्तर है इन दोनों अवस्थाओं में? यह सभी गृहस्थ मोक्ष में प्रवेश करते हैं। सनातन धर्म के चार पुरुषार्थों में अन्ततः यही पुरुषार्थ है जो यह कहता है कि धर्म-अर्थ और काम के मार्ग से गुजरते हुए अन्ततः मोक्ष प्राप्ति का प्रयास करो परन्तु बुद्ध ने मोक्ष नहीं निर्वाण प्राप्त किया। उन्होंने निर्वाण में प्रवेश किया। मोक्ष अर्थात् मुक्ति, सुख और दुःख से, शरीर के बन्धन से, पदार्थ से दूरी, भावनाओं से दूरी बन गई, भाव में स्थिति सिद्ध हुई। इस प्रकार आनन्द में स्थित होते हुए शरीर का त्याग करना अन्ततः मोक्ष में प्रवेश करना है। परन्तु निर्वाण अर्थात् न शरीर न ही जीवात्मा अर्थात् शेष बचता है तो मात्र प्रकाश, शून्य।

❖❖

संन्यास अर्थात् संतृप्ति करने का प्रयास। संतृप्ति में स्थित तथा स्थिर रहने का प्रयास। सनातन धर्म के वर्णित चारों आश्रमों में से यह अन्तिम आश्रम है। जहाँ मनुष्य अपनी जिज्ञासाओं को शान्त कर, उन पर विजय प्राप्त कर, संतृप्ति पाने का प्रयास करते हैं। संन्यासी और संत में अन्तर मात्र इतना है कि संन्यासी अभी संतृप्ति पाने का प्रयास कर रहा है व संत ने संतृप्ति प्राप्त कर ली है, वह संतृप्त हो चुका है संतृप्त जिज्ञासाओं से। वे व्यक्ति जो गृहस्थ है, उन्होंने अपनी इच्छाओं को शान्त तो कर लिया परन्तु गृहस्थ आश्रम में उनकी उपस्थिति अपने जीवनसाथी की इच्छाओं व आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बनी हुई है। वे अपनी जिज्ञासाओं हेतु नहीं, अपने साथी की जिज्ञासाओं हेतु बरत रहे हैं। अपने शरीर से सम्बन्ध मात्र आवश्यकताओं हेतु ही सीमित है। शारीरिक आवश्कताओं की पूर्ति करते हुए वे संतृप्ति हेतु जीवनयापन करते हैं। कामुकता उनके शरीर की आवश्यकता नहीं, काम की इच्छा पहले ही समाप्त हो चुकी है। इस स्थिति में भी, उनका काम में बरतना अपने साथी की आवश्यकता पूर्ति हेतु है।

जिस प्रकार दूध में पानी मिला देने से दूधा पानी हो जाता है। वैसे ही जीवन में माया के मिल जाने से जीवन माया की ही अभिव्यक्ति बन कर रह जाता है। यदि पानी में चीनी मिलाई जाए एक स्तर तक संतृप्ति प्राप्त होने के पश्चात् चीनी घुलनी बन्द हो जाती है परन्तु इसके बाद भी चीनी घोलनी हो तो पानी का तापमान और पर दबाव बढ़ाकर और मात्रा घोली जा सकती है। लगातार ताप व दाब को बढ़ते रहने पर अन्ततः पानी सीरे का रूप ले लेता है। वह जल के गुणधर्म को त्याग कर चीनी का एक गाढ़ा घोल बनकर रह जाता है। जीवन भी उसी प्रकार है। अपनी इच्छाओं की एक स्तर तक संतृप्ति प्राप्त करने के पश्चात् अब और दबाव व तापमान बढ़ान उचित नहीं। जीवन कई चरणों पर स्थित है। एक स्तर तक संतृप्ति प्राप्त होने के पश्चात् अगले स्तर पर बढ़ जाना ही उचित है।

❖❖

ग्लास में स्थित पानी में चीनी घोलने पर, संतृप्ति प्राप्त करने के पश्चात् पानी क्या करता है? वो और चीनी घोलने से मना कर देता है। अब वह और चीनी को स्वीकार नहीं करता है। चीनी के वे कण जो घुल न पाएँ, नीचे ग्लास की तली में

एकत्र हो जाया करते हैं। अब जल में उनकी उपस्थिति आवश्यक नहीं है। अब जल ने उन्हें अस्वीकार कर दिया। अब जल ने यह घोषणा कर दी कि वह संतृप्त हो चुका है, अब और नहीं। अब वही चीनी किसी और जल में घोले जाने हेतु स्वतंत्र व उपलब्ध है। अब उसी चीनी का उपयोग कर, किसी और जल को शर्बत के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। प्रकृति भी यही करती है, भूमि से अपनी आवश्यकताओं जितना ही पोषक तत्व प्राप्त कर, स्वयं द्वारा उत्पन्न सभी वस्तुओं व फलों का त्याग कर देती है ताकि वह किसी और की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। वह किसी और को संतृप्त कर सके। न्यूनतम स्तर तक संतृप्ति उसे प्राप्त हो चुकी है, अब और संचय करने की इच्छा नहीं। संचय करने की प्रवृत्ति ही असंतृप्ति की परिचायक है।

❖❖

जीवन के प्रारंभिक वर्ष उस पहचान के आधार पर बीते जो परिवार और समाज ने दिए। जो धर्म, जाति, गोत्र, कबीला, नाम प्रदान किया गया उसे ही अपना मान कर जीता रहा, उसे ही पहचान बना ली। उसी को बढ़ाने में, उसी को बचाने में अपनी सारी ऊर्जा होम कर दी। जो-जो समाज ने बताया, वैसा-वैसा ही किया। जिस प्रकार किसी कारखाने में बनने वाले समान को मैन्यूफैक्चरिंग डेट, बैच नम्बर दे दिया जाता है, वैसे ही हर बच्चे को धर्म व जाति के रूप में उसका बैच नम्बर प्रदान कर दिया जाता है और बाकी का जीवन उसी के आधार पर ही पहचाना जाएगा। यह पहचान उसने स्वयं न ली, उसे दे दी गई।

बाकी का भविष्य स्वयं को खोजने में, वास्तविक पहचान को जानने में, स्वयं की उपस्थिति का कारण समझने में, व स्वयं को पाने के पश्चात् उसके आधार पर जीवन जीने में बीते तो उचित। वह पहचान जो किसी ने प्रदान की हो, वह नाम जो दिया गया हो। वे संस्कार जिनके साँचे में ढाला गया हो, अब उसके आगे जाने का समय है। स्वयं को खोजना व स्वयं को जानना। बताई गई पहचान के आधार पर जीवन जीने से कहीं ज्यादा आवश्यक है, स्वयं की पहचान ढूँढना और बाकी का जीवन उसी के आधार पर व्यतीत हो तो ज्यादा उचित होगा।

❖❖

हमें दूसरों से प्रश्न पूछना पसंद है कि उन्होंने क्या कहा? क्यों कहा और कैसे कहा? परन्तु हम कभी भी स्वयं से प्रश्न नहीं पूछते। वह प्रश्न जो स्वयं से पूछने योग्य है वह है कि मैं कौन हूँ? और क्यों हूँ? स्वयं का तात्पर्य आत्मा से है। यह प्रश्न सीधे अपनी आत्मा से पूछा जा सकता है क्योंकि वही एक है जो इसका उत्तर जानती है और आपका इसका उत्तर समझा भी सकती है। वही एक है जो आपके साथ अनन्त काल से यात्रा कर रही है। उसे इस सम्बन्ध में सब कुछ पता है। आपके द्वारा पूछा गया यह प्रश्न आत्मा को इस तथ्य से परिचित कराएगा कि आप उसके अस्तित्व को स्वीकारते हैं। आप उसे भूले नहीं हैं यदि कुछ समय के लिए भूल गए थे तो अब वह याद पुन: लौट आई है। वह अर्थात् अब तक आप मन को ही स्वीकार्यता देते थे। अब तक आप उसके कहे पर ही चलते थे। मन के अस्तित्व के अलावा किसी और का ध्यान न था। परन्तु जब आप यह प्रश्न स्वयं से करते हैं तो आप अपनी आत्मा को महत्व देते हैं। अब अपनी आत्मा को यह बात बताना है कि मुझे पता है कि तुम मेरे भीतर ही हो और अब आगे का मार्गदर्शन तुमसे ही प्राप्त करना है। परन्तु मैं एक मार्ग का चयन कर उस पर चलना प्रारम्भ करूँ इससे पहले मुझे यह बताइये कि मैं कौन हूँ और मैं क्यों हूँ? मैं क्यों इस शरीर में हूँ? मेरे शरीर लेने का कारण क्या है? वह कौन सा ऐसा काम है जिसे करने के लिए इस जगत् में आया हूँ? वह कौन सा कार्य है, जिसके द्वारा मेरी कार्यसिद्धि होनी है? वह कौन सा काम है, जिसको करके मैं जीवन को सार्थकता प्रदान करूँगा? इस एक प्रश्न का उत्तर या तो उस परमात्मा के पास है या फिर आपकी आत्मा के पास। आप दोनों ही हैं जो मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं क्योंकि आप तब से उपस्थित हैं जब इस सृष्टि का निर्माण ही नहीं हुआ था। आपने यह पूरी यात्रा होते हुए देखा है इसलिए कृपा करके इस प्रश्न का उत्तर दीजिए कि मैं कौन हूँ और क्यों हूँ?

यह वही प्रश्न है जो विवेकानन्द ने स्वयं से पूछा, कन्याकुमारी में उस पत्थर पर बैठकर। समुद्र के किनारे जिसे आज विवेकानन्द रॉक के नाम से जाना जाता है और इसी प्रश्न के उत्तर ने उस सामान्य से शिलाखण्ड को विवेकानन्द रॉक बना दिया और नरेन्द्र को विवेकानन्द। इस उत्तर को प्राप्त करते ही उन्हें अपने जीवन का मार्ग प्राप्त हो चुका था, अब उन्हें ज्ञात हो चुका था कि किस रास्ते पर आगे

बढ़ना है। वो कौन से कार्य हैं जो उनके द्वारा सम्पादित किए जाने हैं। वे कौन से कार्य हैं, जिन्हें पूर्ण करके जीवन सार्थकता प्राप्त करेगा। इस प्रश्न के उत्तर को प्राप्त करने के महत्व का, अन्दाजा इस बात से लगाइए कि एक इस उत्तर ने दुनिया को विवेकानन्द दे दिया। इस एक उत्तर ने ही भविष्य में आने वाली पीढ़ियों को बल प्रदान किया। साथ ही एक मार्ग भी प्रदान कर दिया। इस एक उत्तर ने सिद्धार्थ को बुद्ध बना दिया। इस एक उत्तर ने दुनिया के २८ देशों को उनका धर्म प्रदान किया और इसी एक उत्तर ने हमें बुद्ध प्रदान किया। यदि उन्हें यह उत्तर नहीं मिला होता तो कदाचित् वह अपने राज्य वापस लौट जाते और एक राजा की भाँति जीवन बिताकर, आज काल खण्ड में कहीं भुला दिए जाते। आज न कोई शुद्धोधन को जानने वाला होता, न महामाया को और न ही सिद्धार्थ को। न ही कपिलवस्तु होता, न सारनाथ, न ही कुशीनगर और न ही बोधगया। यदि बुद्ध इस प्रश्न का उत्तर न पा पाते यदि वे असफल हो जाते तो भविष्य में आने वाले कितने ही साधक भ्रमित ही रह जाते। बुद्ध के उस उत्तर प्राप्ति ने सिर्फ बुद्ध को ही नहीं, आज से ढाई हजार साल पश्चात् हम सभी लोगों को बल प्रदान किया।

एक राजा ने अपने जीवनकाल में कैसा जीवन जिया? उसने क्या-क्या किया? उसके मरने के बाद कौन जानता है और कौन जानना चाहता है? वह अतीत में आया और अतीत में ही विलुप्त हो गया। अतीत इस प्रकार से निशान मिटाता है कि खोजने का कोई उपाय ही न बचे और खोजा भी क्यों जाए? यदि आपने वही किया जो दूसरों ने आपको बताया तो उसमें ऐसी क्या विशेषता थी? बुद्ध, विवेकानन्द, ओशो और न जाने कितने आत्म ज्ञानियों ने अपने प्रश्नों को भी खोजा और उनके उत्तरों को भी।

❖❖

दूध को जलाने से वह और गाढ़ा होता चला जाता है, उसमें उपस्थित पानी भाप बनकर उड़ता जाता है और अंतत: दूध का सत्व खोये के रूप में प्राप्त होता है। दूध को जब तक तपाया न जाए वह खोये में परिवर्तित नहीं होता। तपाकर ही उसके गुणों को निखारा जा सकता है। इस प्रकार स्वयं के भीतर, स्वयं को ढूँढने के लिए स्वयं को तपाना होगा। स्वयं को तपाने से आपके उत्तर प्राप्त होते जाएंगे।

स्वयं में उपस्थित माया का भाग कमजोर होता जाता है। माया की सान्द्रता कम पड़ने लगती है। चेतना रूपी सूर्य के चारों ओर घिरे बादल अब विरल होने लगते हैं और अंततः चेतना आत्मा का प्रकाश प्राप्त करती है। 'ताप' को उल्टे तरीके से पढ़ें तो आएगा 'पता' अर्थात् 'स्वयं को तपाने से पता चल जाएगा।'

❖❖

शरीर छोड़ने के दो मार्ग हैं पहला माया के प्रभाव में, दूसरा सत्य के प्रभाव में। या तो माया आपको परिधि पर लाकर शरीर से बाहर निकाल दे या आप केन्द्र पर रहते हुए इसे त्याग दें। पहला मार्ग माया से प्रभावित लोगों के लिए है, दूसरा मार्ग सत्य से प्रभावित साधकों के लिए है। एक है अनिच्छुक, अतृप्त रहते हुए इसे छोड़ ना पाना और दूसरा है संतृप्ति प्राप्त करने के पश्चात् योजनाबद्ध तरीके से शरीर से बाहर निकलना। एक है माया में बसते, पदार्थिक जगत का जीवन जीते हुए व आत्म संतुष्टि हेतु बाह्य जगत के स्त्रोतों पर निर्भर रहते हुए, शरीर त्यागना और दूसरा है स्वयं में ही संतुष्ट रहते हुए आत्म ज्ञान प्राप्त कर, तत्व के रहस्यों को आत्मसात कर, संतुष्टि पूर्वक शरीर त्यागना। पहला है दक्षिणायन में शरीर त्यागना तथा दूसरा है उत्तरायण में शरीर त्यागना। पहला है कामना में रहते हुए शरीर छोड़ना और दूसरा होता है वर्तमान में रहते हुए शरीर छोड़ना। पहला है मोह की दृढ़ भावना के साथ शरीर त्यागना और दूसरा है प्रकाश प्राप्त कर सत्य को धारण कर शरीर का त्याग। पहला है प्रश्नों के बीच घिरकर शरीर त्यागना तथा दूसरा है उत्तर प्राप्त कर उसे आत्मसात कर शरीर को छोड़ना। पहला है स्वयं को शरीर मानते हुए इसे त्यागना और दूसरा है स्वयं को चेतना समझते हुए शरीर को पदार्थ का टुकड़ा जानते हुए, इसे त्यागना। पहला है स्वयं के नष्ट होने की भावना, दूसरा है स्वयं को अनश्वर, अक्षत समझते हुए शरीर का त्याग करना। प्रथम है दृष्टि आधारित सूचनाओं को सत्य मानना और दूसरा है तत्व आधारित ज्ञान के मध्य स्थित होना।

❖❖

माया ईश्वर का वह परिष्कृत कार्यक्रम या सॉफ्टवेयर है जो साधन को साध्य सिद्ध कर देता है अर्थात् शरीर को एक वाहन न समझकर शरीर को स्वामी समझते रहना। यह एक ऐसा सॉफ्टवेयर है, जो हमें जो कुछ भी बताता है, उसे हम सच

मानते चले जाते हैं। यह जिस चश्में से हमें दुनिया दिखाता है, हम दुनिया को उसी रूप में स्वीकारते चले जाते हैं। ये हमें जिस प्रकार से प्रतिक्रिया करने को बोलता है, हम उसी प्रकार से अपनी प्रतिक्रिया देते हैं। यह हमें हमारा नाम, हमारी पहचान और हमारा व्यक्तित्व सब कुछ देता है। हम उसे ही सब कुछ मान बैठते हैं और यही भाव लिए हुए अपना पूरा जीवन बिता दिया करते हैं। यह हमें जिसे अपना बताता है, उसे अपना कहते हैं। जिसे पराया बताता है, उसे पराया मान लेते हैं। यह जो बोलता है हम वही खाते हैं। ये जैसा सोचता है, हम वैसे ही सोचते हैं। यह हमें नशा करके अपने शरीर को बर्बाद करने को कहता है और हम उसकी बातों का अच्छे से पालन करते हैं। यह हमें हिंसा और दूसरों को कष्ट पहुँचाने को कहता है तो हम ठीक वैसा ही करते हैं, उस पर विचार भी नहीं करते। यह हमें हमारा लक्ष्य देता है, उसी में हम अपनी पूरी ऊर्जा झोंक दिया करते हैं। बड़ा अद्वितीय साफ्टवेयर है मन अर्थात् माया।

❖❖

हिन्दी वर्णमाला का पहला अक्षर 'क' से प्रारम्भ होता है क से कर्ता, काम, कामना, कमनीयता, कमी, कंचन सभी कुछ है और अन्तिम अक्षर है 'ज्ञ' मात्र ज्ञान। इस प्रकार हिन्दी की भांति, यह जीवन यात्रा भी काम से ज्ञान तक की यात्रा है। कर्ता से ज्ञाता तक की यात्रा है। कर्म से मर्म तक की यात्रा है। विविधता से सरलता तक की यात्रा। क्रोध से बोध तक की यात्रा है। प्रारम्भ से अन्त तक की यात्रा है। संस्कृत ने जिस हिन्दी को जन्म दिया उसमें, यत्र-तत्र रहस्य बिखरे पड़े हैं। संस्कृत से चूकने का मतलब अपनी सभ्यता के ज्ञान से चूक जाना है। जैसे कि नृत्य का साधक इण्डियन क्लासिकल सीख कर अन्य प्रकार का डांस बहुत आसानी से कर सकता है, ठीक उसी प्रकार संस्कृत भाषा पर आधारशिला रखने के पश्चात् आगे का मार्ग सुलभ हो जाता है।

❖❖

शिव पार्वती को पाकर पूर्ण होते हैं और पार्वती शिव को पाकर। शक्ति के बिना शिव का अर्धनारीश्वर बनना सम्भव नहीं। प्रकृति के माध्यम से ही पार्वती, माँ भगवती का रूप धारण करती है। यदि शिव माँ शक्ति का साथ न पाएं तो पूर्णता

कहाँ? और जब तक पार्वती मुक्त भाव से, स्वतंत्र रूप से, प्रकृति रूप में जन्म देना और पालन पोषण न कर सके, तब तक वो पार्वती कहाँ? सत्य अपने ही विस्तार से मिल कर पूर्ण होता है। विस्तार कृति से मिलकर और कृति पुनः कारण से मिलकर पूर्णता प्राप्त करती है और कारण उस परम कारण में विलीन हो कर ये चक्र पूर्ण करता है।

❖❖

वृक्ष पूर्णतया प्रकृति के अधीन है। इसी कारण वे साधन के समान कार्य करते हैं। उन्हें स्वयं को साधने की आवश्यकता नहीं है। वे अपने शरीर के आकर्षण में मग्न नहीं। वे मात्र इसलिए उपस्थित है कि वे उनकी सहायता कर सकें, जो स्वयं को साधन नहीं साध्य मान बैठे हैं। अब उनका जीवन उनके लिए समर्पित है जो स्वयं अपने शरीर को ही मुख्य मानकर जीवन जी रहे हैं। वे जिनकी सारी ऊर्जा अपने शरीर या अपने होने के भाव को ही संचित करने में लग रही है। वे जो अपनी यात्रा पर और उनके विभिन्न चरणों पर स्थित है। वे जो अभी ढूँढने का प्रयास कर रहे हैं, वे जो कहीं अटके पड़े हैं, वे जिन्हें कोई मार्ग नहीं सूझ रहा। वे अपने शरीर के और अपने सम्बन्धियों के मोह में अपना समय बिता रहे हैं। प्रकृति यदि जी रही है। यदि उपस्थित है यदि बरत रही है तो मात्र हमारे लिए अन्यथा उन ग्रहों पर जहाँ जीवन नहीं, वहाँ पर प्रकृति भी नहीं क्योंकि उनके होने का कोई कारण नहीं।

❖❖

उपभोग अर्थात् उपलब्ध से भोग प्राप्ति। आवश्यकता से अधिक जितना भी उपलब्ध है, उसका उपयोग भी किया जा सकता है और उपभोग भी। आवश्यकता से अधिक जितना भी ग्रहण किया जाए, वह संचय ही होता है। भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग कर लिया जाएगा परन्तु आवश्कता पड़ेगी भी की नहीं, इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता और तब तक वह भोग की श्रेणी में आएगा। उपभोग अर्थात् अपनी आवश्कताओं से इतर संचय करने की प्रवृत्ति। कोई दूसरा जो अपनी आवश्कताएँ भी पूरी न कर पाए और मेरे पास आवश्कता से अधिक हो जिसका मैंने संचय किया हुआ है, यह निश्चित तौर पर भोग ही है और यदि भोग है तो कभी ना कभी उसे भुगतना ही होगा।

❖❖

जो अवस्था आपको निद्रा सहज रूप से उपलब्ध कराती है, वही अवस्था ईश्वर की प्राप्ति के विभिन्न मार्ग उपलब्ध कराती है। अन्तर बस एक होता है निद्रा में 'मैं और हूँ' दोनों नहीं होते और जागृति में दोनों ही होते हैं। निद्रा में उपस्थित होता है तो मात्र चित्त, जो स्वप्न में मग्न रहता है। जो दमित और अपूर्ण इच्छाओं का चित्रण करता है। इस प्रकार निद्रा भी पूर्ण समाधि नहीं इसमें कसर अभी बाकी है। निद्रा ही वह समयावधि है जब काल के बारे में कोई भी चेत नहीं रहता। उस अवधि के दौरान आप काल से परे होते हैं, आप कालातीत होने का अनुभव कर सकते हैं। आप जान सकते होंगे कि जब समय नहीं होगा तब कैसा होगा? निद्रा की अवस्था में सभी गुण भी शांति पाते हैं। व्यक्ति सभी गुणों के बंधन से कुछ समय के लिए अलग हो जाता है।

निद्रा में न आप पुरुष हैं और न स्त्री, न गरीब हैं और न अमीर, न इच्छावान हैं न ही इच्छा से रहित। न आप वृद्ध हैं न बालक, न आप की जाति है और न ही गोत्र, न धर्म है न संस्कार, न भूख है न प्यास, न हिन्दू है न मुसलमान। न जीवित है न ही मृत। यदि है तो बस मात्र समत्व, पूर्ण समत्व। कृष्ण ने हमें यह नहीं बताया क्या? गीता इसी की चर्चा नहीं करती क्या? क्या यही वह अवस्था नहीं है जिसमें हम सबसे ज्यादा शान्ति प्राप्त करते हैं? क्या यह वही कार्य नहीं है जो बिना भूले हर रोज हम किया करते हैं? क्या निद्रा ही वह अवस्था नहीं है जो हमारी जीवनयात्रा को सहज बनाती है? क्या निद्रा में जाकर हम शोक व चिन्ता से मुक्ति नहीं पाते? व हम स्वयं को इस पदार्थिक जगत से अलग नहीं कर लेते? क्या यह वही अवस्था नहीं है जो एक योगी और एक भोगी को, एक अत्याचारी और एक परोपकारी को, एक राजा और प्रजा को समान रूप से उपलब्ध है? क्या यह वही अवस्था नहीं जो एक संत, संन्यासी ओर कामुक व्यक्ति को एक ही तल पर लाकर खड़ा कर देती है? क्या ईश्वर भी कुछ ऐसा नहीं है?

❖❖

संत अर्थात् संतृप्त; मन से संतृप्त, जिज्ञासा से संतृप्त, ज्ञान से संतृप्त, पदार्थ से संतृप्त, कामनाओं से संतृप्त। एक संतृप्त व्यक्ति कर भी क्या सकता है? मात्र

इतना कि वह दूसरों को भी संतृप्ति प्राप्त करने हेतु प्रोत्साहित करे। वह उन्हें बताए कि यह एक अवस्था है जो प्राप्त की जा सकती है। एक संत का स्थान पहाड़ या दुर्गम स्थान नहीं। यदि वह एकांतवासी हो जाए तो वह लोगों की किस प्रकार से सहायता करेगा। संतृप्त व्यक्ति का एकान्त में रहने से क्या लाभ? उसे तो लोगों के बीच आना होगा। जो कुछ भी सहायता बन पड़े। उनकी आवश्यकताएँ, उनकी इच्छाएँ, जिस प्रकार से भी उनकी सहायता की जा सके, वह उनकी सहायता करने का प्रयास करे।

❖❖

भक्त वह है जो प्रकाश में आसक्त है, प्रेम में आसक्त है। अब उसकी आसक्ति सांसारिक पदार्थों के पार जा रही है। वह उन बन्धनों का उल्लंघन करने का प्रयास कर रहा है, जिन बंधनों में अभी तक बंधे रहकर जीवन जीता आया है। यह एक निर्णय है जो उसने स्वयं लिया है। अभी तक उसने जो किया, वह समाज ने उसे बताया परन्तु यह निर्णय उसका स्वयं का है।

❖❖

सकाम पूजा अर्थात् वह पूजा जो कामनाओं हेतु की जाए। ऐसी पूजा जिसे आप भक्ति मत समझ लिजिएगा। वह भक्ति से बहुत दूर से गुजर जाती है। भक्ति जिसमें उपासना तो हो परन्तु उसमें कामना बिल्कुल न हो। जब कामनाओं की बिल्कुल आवश्यकता न रह जाए, जब ईश से मात्र प्रेम का सम्बन्ध रहे, जब उनसे अपनापन विकसित होने लगे, जब प्रगाढ़ता उत्पन्न होने लगे। जब श्रद्धा व जिज्ञासा उभरकर सामने आने लगे, जब व्यक्ति प्रकाश की खोज प्रारंभ कर दे और जब व्यक्ति प्रेम को समझने के लिए तैयार हो जाए तो बस उसी क्षण एक भक्त का जन्म होता है।

❖❖

निद्रा वह द्वार है जिसके एक तरफ समस्या और दूसरी तरफ समाधान है। जो सो गया, समझो उसका समाधान हो गया। सो गया अर्थात् शान्त हो गया। वह सो गया तो सब की शान्ति का इंतजाम हो गया।

यदि बच्चा सो गया तो माता-पिता की समस्या का भी समाधान हो गया। यदि पति या पत्नी में से कोई एक, पहले सो गया तो दूसरा अब पुस्तक पढ़ सकता है या कार्य जो वो करना चाहे। यदि मोहल्ले का चौकीदार सो गया तब तो ये गजब हो गया।

चौकीदार साहब का दिनभर की थकावट का तो समाधान हो गया परन्तु यदि उसे किसी मोहल्ले वाले ने सोते देख लिया तो उसकी नौकरी का फिर काम तमाम हो गया।

निद्रा मन को कुछ घण्टों के लिए शरीर से दूर कर देती है ताकि व्यक्ति जान सके कि जब मन नहीं होता तो कैसा होता होगा। तब कैसा अनुभव होता होगा जब मात्र चेतना और आत्मा ही रह जाए, मन पूर्णतया विलुप्त हो जाए? दिनभर मन को दौड़ाए रखने के पश्चात् रात में कुछ घण्टों के लिए आत्मा का साथ मिलता है। तब कैसा प्रतीत होता है, वह अवस्था कैसी होगी जब मन को कोई ऊर्जा न मिले। जब मन बिल्कुल शान्त हो जाए।

निद्रा सांसारिक लक्ष्य प्राप्त करने में भी सहायता प्रदान करती है। यह मन को कुछ घण्टों के लिए विराम देकर मस्तिष्क को थकान से उबरने में सहायता देती है। हम अपनी आत्मा के साथ जन्म-जन्मांतरों से रहते ही चले आ रहे हैं। मन की क्रियाशीलता के कारण ही बार-बार शरीर लेना होता है और उसी की उपयोगिता की वस्तु बन जाने के कारण यह शरीर मृत्यु को प्राप्त होता है। निद्रा मात्र चेतना की ही नहीं, मन की भी सहायक होती है क्योंकि यह चेतना को मन द्वारा अत्यधिक प्रताड़ित किए जाने से रोकती है। इस प्रकार अन्ततः मन भी कुछ घण्टों के विश्राम के पश्चात् अपने कार्यों में लग जाता है। यदि निद्रा न हो तो चेतना ज्यादा देर तक मन का साथ स्वीकार नहीं कर पाएगी। वह मन द्वारा लगातार उपयोग किए जाने से थक जाएगा। अतः सृष्टि का चक्र चलाए रखने के लिए भी निद्रा की अत्यन्त आवश्यकता है। इस प्रकार निद्रा, चेतना, मन और सृष्टि अथवा सभी के लिए समान रूप से उपयोगी है।

एक बच्चा जो सोना नहीं चाहता लेकिन उसकी माँ उसे जबरदस्ती सुलाना चाहती है। बच्चा रोता है पूरा प्रयास करता है कि सोना न पड़े और अंततः नींद

आ ही जाती है। नींद आने पर रोना और दु:ख दोनों ही समाप्त हो जाते हैं। माँ भी जानती है कि सो जाएगा तो रोएगा नहीं, परेशान न होगा। मृत्यु भी क्या ऐसी नहीं है? ये सभी दुखों को, कष्ट को हर लेती है। जो व्यक्ति बीमारियों और रोगों से थका हारा, एक उसी नियत दिनचर्या में उलझा हुआ, जीवन के अन्तिम चरण बुढ़ापे में पहुँच जाता है। अब वह कर्म नहीं कर सकता क्योंकि अब बल और सामर्थ्य काम नहीं करते। तब मृत्यु अन्ततः उपाय सुझाती है कि अब इस शरीर का त्याग करो और पुनः एक नया शरीर लो। इस शरीर के रहते हुए तुम्हारी यात्रा आगे नहीं बढ़ रही। अब बेहतर है कि अपनी समस्याओं का अन्त करो, सामाधान की ओर प्रस्थान करो।

❖❖

एक पक्षी को सुराही में कुछ जल मिलता है। वह पत्थर इकट्ठा कर सुराही में डालने लगता है। वह अपना प्रयास तो कर ही रहा है, अब उसे ये बताने की जरूरत नहीं कि वह जब जल मिलेगा तो कितना शीतल और तृप्ति देने वाला होगा। उसे यह भी बताने की जरूरत नहीं कि पत्थर कैसे होने चाहिए और उसे कैसे एकत्र किए जाएं क्योंकि वह पहले से ही यह काम कर रहा है। संक्षेप में उसे ज्ञान देने की जरूरत नहीं। यदि उसकी सहायता करने की ही इच्छा है तो पत्थर एकत्र करने में उसकी मदद कीजिए। उसे ज्ञान की नहीं पानी की जरूरत है। यदि बहुत इच्छा हो तो अपने अवलोकनों को एक जगह एकत्र करके छोड़ देना ही ठीक है। यदि कभी किसी को इसकी आवश्यकता होगी तो इसका उपयोग कर सकता है।

❖❖

मुक्त जीवात्मा अनियमित गति करती सूक्ष्म से भी सूक्ष्म प्रकाश के कण हैं। ये वे अतिसूक्ष्म जीव हैं, जिनके कारण स्थूल जीव जिन्हें हम अपनी दृष्टि से देख सकते हैं, वे आकार लेते हैं। यही जीवात्मा जो विभिन्न गर्भों में स्थित हो शरीर के बनने का कारण होती है, ये हानि रहित प्रकाश कण हमारे चारों ओर वातावरण में उपस्थित होते हैं। दो जीवात्मा के मध्य भेद कर पाना सम्भव नहीं। अति चमकीले प्रकाश के बिन्दु। इन्हीं कारणों को शरीर में स्थित आत्मा भी कहते हैं। इनकी उपस्थिति शरीरों के रूप में नहीं मात्र चमकीले प्रकाश के कण के रूप में होती है।

मानव शरीरों से इनका कोई मतलब नहीं, कोई लेना-देना नहीं। ये तो मात्र उस अवसर की तलाश में होती है जिसे शरीर कहते हैं और यह शरीर इन्हें स्वयं के लिए अपनी उपस्थिति में ही निर्मित करना होता है। जीवात्मा चारों ओर उपस्थित क्षेत्र अर्थात् अन्य शरीर के लिए कोई बाधा नहीं बन सकती।

❖❖

सत्य का मंदिर मात्र एक है। विभिन्न धर्म सत्य के मार्ग की सीढ़ियाँ हैं... मात्र सीढ़ियाँ। अलग-अलग दिशाओं में लगी अलग-अलग सीढ़ियाँ, बस और कुछ नहीं। कोई पूर्व वाली सीढ़ी से जाता है तो कोई पश्चिम वाली से लेकिन पहुँचना एक ही जगह है। ये सीढ़ियाँ भी बिल्कुल अलग-अलग हैं, ये एक दूसरे को काटती नहीं हैं। इस प्रकार अपने धर्म का पालन करने के लिए, किसी और के धर्म को कष्ट पहुँचाना या प्रताड़ित करने की आवश्यकता बिल्कुल भी नहीं है। सीढ़ियाँ बिल्कुल स्पष्ट और सीधी हैं। जो सीधे मन्दिर तक पहुँचती हैं। हाँ वहीं यदि किसी को ऊपर चढ़ने में रुचि न हो तो सीढ़ियों के कोनों से लटकर कर दूसरी सीढ़ियों पर चढ़ रह लोगों को परेशान अवश्य कर सकता है क्योंकि हम एकमात्र सीढ़ी का उपयोग कर सकते हैं चढ़ने के लिए। इसलिए हम उसका उपयोग करते हैं और उसी के बारे में गहराई से जानते हैं। दूसरी सीढ़ियों के बारे में न जानना, अज्ञानता का अंधकार पैदा करता है और अज्ञानता से ही संशय उत्पन्न होता है। एक बार जब आप मन्दिर में ऊपर पहुँच जाएंगे, तब आप सभी सीढ़ियों को देख सकते हैं परन्तु ऊपर पहुँच जाने के बाद सीढ़ियों का कोई उपयोग नहीं रहता। अब उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। अब यात्री गन्तव्य तक पहुँच चुका है। अब आगे की यात्रा हेतु दूसरी सीढ़ियाँ मिलेंगी। अपनी सीढ़ियों के बारे में गहराई से जानना, चढ़ने में अवश्य सहायता प्रदान करता है परन्तु यदि सीढ़ियों से ही मोह लगा बैठे तब उनका उपयोग कर ऊपर चढ़ेंगे कैसे आप? तब तो पूरी सम्भावना होगी कि व्यक्ति सीढ़ियों पर ही रूक जाए। इसी कारण सीढ़ियों को जानिए, उनसे मोह न कीजिए। यदि आप उनसे मोह कर बैठे और वहीं सीढ़ियों पर रूक गए तो कदाचित् दूसरे चढ़ने वालों के लिए समस्या पैदा कर सकते हैं। सीढ़ियों पर रूकने का कोई कारण नहीं है, यात्रा चलती रहनी चाहिए।

❖❖

स्वयं अर्थात् 'स्व' को जान लेने हेतु यम का पालन कीजिए। यम अर्थात् अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अस्तेय तथा ब्रह्मचर्य।

अहिंसा : कम से कम उन प्राणियों को मत खाइए जिनकी हत्या की गई है। हम हत्या कर पाते हैं क्योंकि हम उनसे बलशाली हैं और संसाधन युक्त हैं। कल्पना कीजिए कि हमसे ज्यादा बलशाली कोई जानवर यदि अपने स्वाद के लिए हमें मार कर खा जाए तो वह निश्चित तौर पर हिंसा ही होगी। तो ये भी हिंसा ही है कि हम अपने स्वाद के लिए दूसरे जानवरों की हत्या करें।

सत्य : आपके द्वारा बोला गया झूठ कम से कम किसी को हानि न पहुँचाए। यदि पूर्णतया सत्य बोलना सम्भव न भी हो तो कम से कम किसी को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से झूठ न बोला जाए।

अपरिग्रह : अपरिग्रह अर्थात् आवश्यकता से अधिक का संचय न हो परन्तु यह किस प्रकार से सम्भव है क्योंकि मन कामना उत्पन्न करता है कि संचय होना चाहिए, धन का या सम्पत्ति का। ये तो विरोधाभास होगा क्योंकि हम यह भी मानते हैं कि कामनाओं से होकर कामनाओं से पार जाने का मार्ग मिलेगा इसलिए कामनाओं से पूर्णतया बचने का कोई कारण नहीं। यदि कामना होती है कि संग्रह करो, वह तब तक उचित है जब तक भविष्य में अपनी आवश्यकताओं को देखते हुए किया जाए। यह अनुमान लगाकर कि भविष्य में इतना मेरी आवश्यकता की पूर्ति के काम आएगा। परन्तु भविष्य की आवश्यकता की पूर्ति के बाद भी जो संग्रह हो, वह निरर्थक ही है। कम से कम उससे तो बचा ही जा सकता है क्योंकि उसका कोई सदुपयोग नहीं किया जा सकेगा आपके द्वारा और आपकी आने वाली संततियाँ उसका किस प्रकार उपयोग करेंगी, आपको लेशमात्र भी ज्ञात नहीं।

अस्तेय : अस्तेय अर्थात् चोरी न की जाए, चोरी तो किसी और के धन की ही हो सकती है या वस्तु की और यह निश्चित ही तौर पर उसे कष्ट देगी इसलिए इससे बचना ही उचित है।

ब्रह्मचर्य : ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म के समान आचरण। ब्रह्म वह है जिसने ब्रह्माण्ड का निर्माण भी किया और पालन पोषण भी करते हैं। ब्रह्म अण्ड अर्थात्

ब्रह्म द्वारा जनित जो यह ब्रह्माण्ड है। इसे जरा विचार करके देखिए कि जिसने जन्म दिया जो पालन-पोषण करता है। वह किस प्रकार से कर पाता होगा। हमारी दिनचर्या में वह किस प्रकार शामिल है उसी के समान आचरण ही ब्रह्म के समान आचरण है अर्थात् ब्रह्मचर्य है।

❖❖

कृष्ण अर्थात् वह कारण जो शाश्वत है। उसी परम कारण की साकार अभिव्यक्ति कृष्ण हैं और निराकार रूप में वे हर जगह हर कण में व्याप्त हैं। हर एक कर्ता, हर एक कारक और हर एक कारण के पीछे छुपा हुआ एक परम कारण हैं जिसे आप कृष्ण नाम दे सकते हैं। वह कारण भी जिसकी शरण में वह है कृष्ण। उस परम कारण की शरण है कृष्ण। क्या है वह परम कारण? जो सभी कारणों के मूल में है। यदि पदार्थ की भाषा में बात की जाए तो पदार्थ मिलकर बनता है अणुओं से-परमाणुओं से, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रान से। ये कण मिलकर बने हैं क्वार्क से और अब क्वार्क के आधारभूत कण की खोज चल रही है।

वो सूक्ष्मतम कण जो पदार्थिक कण के मूल में हैं उन्होंने ही इस पूरी सृष्टि को थाम रखा है और वे करते क्या हैं? वे अत्यन्त गहरे, बिल्कुल भीतर छिपे हुए, नजर न आने वाले, समझ न आने वाले, न जाने जा सकने वाले कण उपस्थित हैं इसी कारण ये सृष्टि भी उपस्थित है। कोई उन्हें जानता भी नहीं, समझता भी नहीं तथा उन्हें खोजा न जा सका अभी तक किन्तु वे कण ही इस सृष्टि की उपस्थिति का कारण हैं। उन्होंने ही इस पूरी सृष्टि को आधार दे रखा है और बिना कुछ प्राप्ति की इच्छा रखे हुए यदि कोई आपको हर पल-हर क्षण थामें रखे, आपके अस्तित्व को बनाए रखे, आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम बने, उसे ही आप भोजन रूप में ग्रहण करें और मल रूप में निकाल भी दें तो वह कर क्या रहा है? वह मात्र आपको प्रेम दे रहा है, वह आपके लिए उपस्थित है बिना अपनी उपस्थिति दर्ज कराए, बिना अपनी उपस्थिति के बारे में बताए। आपने उससे कुछ माँगा नहीं, उसे जाना भी नहीं फिर भी वो आपके लिए उपस्थित है, अकारण, नि:स्वार्थ ताकि हम अपने स्वार्थों को पूरा कर सकें। माँ जब नि:स्वार्थ अपने बच्चे को पालती है,

उसे दूध पिलाती है तो वह करती क्या है? वह उसे प्रेम देती है और ये अदृश्य कण, ये कारण भी तो वही कर रहे हैं। माँ कुछ सालों तक यह करती है और पूजनीय हो जाती है। ये कण लाखों-लाखों से आपके लिए यह कर रहे हैं तो वह आपके साथ क्या कर रहे हैं? सिर्फ प्रेम, मात्र प्रेम और कुछ नहीं।

❖❖

ईश्वर की कृपा इस रूप में होती है कि वे माया के आवरण को जरा हटाकर सत्य के आने का मार्ग प्रशस्त करते हैं या इस आवरण से निकलने का मार्ग सुझाते हैं। ईश्वर की कृपा हमें कब चाहिए होती है? जब कोई समस्या होती है, जब मार्ग नहीं सूझता। जो व्यक्ति अपनी कामनाओं की यात्रा पर चलता रहता है उसे अपेक्षित सफलता भी मिलती रहती है और वह इस क्रम को टूटने नहीं देना चाहता तब वह कृपा चाहता है।

कृपा अर्थात् कृ + पा । कृ को पाना। हम कहते हैं कि कृपा बनी रहे। कृ का वास्तविक अर्थ तो सृष्टि की उस परम ऊर्जा को जानना है जो कृष्ण में भी है। यदि वास्तविक अर्थों में कृपा प्रदान की इच्छा हो तो ईश्वर सात्विक ऊर्जा का प्रवाह आपकी तरफ करते हैं। जो आपके मन में सभी बुराइयों का नाश करते हुए सत्य के प्रकाश के आने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। यही वास्तविक कृपा है।

❖❖

पूरी दुनियाँ में सिर्फ दो ही चीजों की खोज चल रही है। एक सुख तथा दूसरा प्रेम। मार्ग कोई भी लीजिए, कामना कोई भी कीजिए, प्रयास जो भी हो, लक्ष्य जिसे भी माना जाए परन्तु चर्मोत्कर्ष यही है। जीवन के पहले भाग में व्यक्ति प्रेम को समझता है, प्रेम उसके लिए उपलब्ध होता है घर में ही। जीवन के दूसरे भाग में व्यक्ति उसी प्रेम को बाहर पाने का प्रयास करता है। पहले भाग में सरलता से प्राप्त हो गया प्रेम, दूसरे भाग में अत्यधिक लुका-छिपी करता है, अत्यधिक मेहनत करवाता है। कई प्रयास, कई प्रयोग करने को बाध्य करता है। फिर भी वह प्रेम को शुद्ध रूप में जैसा कि उसने अनुभव कर लिया, उसे बाहर नहीं पाता।

बचपन से ही उसको विभिन्न परिभाषाएँ और कहानियाँ समझाई जाती है कि सुख ऐसा होता है-वैसा होता है। इसकी प्राप्ति पर सुख होता है, उस लक्ष्य तक

पहुँचने पर सुख मिलता है और बाद के जीवन में व्यक्ति उसी सुख को ढूँढता रहता है। हर एक चरण जो उसे बताया गया वहाँ पहुँचने का प्रयास करता है और वहाँ पर प्राप्त सुख को भोगकर फिर भी अतृप्त रहता है। उसे लगता है कि जितना सोचा था उतना तो नहीं है। ये शायद अगले चरण पर और होगा और इस प्रकार जीवनभर प्रेम और सुख दोनों की ही खोज चलती रहती है।

❖❖

दूध जिन ग्रन्थियों से बनता है, उन ग्रन्थियों की बाहरी परतें टूट-टूट कर दूध के स्राव के साथ ही बाहर आती हैं। इन्हें ऐपोक्राइन ग्लैण्ड भी कहते हैं इसीलिए दूध पीने वालों के लिए एक नए शब्द की रचना की गई, लैक्टो वेजिटेरियन। प्रारम्भिक काल में विभिन्न ग्रंथों में इसे ही गौ मांस भक्षण की संज्ञा दी गई है। माँ स्वेच्छा से दूध पिलाती है और इसमें वह मातृत्व सुख का अनुभव करती है। दूध के लिए किसी जानवर के प्रति हिंसा या उसकी हत्या नहीं करनी पड़ती। प्रकृति जन्म के साथ-साथ पालन-पोषण की जिम्मेदारी भी स्वयं उठाती है। इसी कारण एक स्त्री का शरीर जन्म भी देता है और पालन-पोषण भी कर सकता है। यही वजह है कि दूध बच्चे के लिए पूर्ण आहार माना गया।

❖❖

कृष्ण कहते हैं कि अन्न से ही इस शरीर की रचना होती है। इस तरह शरीर को अन्नमय कोष भी कहा गया। अत: अन्न का सेवन करने पर अन्य शरीरों के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक है। व्रत के दौरान पाचन तंत्र को आराम देने के अलावा, एक यह भी कारण है अनाज न ग्रहण करने का ताकि मन को भी आराम मिल सके। अन्य शरीरों की ओर खिंचाव कम हो और व्यक्ति मानसिक शांति भी अनुभव कर सके। यही कारण है कि व्यक्ति व्रत के दौरान विचारों की उथल-पुथल में कमी अनुभव करता है। अन्न शारीरिक आकर्षण भी पैदा करता है और बल भी। व्रत के दौरान अन्न का निषेध करने का कारण यह भी है कि प्राणी जान सके कि यदि कभी भविष्य में उसे अपने मानसिक विचारों और उनकी उथल-पुथल से दूर जाना हो, तनाव से दूर जाना हो, इच्छाओं को कमजोर करना हो और शारीरिक आकर्षणों से स्वयं को मुक्त करना हो तो उसे कौन सा कार्य करना चाहिए।

हनुमान व बर्बरीक में अद्भुत समानता है। दोनों ही ने सत्य को पहली ही मुलाकात में पहचान लिया। हनुमान ने राम को पहचानने में देर न की बल्कि वे तो उनका इंतजार ही कर रहे थे और बर्बरीक से जब कृष्ण यूँ ही टकरा गए तो उन्हें ब्राह्मण रूपी कृष्ण को पहचानने में देर न लगी। कृष्ण तो कदाचित पहचाने भी जा सकते होंगे परन्तु कृष्ण में स्थित सत्य को पहचानना बर्बरीक का तत्व ज्ञान था। अर्जुन सखा होते हुए भी कृष्ण रूपी सत्य को नहीं जान पाए। उन्हीं श्रीकृष्ण को बर्बरीक ने प्रथम दृष्टि में ही पहचान लिया। अर्जुन को अपने धर्म में उद्यत होने हेतु, मोह त्याग करने हेतु, ज्ञान की आवश्यकता पड़ी। न सिर्फ गीता प्रवचन बल्कि कृष्ण को अपना विश्वरूप भी धारण करना पड़ा। स्वयं कृष्ण ही जिसे जीवन का परम गूढ़ ज्ञान दे रहे हों और उसके बाद भी वह मोह से मुक्त न हो पा रहा हो, उसे मोह से मुक्त करने के लिए कृष्ण को अपना विश्वरूप दिखाना पड़ा। इसे अर्जुन की कमी न समझ लीजिएगा, इसे माया का सफलता जानिए।

अर्जुन तो फिर भी माया में रत थे, उन्होंने स्वयं को ही न जाना था। यदि जिसने स्वयं को न जाना हो, वो यदि कृष्ण को न पहचान पाएं, सत्य को न पहचान पाएं तो कोई घोर आश्चर्य नहीं। यह माया की प्रबलता है–उसकी सफलता है, उसका सौन्दर्य है और उसकी गूढ़ता है।

इधर बर्बरीक में मोह लेशमात्र न था, जब कृष्ण ने शीश माँगा तो तीन अजेय बाणों को धारण करने के बाद भी, महाबलशाली होने के बाद भी, संसार के सभी भोगों को भोगने का सामर्थ्य होने के बाद भी, उनका एक गुण, बाकी गुणों पर भारी पड़ गया– वह था तत्व ज्ञान का। युद्ध के दौरान कृष्ण ने अर्जुन को कर्म करने को कहा और बर्बरीक को कलयुग का अवतार घोषित कर अपना नाम और स्थान प्रदान किया। ठीक उसी समय पदार्थ निर्मित शरीर से बर्बरीक सत्य में प्रवेश कर गए।

❖❖

भक्ति अद्भुत है, मन और सत्य पर एक समान कार्य करती है। यह मन को एक निश्चित दिशा प्रदान तो करती ही है साथ ही साथ यह सत्य से सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है और सत्य की कृपा प्राप्त होने पर मन दुगने रफ्तार से कम होता

है। मन सत्य द्वारा ही निर्मित है। यह उसी की बनाई हुई रचना है, सत्य चाहे तो आपको एक उचित मार्ग सुझा सकता है, बाहर निकलने का तरीका बता सकता है, साथ ही साथ मन के घनत्व को भी कम कर सकता है। यह ठीक उसी प्रकार है कि स्वयं अंधकार में रहते हुए प्रकाश से मित्रता कर लेना और जो मित्रता हो गई, प्रेम हो गया तब एक न एक दिन प्रकाश तो आपके घर आएगा ही और जब प्रकाश उपस्थित होगा तब कहाँ होगा अंधकार और कैसे हो सकता है अंधकार। जितना प्रयास होगा, उतनी ही सम्भावना भी होगी कि एक ना एक दिन प्रेम आपके घर घूमता हुआ चला आए और उसके आते ही अंधकार वैसे ही विलुप्त होगा जैसे कि दीपक के जलते ही चारों ओर अंधकार को मिटाकर रोशनी हो जाती है।

❖❖

जिसने जिस रूप में चाहा उस रूप में पाया। नरकासुर की कैद ने जब सामाजिक स्वीकार्यता पर प्रश्न उठाया तो कृष्ण ने सोलह हजार एक सौ स्त्रियों के साथ एक ही दिन विवाह किया और इस विवाह ने उन्हें न सिर्फ सामाजिक स्वीकार्यता दी बल्कि कृष्ण की रानी होने का अधिकार भी प्रदान किया।

जिन्हें प्राप्ति में रुचि थी, जिन्होंने प्राप्त करने हेतु तपस्या की थी, जिन्हें अधिकार चाहिए था, जिन्होंने भी पति रूप में वरण करने की इच्छा की उन्हें कृष्ण पति रूप में प्राप्त हुए।

राधा स्वयं प्रेम स्वरूप हैं, उनके पास प्रेम का अथाह भण्डार है। उनकी कोई इच्छा न थी, उन्होंने कुछ माँगा न था। उन्होंने बस कृष्ण को प्रेम दिया। उन्होंने कृष्ण से प्रेम भी न माँगा और न ही गोपियों द्वारा पसन्द किए जाने पर कृष्ण पर अधिकार ही जमाया। उनका प्रेम उस माता के समान है जो अपने सभी बच्चों को समान भाव से देखती है। वो चाहे गोपियाँ हों या चाहे कृष्ण, सभी उनके लिए समान हैं। माँ यशोदा और नन्दजी ने उन्हें पुत्र रूप में चाहा उन्हें कृष्ण वैसे ही प्राप्त हुए। दुर्योधन को नारायणी सेना की इच्छा थी, उन्हें नारायणी सेना प्राप्त हुई। अर्जुन ने सखा रूप में चाहा, कृष्ण सखा रूप में उपस्थित थ। आपको कृष्ण किस रूप में चाहिए?

❖❖

प्रकृति आपको जन्म जैसी महान घटना हेतु तैयार करने के लिए नौ महीने का समय लेती है। जब माया से पूर्णत: दूर आप सिर्फ प्रकृति में छुपे होते हैं, आप गर्भ में छिपे होते हैं। जन्म देने की तैयारियाँ चल रही होती हैं, शरीर को पुष्ट किया जा रहा होता है। सतत् पोषण उपलब्ध होता है, सुरक्षा उपलब्ध होती है, अपनापन उपलब्ध होता है, किसी भी बाहरी चीज की कोई दखल नहीं और गर्भ से निकलते ही आप मायावी जगत में पहुँच जाते हैं। जहाँ चारों ओर माया ही माया है। चारों ओर बस पागलपन छाया है और बस पूरी जिन्दगी इसी जगत में व्यतीत होती है और इस जगत का प्रभाव इतना गहरा होता है कि व्यक्ति अपने गर्भ में बिताए नौ महीने भी पूर्णतया भूल चुका होता है। वह प्रकृति के सानिध्य और संतोष दोनों ही को बिसरा चुका होता है। अब वह भूल चुका है कि नौ महीने कितनी सुरक्षा व पोषण प्रदान किया गया उसे। स्वयं प्रकृति ने ही गर्भ रूप में उसे चारों ओर से लपेट रखा था। प्रकृति ने किस प्रकार स्वयं की ही देख-रेख में उसका निर्माण किया। उसके अंगों और मस्तिष्क की रचना की और पूर्णतया तैयार हो जाने पर, उसे संसार रूपी महासमर में उतार दिया कि वह जाए और अपनी जीवनयात्रा को गति प्रदान करे। वो अपने जीवन के लक्ष्यों को ढूँढे और प्राप्त करने का प्रयास करे। वह स्वयं को ढूँढे और सृष्टि के रहस्यों को जानने की जिज्ञासा व्यक्त करे और अन्तत: जब वह बुढ़ापे से घिर जाए, अशक्त व निर्बल हो जाए तो वह पुन: शरीर को त्याग कर प्रकृति में प्रवेश करे। जन्म के समान ही मृत्यु भी एक महान घटना है और इसकी तैयारी भी प्रकृति में ही की जा सकती है, माया से पूर्णतया दूर। इसी कारण संन्यास आश्रम रचा गया ताकि व्यक्ति पुन: प्रकृति की ओर लौटे, अपने मूल स्थान में रहते हुए वह प्रकृति में प्रवेश करे। इस प्रकार शुद्ध प्रकृति अर्थात् वह माता की गोद में जाकर छुप जाता है। ठीक उसी प्रकार इससे पहले कि वह पुन: वास्तविक माँ अर्थात् प्रकृति में प्रवेश करे, उसे इसकी तैयारी करनी चाहिए और संन्यास आश्रम इसी तैयारी हेतु आधार प्रदान करता है।

❖❖

भीड़ में रहकर भी स्वयं में रहने का उपाय है, सभी इच्छाओं से दूरी। इच्छाएँ ही परिधि पर खींच लाती हैं। वे जो भीड़ में रहकर भी अकेले रहने का गुर जानते हैं, वे इस रहस्य को जानते हैं। जीवन सदा एक साथी की तलाश करता

है। मित्र के रूप में, महिला मित्र के रूप में, पुरुष मित्र के रूप में, जीवनसाथी के रूप में, बच्चों के रूप में या अन्य किसी रूप में। हमेशा वह एक साथ की तलाश करता है क्योंकि हर व्यक्ति अपने आस-पास के व्यक्ति को यही करता हुआ देखता चला आ रहा है। हर व्यक्ति साथी चाहता है लेकिन यह तलाश सदैव अपने आस-पास चला करती है। इस संसार में चला करती है। समाज में चला करती है और साथी के न मिलने पर व्यक्ति भीड़ में रहकर भी अकेला महसूस करता है। वह मानता है कि भीड़ तो बहुत है लेकिन वह मेरे किस काम की? जब यहाँ कोई मुझे समझ ही नहीं सकता, मुझे जब कोई यहाँ पहचान ही नहीं सकता, जब यहाँ कोई मेरा हो नहीं सकता। यदि किसी अन्य शरीर के रूप में कोई साथी प्राप्त हो गया तो आपकी तलाश लगता है कि पूरी हो गई। आप उससे मोह का सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। जिसे आप प्रेम कहते हैं और मोह भी यही घोषणा करता है कि-तुम मेरे हो। हर पुरूष अपनी प्रेमिका से यही वादा लेता है कि तुम मेरी हो। इसका कारण बस इतना-सा है कि हर व्यक्ति को, हर चेतना को यह पता है कि कोई न कोई उसके लिए है।

हर एक व्यक्ति एक तलाश पर है और यह बात वह गहरे जानता भी है कि कहीं न कहीं कोई तो जरूर है, जो मेरे लिए है लेकिन उसे ढूँढा कैसे जाए, उसे ढूँढना कहाँ पर है? बस इसके बारे में ही नहीं जानता और इसी क्रम में वो अपने चारों ओर हाथ-पैर मारता है। अनेकों प्रयास करता है और जब उसे लगता है कि उसे प्रेम प्राप्त हो गया तो वह स्वयं से कहता है कि न जाने कब से इसी प्रेम की तलाश कर रहा था और अब जाकर यह मिला है और फिर एक दिन वह प्रेम, वह शरीर जिसे अपना समझ लिया था वह भी नष्ट हो जाता है। प्रेम की आखिरी उम्मीद भी टूट जाती है। जीवनभर की तलाश इस चौराहे पर आकर रूक जाती है। परन्तु अपने भीतर कहीं न कहीं वह जानता है कि तलाश अभी पूरी नहीं हुई, अभी भी खोज बाकी है और उसकी वास्तविक तलाश तब जाकर पूरी होती है जब वह स्वयं से मिल लेता है। जब स्वयं से मिल लेता है व स्वयं को जान लेता है उस क्षण में उसका वास्तविक प्रेमी भी मिल जाता है? और वह है उसकी अपनी आत्मा। उसे अपना होने का कारण, उसका स्वयं का अस्तित्व। उसकी प्रेम की खोज, इस स्थान पर आकर पूर्ण होती है।

❖❖

भजन अर्थात् अपनी ऊर्जा को सम्पूर्ण रूप से ईश्वर की ओर केन्द्रित कर देना भजन अर्थात् प्रकाश को जानने का यतन। भजन अर्थात् सुखासन की मुद्रा में बैठकर मानसिक रूप से प्रकाश की ओर गमन। भजन अर्थात् एक ही स्थान पर बैठे-बैठे प्रेम की प्राप्ति का यतन। भजन अर्थात् अपने ईश का मनन। भजन अर्थात् अपने चित्त तक पहुँचकर उस पर अपनी इच्छा के रेखाचित्र उकेर कर अपने पसंद का रंग भरना। भजन अर्थात् अपने भीतर उपस्थित विभिन्न बन्धनों को खोलने का प्रयास करना। भजन अर्थात् अपनी ही आत्मा की ओर गमन करने का प्रयास करना। भजन अर्थात् अपने भीतर उपस्थित उस कारण को उद्दीपन देना।

❖❖

प्रकृति ही एक स्त्री के अन्दर गर्भ की स्थापना करती है। गर्भ में एक शिशु का निर्माण करती है और उस स्त्री को यह भावना देती है कि यह काम तुमने किया है। ये शिशु तुम्हारा है। पूरे नौ महीने प्रकृति स्वयं, उस शिशु का निर्माण करने में व्यतीत करती है, उसे तैयार करती है। गर्भ से उस शिशु के निकल जाने के पश्चात् भी उससे सम्बंध नहीं तोड़ती है। वह स्त्री के वक्ष स्थल में दुग्ध ग्रन्थियों में दूध का निर्माण करती है ताकि शिशु का पालन पोषण किया जा सके परन्तु स्वयं को पीछे रख कर और इसका पूरा श्रेय उस स्त्री को ही देती है। मनुष्य अपने शरीर का निर्माण नहीं कर सकता। वह तो मन के अधीन मात्र एक चेतना है और कुछ भी नहीं, वह एक शिशु का निर्माण कैसे करेगा? यह कार्य उसका नहीं, यह कार्य प्रकृति का है। यह कार्य पार्वती का है, प्रकृति ही वह पार्वती हैं। आप अपनी सुविधा अनुसार जो भी नाम देना चाहें दे सकते हैं। पार्वती यह कार्य इसलिए करती हैं कि आपको वह इस सृष्टि की मूल भावना के साथ जोड़ सकें।

आप उसे समझ सकें-जान सकें कि किस प्रकार इस सृष्टि में प्राणियों का आवागमन चलता रहता है तथा उनका पूर्णरूपेण पालन-पोषण भी किया जाता है। जब एक बार आप उस अनुभव से गुजर जाते हैं तो सृष्टि के साथ उस सृष्टि के निर्माण करने वाले परमतत्व के और निकट आ जाते हैं और आप समझने लगते हैं कि जीवनरूपी अवसर प्रदान करने के लिए वह परमतत्व किस प्रकार दिन-रात

मग्न रहता है। आप ये अवसर प्राप्त कर सकें, उसके लिए प्रयास वो करता है।

❖❖

नरक से डरिए मत नरक अर्थात् बुरा समय, यदि अवसर आए तो स्वेच्छा से प्रवेश कीजिए क्योंकि आपके पास कोई दूसरा उपाय भी नहीं। नरक की अवधारणा वास्तव में है क्या? यही न कि वह पुराने पाप कर्मों को उदासीन कर देता है, वे सभी संचित कर्मफल जो सदियों से एकत्र किए गए। अब इस वक्त में वह सभी जला दिए जाएंगे और उससे जो ताप उत्पन्न होगा वह प्राणी को झेलना होता है, वही प्राणी को कष्ट देता है। वही दुख और संताप का विषय बनता है। बच के निकल आने पर आप एक बड़े बोझ से मुक्त हो जाएंगे। वह बोझ कई जन्मों से जला दिए जाने का प्रतीक्षा कर रहा था और अब उसे यह अवसर प्राप्त हुआ, यह आपको हल्का महसूस करवायेगा। इसी कारण सागर मंथन में विष उत्पन्न हुआ। विष वही था जो संचित कर्म फलों का प्रभाव था यदि अमृत की इच्छा है तो विष से कैसे बचा जा सकेगा। यदि आगे की ओर बढ़ना है तो वे जो हमें पीछे खींचते हैं उन सभी बंधनों को काटना ही होगा। उन्हें जला डालना ही होगा और नरक में बिताया गया समय, उन सभी बंधनों को जलाने का कार्य करेगा। यही आपको स्वतंत्रता भी प्रदान करेगा कि अब आगे की यात्रा आप ज्यादा स्वेक्षापूर्वक कर सकते हैं।

❖❖

जेम्स वॉट केतली में उबलते हुए पानी को देख रहे थे। उस एक क्षण में उन्हें भाप की ताकत का अहसास हुआ, जो ढक्कन को बार-बार उठा देती थी। न्यूटन एक दिन सेब के पेड़ के नीचे बैठकर कुछ सोच रहे थे और एक सेब पेड़ से उसी समय गिर पड़ता है। न्यूटन ने साक्षी भाव से इसका अवलोकन किया। वे कर्ता बनकर सेब को लेने नहीं दौड़ पड़े और इस प्रकार जेम्सवॉट और न्यूटन ने सभ्यता को भाप का इंजन और गति के नियम दिए। दोनों ही उस समय दृष्टा भाव में थे। वे वहाँ पर उपस्थित होकर मात्र अवलोकन कर रहे थे। जेम्सवॉट भाप की केतली का ढक्कन हटाने, बिजली का स्विच बन्द करने या केतली को उतारने के लिए दौड़ नहीं पड़े। न्यूटन ने सेब को गिरते हुए देखा तो उसके तरफ लपके नहीं।

दोनों ने ही अपनी ऊर्जा कर्ता बनने में खर्च नहीं की और इसी कारण वह ऊर्जा उन्हें दृष्टा भाव में ले गई। उसी ऊर्जा के उपयोग से इस घटना के अवलोकन से, इस तथ्य का मर्म समझ में आया। अवलोकन उनका था लेकिन फायदा पूरी सभ्यता का हुआ। दृष्टा भाव उनका था लेकिन सुख सभी ने लिया। जब केतली का अवलोकन भाप का इंजन चला सकता है तो आपका अवलोकन क्या आपको सत्य की झलक भी नहीं देगा? ध्यान यही दृष्टा भाव उपलब्ध करवाता है। वह शांतभाव में एक जगह बैठाकर घटनाओं को देखते रहने के लिए प्रेरित करता है और इसी क्रम में आपकी उन्नति हो जाती है। आप कर्ता से द्रष्टा बन जाते हैं और यही है शक्ति का जागृत होना।

❖❖

हर एक दिन आपके पास ऊर्जा से भरे कलश के समान हैं। अन्तर बस इतना है कि कोई माया को ऊर्जा देता है कोई सत्य को। एक चेतना के रूप में हम यही तो करते हैं। अपने संसाधनों का उपयोग या तो हम माया को करने देते हैं या फिर सत्य को और हम कर भी क्या सकते हैं? जब हम माया को अनुमति देते हैं तो वह हमें बताती है कि करने वाले तो तुम्हीं हो। वह अपनी उपस्थिति के बारे में कभी भी पता नहीं चलने देना चाहती। वह सारा का सारा भार आपके कंधों पर ही डाल देती है। वह यह बताती है कि किया तुमने, सोचा तुमने, योजना बनाई तो अब कर्मफल भी तुम्हारा ही होगा। भुगतना भी तुम्हें ही होगा ओर हम उसके वशीभूत हुए बड़ी स्वेक्षा से स्वीकार कर लेते हैं कि हाँ वास्तव में किया तो मैंने ही परन्तु यदि आपके मन में विचार नहीं आया होता उस कार्य को करने का, तो उस कार्य को आप कभी नहीं करते। कार्य इसीलिए किया गया क्यों कि उससे सम्बन्धित एक विचार उत्पन्न हुआ। विचारों के उत्पन्न होते ही, आपके मस्तिष्क ने उस योजना पर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

यह कर्तापन का झूठा भाव तभी समाप्त होता है जब आप अवलोकन करते हैं जब आप दृष्टा बनते हैं। जब आपकी चेतना माया से अलग हो जाती है। तब हम यह बात जान पाते हैं कि वास्तव में हमारा उपयोग किया गया। इतने दिनों तक मुझे भरमाकर रखा गया। जिसे मैं खुद का मानता रहा वो तो मेरा था ही नहीं। मेरे

अपने विचार, मेरे अपने ना थे। जिन विचारों ने मुझे बताया कि ये शरीर ही मैं हूँ, वो भी झूठ निकला। उस एक पल में आप जान सकते हैं कि वास्तविक उपस्थिति है किसकी? उस एक पल में प्रकाश से, सत्य से परिचय होता है। वह एक पल होता है, परम मिलन का। वह एक क्षण होता है जब आपका सच्चा प्रेमी आपको प्राप्त होता है और उस एक पल में आप निर्णय लेते हैं कि मेरी ऊर्जा मेरी है ही नहीं। इसलिए अब मैं कुछ करूंगा नहीं। अब मात्र मैं देखूंगा, उसी ऊर्जा का उचित उपयोग होते हुए। अपने सामने, अपने ठीक सामने। उस एक क्षण में जब आप कुछ न करने का निर्णय लेते हैं। आप कर्तव्य को त्याग देते हैं। तब घटनाएँ स्वयं घटने लगती हैं, तब घटनाएँ व कृतियाँ आकार लेने लगती हैं। तब आप मात्र एक माध्यम बन जाते हैं। अब जो भी करेगा सत्य ही करेगा। अब वही उपयोग करेगा और फिर आप इन सुन्दर घटनाओं को घटित होते हुए देखते रहते हैं।

हम सांसारिक जीवन की घटनाओं को भूलते नहीं, अपितु उन्हें याद रखते हैं क्योंकि यही घटनाएँ सूचनाओं के रूप में संचित होकर, भविष्य में कभी न कभी हमारी सहायता कर सकती हैं। हम इसका तभी उपयोग कर सकते हैं परन्तु आन्तरिक जगत् के यात्रियों की स्थिति ठीक विपरीत है। वे भूलने की आदत डालते हैं, याद रखने की नहीं क्योंकि याद रखने के क्रम में घटनाओं को बार-बार मस्तिष्क में लाना होगा। वे उस पर विचार करेंगे। अपनी ऊर्जा अनावश्यक खर्च करेंगे। वह घटना जो अतीत में घट चुकी है वह नाहक ही वर्तमान की घटनाओं को प्रभावित करने किसी दिन आ जायेंगी। अब वह घटना बीत चुकी, अतीत हो गई परन्तु उसका प्रभाव अभी तक समाप्त नहीं हुआ और आन्तरिक जगत के यात्री जो नए जगत में प्रवेश कर रहे हैं उन्हें पुरानी सूचनाओं से क्या लेना देना? ब्लैकबोर्ड को मिटाकर ही उस पर नई इबारत लिखी जा सकती है। पुरानी मेमोरी को डिलीट करके ही स्पेस खाली किया जा सकता है।

❖❖

जीवन से भागते रहना अर्थात् सत्य से भागते रहना। जब कोई भाग ही रहा है तो वह किसी चीज की ओर ही भाग रहा होगा लेकिन साथ ही किसी से दूर

भी भाग रहा होगा। भाग तो रहा है अपने लक्ष्यों के पीछे, अपनी कामनाओं के पीछे, आकर्षणों के पीछे लेकिन इसी क्रम में वह खुद से काफी दूर जा रहा है। भागना अर्थात भा की ओर गमन करना, प्रकाश की ओर गमन करना, निश्चित रहिए यदि वो कामनाओं की ओर भी भाग रहा है तो कामनाओं का पीछा करते-करते एक न एक दिन कृष्ण के पास पहुँच ही जाएगा क्योंकि क अर्थात् कामनाओं से शुरू हुई यात्रा ज्ञ पर पहुँच कर, ज्ञान प्रदान कर, वापस क पर आ जाएगी और इस बार कामनाएँ न होगी। इस बार स्वयं कृष्ण उपस्थित होंगे और यही सृष्टि का चक्र भी है कि आप जहाँ से चलते हैं एक ना एक दिन वापस वहाँ पहुँच जाते हैं। गर्भ से शुरू हुई यात्रा अन्ततः पृथ्वी के गर्भ में जाकर समाप्त होती है। निर्गुणता से चली यात्रा गुण से होते हुए निगुर्णता में ही जाकर समाप्त होती है। ग्लेशियर से चला पानी गलेशियर में आकर मिल जाता है।

❖❖

किसी ने कितनी सुन्दर बात कही कि शोरगुल में घटनाएँ घटती हैं परन्तु क्रान्तियाँ तो शान्ति में ही घटित होती हैं। शोरगुल तब भी बहुत हुआ होगा जब चंगेज खान मंगोलिया से चलता हुआ मध्य एशिया तक जा पहुँचा था और इसी क्रम में उसने छह करोड़ लोगों को मार डाला, कितना शोरगुल हुआ होगा। शोरगुल तो प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध में भी हुआ होगा। न जाने कितने योद्धाओं को लील गए ये युद्ध, शोरगुल तो महाभारत में भी बहुत हुआ होगा, जब दोनों पक्षों के योद्धा, महाबली व सेना मारी गई।

परन्तु क्रान्ति वहीं महाभारत में ही घटित हुई अत्यंत शान्ति में, एकांत में, जब कृष्ण ने गीता सभ्यता को प्रदान की। उस शान्ति में जो घटित हुआ, वह सत्यान्वेशी को ऊर्जा देता है और अन्त में एक गौमुख स्थापित हुआ। उससे निकलने वाली धारा युगों-युगों तक प्यासों को जल पिलाती रहेगी। कोई भी व्यक्ति जो ज्ञान के वृक्ष के तले स्थान पाना चाहे, वह गीता की शरण ले सकता है। गीता सभी के लिए उपलब्ध है। गीता का उद्गम स्वयं में एक महान क्रान्ति थी जो हर एक प्राणी के जीवन में क्रान्ति लाने की सामर्थ्य रखती है।

❖❖

'क्र' अर्थात् 'रो'। क्रन्दन अर्थात् रोना और इसी संस्कृत के शब्द से अंग्रेजी का शब्द क्राई बना जिसका तात्पर्य है रोना। क्रान्ति अर्थात् क्र + अन्त + ई। ई वह ऊर्जा है जो आन्तरिक उत्थान करती है। शिव के गले में लिपटे नाग पर जब आप ध्यान केन्द्रित करेंगे या शिवलिंग के साथ रखे नाग पर जरा ध्यान दीजिए। उसकी आकृति ई के समान होती है इस प्रकार क्रान्ति अर्थात् वह ऊर्जा जो रुदन का अन्त करे। वह ऊर्जा जो अन्धकार को दूर करके प्रकाश भर दे। वह जो महापरिवर्तन की द्योतक हो, वह जो जीवन के प्रवाह को एक नियत दिशा की ओर मोड़ दे। जिस प्रकार श्रीराम ने गुणों को स्थापित किया और सभ्यता को उसका चरम दिया और उनके इसी उदाहरण पर चल कर न जाने कितने लोगों ने गुणों के उस चरम को छुआ। वह भी एक क्रान्ति थी और महाक्रान्ति घटित होती है जब कृष्ण अवतरित होते हैं। जब गीता अवतरित होती है।

❖❖

आनन्द अर्थात् नन्द के घर जिनका आगमन हुआ वही आनन्द हैं अथवा नन्द जिससे ओत-प्रोत हैं, वही आनन्द है। कल्पना कीजिए उस पिता के मनोभावों की जिनके घर कृष्ण स्वयं उपस्थित होकर ये निवेदन करते हैं कि मैं आपको पिता रूप में स्वीकार करता हूँ। कृपया कर मुझे अपने घर में स्थान दें तथा मुझे वात्सल्य प्रदान करें। जिससे कृष्ण को पुत्र रूप में पाया, अब उसके लिए और क्या पाना बाकी रहा होगा? आनन्द की अवधारणा तो कृष्ण के साथ ही आई।

हनुमान चालीसा में दो बार सुखों की प्राप्ति की चर्चा है फलों की प्राप्ति के बारे में मार्गदर्शन किया गया है क्योंकि राम और हनुमान ने मिलकर सभ्यता को वह चरम दिया जिसके लिए सतयुग का आगमन हुआ था। उस चरम के आगे क्या? चरम के आगे कृष्ण हैं और कृष्ण आनन्द हैं। आनन्द की अनुभूति ही कृष्ण के साथ उदित हुई क्योंकि इसके पहले तो फलों, सुख और दु:ख के बारे में बातें हो रही थी। कृष्ण ने कहा कि अब फलों से भी आगे जाना होगा। कर्म और फल को भी तुच्छ ही समझना, सुख और दु:ख में बरतना अब तुम्हें छोड़ना होगा। अब आगे की यात्रा करो। कृष्ण ही आनन्द की प्रणेता हैं, वही आनन्द के सागर हैं। कृष्ण ने ही परम तत्व के उस शाश्वत भाव को सभ्यता को प्रदान किया, उससे

परिचित करवाया। कृष्ण से पहले कोई आनन्द के बारे में जानता न था। कृष्ण ने आनन्द से पहले नन्द को भेजा क्योंकि नन्द का पहले से स्थित होना आनन्द के आने के लिए आवश्य था। दुनिया के धर्मों पर एक नजर डालिये। सभी स्वर्ग व नर्क की अवधारणा से जुड़े हुए हैं, कृष्ण ने मार्ग बताया कि स्वर्ग और नर्क से भी आगे चले जाना। गीता में उन्होंने स्वर्ग व नर्क की चर्चा करना भी उचित न समझा। कृष्ण ही आनन्द हैं और आनन्द दाल में स्थित वह जीरा है जिसका स्वाद लेकर आप दाल के स्वाद का अनुमान सहज ही लगा सकते हैं।

❖❖

❖❖

प्रेम का सम्बन्ध या प्रेम की रुचि मात्र आपकी चेतना में है। गुणों से अथवा शरीर से उसका कोई लेना-देना नहीं। इसी कारण वह सभी को समान रूप से वितरित हो सकती है। इसी कारण ईश्वर सभी के लिए समान रूप से उपस्थित हैं। वे व्यक्ति को गुणों व शारीरिक सौन्दर्य के हिसाब से नहीं उसे मात्र चेतना रूप में जानते हैं और चेतना सभी के लिए एक समान है। एक तुच्छ प्राणी की व एक हाथी की चेतना दोनों में ही कोई अन्तर नहीं है क्योंकि दोनों के होने का कारण मात्र एक है, उनकी जीवात्मा।

दुर्गुणों के कारण किसी एक का अपमान किया जाए और कभी गुणों के परिवर्तित हो जाने पर वह व्यक्ति ऐसी स्थिति में आ सकता है कि उसका सम्मान अतिआवश्यक हो जाए और कदाचित सम्भव भी है क्योंकि गुण तो परिवर्तनशील हैं परन्तु जब एक व्यक्ति को मात्र चेतना मान कर उसका सत्कार करते हैं और उसके गुणों को महत्व नहीं देते तब आप सम्मान और अपमान के बंधन से छूट जाते हैं। अब निन्दा करने की आवश्यकता न होगी क्योंकि हर एक प्राणी एक-समान ही होगा। इसी कारण कृष्ण कहते हैं कि एक जानवर, एक चाण्डाल व्यक्ति और एक ज्ञानी व्यक्ति में कभी अन्तर न करना।

❖❖

काम सम्बन्धी बातों में रुचि लेना, मन को उद्दीपन देने हेतु निमंत्रित करना है। यह ठीक उसी प्रकार से है जैसे कोई जानवर सो रहा हो, वह स्वयं में ही मग्न

हो उसकी आप में कोई रुचि न हो। सहसा न जाने क्यों, आप उसमें रुचि लेने लगते हैं। आप उसे जगाने का प्रयास करते हैं। उसके पास पड़ा भोजन उससे दूर हटाने का प्रयास करते हैं। उसे छेड़ते हैं व पत्थर मारते हैं। इस दशा में वह निश्चित ही प्रतिक्रिया करेगा। विशेषतया तब जब वो शक्तिशाली हो। मन एक अत्यधिक शक्तिशाली यंत्र है। यदि आप उसमें रुचि लेते हैं तो वो आप में दोगुनी रुचि लेता है। उसको बनाया ही इसी के लिए गया है कि वह रुचि उत्पन्न कर सके, उसकी सफलता ही उसमें छिपी है। वह आप में आकर्षण पैदा करे, आपको व्यस्त रख सके। मन की इसी प्रबलता के कारण यदि आप एकान्त में शान्ति से बैठे भी हों, तब भी विचार चलते रहते हैं, वे नहीं रूकते। इसे सुलाए रखने का सुन्दर उपाय यही है कि इसमें रुचि न लें क्योंकि रुचि लेना ही इसका खुराक है। यदि इसे खुराक कम मिलेगी तो ये अशक्त होकर सोया रहेगा।

❖❖

एक प्राणी के लिए मृत्यु का तात्पर्य है शरीर से सम्बन्ध समाप्त होना, विचारों से दूरी, कर्मों से दूरी, कर्त्तव्यों से दूरी, इच्छा पूर्ति की सम्भावना की समाप्ति, कर्ता से द्रष्टा हो जाना। यदि आप ध्यान से देखें तो ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् सिद्धार्थ में यही परिवर्तन आए थे। अब सिद्धार्थ जा चुका था, अब बुद्ध का उदय हो गया था। यह विचार कि मैं राजकुमार सिद्धार्थ हूँ, अब यह विदा हो चुका था। वह कर्तव्य जो उन्हें एक राजा के रूप में करने थे, उन कर्त्तव्यों से अब दूरी बन गई थी क्योंकि अब कर्ता ही विदा हो चुका था। अब कर्म करने की भी कोई संभावना न थी क्योंकि कर्म अर्थात् – 'कर मम' अर्थात् 'मेरे हाथ'। जब चेतना शरीर से अलग हुई उसी क्षण सिद्धार्थ को इसलिए विदा लेना पड़ा क्योंकि बुद्ध ये जान चुके थे कि कर अर्थात् हाथ तो किसी और के हैं और ऊर्जा किसी और की है तथा मेरा अब कुछ न बचा।

❖❖

एक राजकुमार के रूप में सिद्धार्थ के पास इच्छापूर्ति के सभी संसाधन उपलब्ध थे और उन्होंने इनका उपयोग किया भी क्योंकि कोई भी सामान्य प्राणी

इसका उपयोग करता ही है और उन इच्छाओं की पूर्ति ने ही अन्य इच्छाओं की संभावनाओं को समाप्त कर दिया। संभावनाओं के समाप्त होते ही उनकी आन्तरिक यात्रा अर्थात् प्रकाश की ओर यात्रा प्रारंभ हो चुकी थी। अब कर्ता न बचा था इस कारण वे द्रष्टा हो चुके थे। अब वे अवलोकन कर सकते थे और अपने अवलोकनों को सभ्यता के लिए प्रस्तुत कर सकते थे। यही उन्होंने जीवनभर किया भी, एक तटस्थ निरपेक्ष प्राणी की भाँति। अपने निरपेक्ष अवलोकनों को सभ्यता को समर्पित किया और उन्हीं अवलोकनों ने आगे आने वाले समय में असंख्य लोगों का मार्गदर्शन किया।

शरीर के रहते ही मृत्यु को प्राप्त हो जाना, एक अति दुर्लभ अवसर है। आप कर्म से अलग हो जाते हैं परन्तु क्रिया की संभावना अभी समाप्त नहीं होती।

❖❖

जितने भी तत्व रसायन विज्ञान में आपने मेंडिलीफ की आवर्त सारणी में पढ़े होंगे, उनमें से आधे तत्व तो आपके शरीर में ही उपस्थित हैं। रसायन विज्ञान में आप तत्वों व रसायनों का अध्ययन करते हैं। वे तत्व जिनमें जीवन नहीं परन्तु यह शरीर भी उन्हीं निर्जीव तत्वों से आकार लेता है। पानी जो शरीर का सबसे मुख्य अवयव है तथा शरीर के सभी उत्तकों में उपस्थित है, वह सर्व सुलभ है तथा आपके चारों ओर बिखरा पड़ा है।

अग्नि जिससे आप भोजन बनाते हैं, उसी प्रकार की एक अग्नि पेट में भी उपस्थित है जो खाए हुए भोजन को पकाकर उसे उनके अवयवों में तोड़ देती है। अग्नि का मुख्य कार्य पदार्थ को ऊर्जा से अवमुक्त कर उसे सामान्य तत्वों में तोड़ देना है। पदार्थ रूपी भोजन से ऊर्जा अवमुक्त होने पर शरीर उसे ग्रहण कर लेता है और वह तत्व जिनका शरीर में कोई उपयोग नहीं, मल के रूप में शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इस जीवित शरीर की रचना निर्जीव तत्वों से हुई है और प्राणों के शरीर छोड़ने पर यही तत्व मृत शरीर से विखण्डित हो पुन: निर्जीव बन जाते हैं। इस प्रकार निर्जीव से जीव तक की यह यात्रा पूर्ण होती है।

❖❖

वास्तव में किसी भी व्यक्ति का इस सृष्टि में कोई अस्तित्व है ही नहीं इसी कारण श्री कृष्ण आपको द्रष्टा बनने को कहते हैं। वे चाहते हैं कि आप भ्रम में न रहें। वे कहते हैं कि काम तो करते हो लेकिन बीच में रुक कर थोड़ा समय निकाल कर देखो भी। हो सकता है कि देखते-देखते, कभी न कभी तुम जान भी जाओ। यह जो मेरा अस्तित्व होने की एक भावना है, एक विचार है। क्या यह एक दिन टूट नहीं जाता? क्या हमारे पहले आए अरबों प्राणियों का यह विचार टूट नहीं गया? क्या इस भ्रम को जाना नहीं पड़ा? क्या एक व्यक्तित्व और उस व्यक्तित्व के चारों ओर बनाया गया ताना-बाना चकनाचूर नहीं हो जाता? क्या नेपोलियन, अलेक्जेन्डर, चंगेज खाँ और हिटलर को प्रकृति ने बख्श दिया? क्या वे नष्ट होने से बच गए? क्या सिन्धु घाटी की महान सभ्यता का अन्त नहीं हो गया?

डायनासोर, जिन्होंने पृथ्वी पर एक क्षत्र राज किया, क्या उनका नामोनिशान नहीं मिट गया? पूर्व में आए हुए सभी प्राणी (तुच्छ से लेकर महान तक) क्या उन्हीं निर्जीव तत्वों में टूटकर विखन्डित नहीं हो गए इसलिए कृष्ण ने कहा अवलोकन करो, कभी-कभी रुककर बस देखो, देखो कि तुम्हारे चारों ओर क्या हो रहा है क्योंकि जीवन तो तुम्हारे धरती पर आने से पहले भी था और तुम्हारे जाने के बाद भी चलेगा और यही जीवन तुम्हें एक बड़ा सुन्दर अवसर उपलब्ध करवाता है, थम कर देखने का प्रयास करो।

❖❖

असली पिता आत्मा व असली माता पंचतत्व है क्योंकि आत्मा ही वह कारण है जिसके चारों ओर शरीर निर्मित होता है। कारण के बिना कृति की संभावना नहीं और शरीर निर्माण भी इसलिए क्योंकि आत्मा के चारों ओर जीव है, वह जीव जो अपने गुणों की यात्रा पर है और उसी जीव की सहायता हेतु, आत्मा उसके साथ यात्रा करती है। इसी कारण वह जीव को एक शरीर उपलब्ध करवाती है, जिसका उपयोग कर जीव अपनी यात्रा को आगे बढ़ाता है। जन्म दर जन्म संतृप्ति प्राप्त करता हुआ अंतत: वह पूर्णतया संतृप्त हो, सत्य का ज्ञान प्राप्त करता है और उस क्षण व गुणों से अलग होने का निर्णय लेता है। गुणों से परे जाकर वह स्वयं को अपनी आत्मा को समर्पित कर देता है। अब वह शरीर का उपयोगी नहीं अपितु मात्र

उसमें उपस्थित है। तब आत्मा शरीर को निमित्त बना परमात्मा के आदेशानुसार विभिन्न कार्य सम्पन्न करती है।

चेतना की वास्तविक माँ है पंचतत्व, जिनसे इस शरीर का निर्माण हुआ। वे स्वयं ही उपस्थित होकर इस शरीर के निर्माण में भाग लेकर इसे चेतना को समर्पित करती हैं। इस प्रकार प्रकृति ही इस शरीर की निर्माणकर्ता है।

❖❖

सबसे आश्चर्यजनक तत्व है मिट्टी अर्थात् प्रकृति, यह वृक्ष को भी जन्म दे सकती है और मानव शरीर को भी, भले ही अप्रत्यक्ष रूप से तथा दोनों का पालन-पोषण भी कर सकती है व अन्त में दोनों को ही समेट लेती है। वृक्षों व मनुष्यों को आपस में परस्पर निर्भर बनाया गया है। शरीर में पाए जाने वाले सभी तत्व-कार्बन, ऑक्सीजन, हाईड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बनडाई ऑक्साइड, कैल्शियम, सोडियम, मैग्नीशियम, जिंक इत्यादि सभी इस भूमि में, इस मिट्टी में मिलेंगे। प्रकृति वृक्षों व प्राणियों का पालन-पोषण करती है। दोनों के लिए ही भोजन की व्यवस्था करती है। वृक्षों को उसने ही यह स्वतंत्रता दी कि वह स्वयं अपने शरीर में ही भोजन का निर्माण कर सकें, सूर्य की ऊर्जा द्वारा परन्तु फिर भी जल व पोषक तत्व तो उसको मृदा से ही प्राप्त होते हैं। वृक्षों को यह कार्य सौंपने के पीछे कारण यह था कि वे प्राणियों के लिए भोजन का निर्माण कर सकें और इस प्रकार शरीरधारी वृक्षों पर निर्भर हों। कदाचित् यही निर्भरता उन्हें प्रकृति को समझने में सहायता करेगी। वृक्षों और प्राणियों का अन्त काफी कुछ एक जैसा है। अन्ततः वे विखण्डित होकर इसी मृदा में मिल जाते हैं और प्रकृति भी उन्हें सहज ही अपने में समेट लेती है। प्रकृति से सुन्दर चमत्कार और क्या हो सकता है? क्योंकि प्रकृति बिना ध्यान आकर्षित किए ही, यह कार्य सतत् करती रहती है। इस कारण हम इस बात पर कभी ध्यान भी नहीं देते। हमारी तो उन जादुओं में रुचि है जो हाथ की सफाई है और जिससे किसी का भला भी नहीं हो सकता लेकिन हम इसे ही जादू स्वीकार करते हैं। मिट्टी से सुन्दर चीज क्या कोई और हो सकती है?

❖❖

करने योग्य सबसे कठिन कार्य कुछ भी न करना है। बस शान्तभाव से एक जगह बैठे रहना और बैठे-बैठे भी कुछ न करना, विचार भी नहीं। कोई सोच भी नहीं, इस बीच शरीर अपना कार्य करता रहेगा। धड़कनें चलती रहेगी, श्वास आती रहेगी, भोजन पचता रहेगा। सभी कुछ सामान्य तरीके से होता रहेगा परन्तु ये सब तो शरीर का कार्य है इसे अलग कर दीजिए। अगर ऐसी अवस्था प्राप्त कर ली जाए तो उसका महत्व क्या है? इतनी तुच्छ सी प्रतीत होने वाली घटना। यह जीवों को प्राप्त सबसे बड़ी घटनाओं में से एक है, शायद जीवन में इससे ज्यादा विशेष कुछ घट नहीं सकता था लेकिन इसमें ऐसा विशेष क्या है? ऐसा क्या खास हो गया? यह तो नींद के दौरान भी होता है। नींद में भी मैं कुछ भी नहीं सोचता। बस सोता रहता हूँ। दोनों घटनाओं में बहुत बड़ा अन्तर है। नींद तो आपको प्रदान की जाती है लेकिन होशपूर्ण रहते हुए विचारों से अलग हो जाना, आपका अपना प्रयास है। वह आपने स्वयं ही अर्जित किया है। किसी ने उसे आपको प्रदान नहीं किया।

उन पलों में जब आप कुछ भी नहीं सोचते, कोई भी विचार मन में नहीं होता। उस एक क्षण में स्वयं से अपने वास्तविक रूप से परिचित होते हैं। वही एक पल है जो हमें स्वतंत्र होने का अर्थ समझाता है। उन कुछ पलों का अनुभव आपको यह जानने में सहायक होता है कि जब मात्र आप होते हैं तो क्या होता है? उस पल में हम जान जाते हैं कि हम पर राज्य करने वाला मन ही होता है।

ध्यान दीजिए उन कुछ पलों में जब आपको कोई निर्देश नहीं दे रहा होता, आपको कोई भी कुछ नहीं बता रहा होता, आपको कोई भी भविष्य के सपने संजोने के लिए नहीं कह रहा होता, आपको कोई भी लक्ष्य निर्धारित करने के लिए, कुछ पाने के लिए नहीं कह रहा होता। आपको कोई भी खोए हुए पर शोक व्यक्त करने के लिए नहीं कह रहा होता, कोई आपको यह नहीं बता रहा होता कि लोग आपका सम्मान करते हैं कि नहीं और यदि करते हैं तो कितना? ऐसा कोई भी विचार मन में नहीं है कि आपने अब तक कितनी सम्पत्ति बना ली? यहाँ 'कोई' का तात्पर्य आपके मन से है। इस एक समय वह सूक्ष्म प्रवासी जो सदैव आप पर छाया रहता है। बस वही एकमात्र अनुपस्थित है और उसकी अनुपस्थिति ही आपको पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान कर रही है।

❖❖

स्वयं को कर्ता समझना गुणों में आसक्त बनाता है। यह मानना कि मैंने किसी गरीब को खाना खिलाया, यह मानने को मजबूर करेगा कि मैं एक अच्छा इंसान हूँ और जैसे ही मन यह घोषणा करेगा कि मैंने इस गरीब को खाना खिलाया तो 'मैंने' का तात्पर्य आप तुरंत स्वयं से ले लेंगे क्योंकि मन से तो पीछा छूटा नहीं अभी। आपके स्वीकार करते ही मन दूसरी घोषणा करेगा; मैं एक अच्छा इंसान हूँ और तुरंत ही आप इसे लपक लेंगे। हम इस बात को तुरंत ही मान लेंगे कि हाँ मैं अच्छा इंसान हूँ, इसमें क्या दो राय है? अच्छा इंसान ही दूसरों को खाना खिला सकता है। अपना खुद का पैसा, कमाया हुआ पैसा, खर्च करके मैंने खाना खिलाया। कौन करता है ये सब और करते भी हैं तो कितने लोग करते हैं तो निश्चित तौर पर अच्छा तो हूँ ही मैं। मन बड़ा ही परिष्कृत और चतुर कार्यक्रम है। जब वह देखेगा कि चेतना अच्छे गुणों में रुचि ले रही है तब वह अच्छाई का उद्दीपन देना प्रारम्भ करेगा। अपनी ही अच्छाई के पीछे वह दूसरों की निन्दा को भी छुपाकर प्रस्तुत कर देगा और वह भी चेतना द्वारा स्वीकार कर लिया जाएगा।

गुणों में आए परिवर्तन के साथ ही मन उनसे साम्यता बैठाते हुए विचारों में भी परिवर्तन कर दिया करता है। यह सिलसिला यूँ ही चलता रहेगा। कर्ता को इस उदाहरण से इस प्रकार समझा जा सकता है। सूर्य से ऊर्जा आई और वह ऊर्जा आपके गुणों से होते हुए अन्ततः शरीर के माध्यम से अभिव्यक्त हो गई क्योंकि हम गुणों में उलझे हुए हैं इसलिए मार्ग में हम भी खड़े थे और बीच में खड़े होने के कारण हमें यह लगा कि यह कार्य हमारे द्वारा ही हुआ और इस प्रकार हम कर्ता बन गए।

अब दूसरी परिस्थिति के बारे में विचार कीजिए। सूर्य से ऊर्जा आई गुणों से होते हुए वह शरीर के माध्यम से अभिव्यक्त हो गई परन्तु इस बार मार्ग में आप नहीं खड़े थे। आपने गुणों से आसक्ति छोड़ दी। आप किनारे आकर खड़े हो गए क्योंकि गुण भी हमारे अस्तित्व का भाग नहीं है। माया को त्रिगुणी कहा गया और गुण माया का ही एक भाग है क्योंकि हम स्वयं माया से ही जुड़े हुए हैं। अभी तक माया से दूरी बन न पाई इस कारण गुणों को हम अपना ही भाग मानकर जीते

रहे। जब आप किनारे आकर खड़े हो गए तब आप में उसी ऊर्जा को शरीर से अभिव्यक्त होते हुए देखा।

इस बार आप जान गए कि यह अपने आप होने वाली क्रिया है कोई इसे करता ही नहीं क्योंकि इसके होने का कोई विशेष मन्तव्य ही नहीं और उस एक क्षण में आप कर्ता से दृष्टा बन जाते हैं। स्वयं को द्रष्टा समझना इस समस्या को दूर रखता है। समस्या अर्थात् अपने कर्ता होने का विचार।

❖❖

बुद्ध को प्रकृति के मध्य ही ज्ञान प्राप्त हुआ। ओशो को ज्ञान प्राप्त हुआ तो वे वृक्ष के नीचे क्यों बैठे हुए थे? कारण एक है प्रकृति माया का भाग नहीं है। माया तीन प्रकार के गुणों में बरतती है। सत्य, रज व तम लेकिन ये तीनों ही गुण प्रकृति में स्थित नहीं हैं और इसी कारण प्रकृति में कोई भावना नहीं है। हाँलाकि ये गुण जन्म लेते हैं प्रकृति से ही। प्रकृति में भावना का उतार-चढ़ाव नहीं है। मात्र एक भाव है शान्ति का इसी कारण संन्यास आश्रम में, संन्यास लेकर वन गमन को प्राथमिकता दी गई। यही कारण है सत्य को जानने की इच्छा रखने वाले अधिकतर साधक हिमायल की ओर गमन कर जाते हैं। यही कारण है व्यक्ति प्रकृति में जाकर शान्ति लाभ करता है।

❖❖

कर्तव्य अर्थात् कर्ता + व्यर्थ। कर्ता बनने का भाव व्यर्थ है। समाज कर्ता बनाकर कर्तव्य निभाने को कहता तो जरूर है लेकिन वह कर्तव्य शब्द का अर्थ नहीं बताता। समाज का यह दायित्व भी नहीं कि वह आपको इसका अर्थ बताए। वह आपको शब्द बताता है और कर्तव्य शब्द के चारों ओर जो चित्रण होता है वह आप स्वयं ही कर लेते हैं। समाज का यह कर्तव्य भी नहीं कि इस शब्द का अर्थ बताये क्योंकि समाज तो आपके गुणों की यात्रा में सहायक है वह आपके गुणों से होते हुए अन्ततः आपको आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। समाज मात्र एक चरण है। यह कोई मंजिल नहीं, यह कोई गंतव्य नहीं और इस यात्रा से गुजरते हुए आप कर्तव्य शब्द का मूल अर्थ समझ जाते हैं क्योंकि कर्तव्य शब्द स्वयं यह बताता है कि यदि कर्ता बनकर रहे तो प्रथम कार्य होगा मोह के एक जाल को

बुनना। यह कर्तापन का अगला चरण है और जिस दिन मोह को झटका लगेगा, जरा सी दरार भी आएगी। उस दिन यह ज्ञात हो जाएगा कि कर्तापन ही व्यर्थ था।

❖❖

स्त्रियाँ जीवन के एक नियत समय पर रजोनिवृत्ति से गुजरती हैं। रजोनिवृत्ति अर्थात् अब इस समय के पश्चात् सन्तान उत्पत्ति संभव न होगी। यह है रजो गुणों के एक चरण पूर्ण होने की घोषणा अर्थात् यहाँ पर शरीर उत्पन्न करने की प्रक्रिया समाप्त होती है, पूर्ण होती है। रजो गुण अर्थात् वे गुण जो मनुष्यों में सामान्यत: ज्यादा अनुपात में उपस्थित होते हैं जैसे मनुष्य होने का भाव, मन के वशीभूत होने का भाव, मोह का भाव, अर्थ कमाना तथा कामनाओं की पूर्ति के प्रयास के भाव। पूरे मासिक धर्म की प्रक्रिया के उपस्थित होने का कारण यह है कि स्त्रियाँ प्रकृति के मूल भावों से परिचित हो सकें। जिस प्रकार प्रकृति जन्म देती है, पालन-पोषण करती है तथा अन्त में आश्रम भी देती है।

रजोनिवृत्ति से पहले संतान उत्पत्ति की पूर्ण सम्भावनाएँ होती हैं परन्तु इसके बाद पालन-पोषण का चरण आता है। अब पूरी ऊर्जा बच्चों के पालने में, उन्हें बड़ा करने में, उनके विकास में, उनकी सुरक्षा में, उनके लिए भोजन का प्रबंध करने में व उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में उपयोगी होगी। प्रकृति मातृत्व के हर पक्ष से परिचित कराने की प्रक्रिया एक ही जन्म में पूर्ण करना चाहती है। प्रकृति में रजोनिवृत्ति जैसी कोई घटना नहीं क्योंकि प्रकृति मन से परे है। मन उसे नहीं छूता, परेशान नहीं करता। वह एक ही समय में जन्म भी दे सकती है और पालन-पोषण भी कर सकती है। जन्म देने हेतु उसे पालन-पोषण के कार्य को अवरुद्ध न करना होगा। वह दोनों ही कार्यों में एक साथ समर्थ है।

❖❖

समय अर्थात् सकारमय; जो सकार में लीन है। सकार वही है जिसके पास आकार है। जो पदार्थ है, जो पदार्थिक जगत में रुचि व्यक्त कर रहा है, वही सकार में लीन है, वही समय से बद्ध भी है। जीवन में पहले समय आगे व प्रकृति पीछे चलती है। सब कुछ सकार ही तो है हमारे आस-पास, आगे-पीछे, चारों ओर और हमारा हर कर्म, हर प्रयास उस आकार हेतु ही है। यही तो मानते है न हम! तो

जिसका आकार नहीं, वह तो कुछ है ही नहीं परन्तु दिन है तो रात है, पुरुष है तो स्त्री है, सुबह है तो शाम भी, धूप है तो छाँव भी, सुख है तो दुःख भी। उसी प्रकार आकार भी है और निराकार भी।

जब सृष्टि न थी तो क्या था? कुछ तो अवश्य था और ये वैज्ञानिक भी कहते हैं। एक महाविस्फोट से सृष्टि का जन्म हुआ। तो उस जन्म से पहले भी तो कुछ रहा ही होगा। ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती, वह सिर्फ आकार बदलती है, रूप बदलती है। जिस रूप में हम उसे जानते हैं उससे इतर भी, तो कोई रूप रहा ही होगा

❖❖

मनुष्य के लिए समय आगे चलता है और प्रकृति तो ना तीन में है ना ही तेरह में। प्रकृति के लिए वक्त ही किसके पास है क्योंकि पाने के लिए कितना कुछ है, कितने लक्ष्य, कितने मार्ग, कितने ही आकर्षण परन्तु जीवन में एक समय वो भी आयेगा जब समय पीछे चलेगा और प्रकृति आगे। इस जीवन में ना सही, किसी और जीवन में लेकिन यह तो होना ही है, हर एक के साथ।

❖❖

हमें पिछले जन्म की कोई घटना याद है? नहीं न! तो क्यों हम इस जन्म की घटनाओं को सोचकर समय व्यर्थ कर रहे हैं? आगे चलकर ये वैसे भी याद नहीं रह जाने वाली है। घटनाओं पर माथापच्ची करने का तात्पर्य है समय का घटना। पृथ्वी पर जीवन के प्रारम्भ से लेकर अभी तक, इन करोड़ों वर्षों में, न जाने कितनी ऐसी घटनाएँ प्रतिक्षण चारों ओर घटी होंगी लेकिन अब उनका क्या मूल्य रह गया। अब हममे से किसी को उसके बारे में क्या पता है? जन्म के पहले क्या घटा किसी को क्या पता, मृत्यु के पश्चात् वैसे भी कुछ याद नहीं रह जाता तो आप चाहें तो उनके बारे में सोचने विचारने, बातचीत करने और निष्कर्ष निकालने में समय व्यतीत कर सकते हैं क्योंकि इसकी पूर्ण स्वतंत्रता है परन्तु इसका निष्कर्ष क्या निकलेगा?

❖❖

दो उपाय है या तो ऊर्जा पदार्थ के परिवर्तनीय स्वरूप में लगाई जाए; जब

वह स्थान परिवर्तन के साथ ही आकार भी परिवर्तित करने की योग्यता रखती है। ऊर्जा के पदार्थ के साथ जुड़ने से एक नया आकार निर्मित होगा और फिर उस नए आकार में आकर्षण। ऊर्जा के रूप परिवर्तन के साथ, आकार भी परिवर्तित हो जाएगा। एक प्रसिद्ध मोबाइल कम्पनी ने एक सॉफ्टवेयर डेवलप किया जिसमें उपभोक्ता उस सॉफ्टवेयर से सीधे बात कर अपने प्रश्नों के उत्तर जान सकते हैं। प्रश्न जो आस-पास की घटनाओं से लेकर विशेष की घटनाओं तक, होटल और रेस्टोरेन्ट ढूँढे जाने के बारे में या कोई व्यक्तिगत प्रश्न ही और उन्होंने उस सॉफ्टवेयर को स्त्री का नाम प्रदान किया और एक स्त्री की आवाज और धीरे-धीरे होने लगा ये कि उस सॉफ्टवेयर से बात करते-करते लोग उसी के आकर्षण में बँधने लगे। उन्हें ही वह स्त्री समान लगने लगी। कुछ तो उससे ही प्रेम कर बैठे। वह जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं। कल जब कम्पनी नया सॉफ्टवेयर डेवलप कर लेगी, उसे एक नया नाम दे देगी। वही लोग धीरे-धीरे इसके आकर्षण से छूटकर उस नये नाम के आकर्षण में बँधना प्रारम्भ कर देंगे और इस प्रकार ये सब तो चलता ही रहेगा। आप चाहें तो अपनी ऊर्जा और समय इसमें लगा सकते हैं लेकिन एक विकल्प और है, या तो उस शाश्वत स्वरूप को जाना जाए तथा अपना समय उसको प्राप्त करने में व्यतीत किया जाए जो परिवर्तित नहीं होता, जो सदैव था और सदैव रहेगा। जो आदि से पहले था और अन्त के बाद भी होगा।

❖❖

स्वादिष्ट, रुचिकर, सस्ते या महंगे भोजन से जब ऊर्जा प्राप्त कर ली जाती है तब उसे मल के रूप में घृणा के साथ त्याग दिया जाता है। ठीक उसी प्रकार जब शरीर से आत्मा रूपी ऊर्जा निकल जाती है तब उसे चाण्डाल के सुपुर्द कर दिया जाता है। अर्थ स्पष्ट है- पदार्थ प्रमुख नहीं, प्रमुख है तो ऊर्जा। सृष्टि रूपी पदार्थ का जन्म हुआ उसी अक्षय ऊर्जा से। वह ऊर्जा जो सृष्टि से पहले विद्यमान थी, जो सृष्टि के बनने का कारण है। प्राणियों की पूरी जीवनयात्रा मात्र इसी ऊर्जा की यात्रा है। ऊर्जा के माध्यम से ही हम भावनाओं से भाव और फिर 'भा' अर्थात् प्रकाश तक की वृत्ताकार यात्रा पूरी करते हैं। वह प्रकाश जो प्रारम्भ में भी था और अन्त के बाद भी होगा।

जो भोजन स्वादिष्ट, रूचिकर, दर्शनीय व सुगन्धित था, जिसे मुख के रास्ते ग्रहण किया गया। वह शरीर में जाकर अपना रूप परिवर्तित कर लेता है। शरीर उससे ऊर्जा लेकर शेष भाग को बाहर निकालता है। ऐसा क्या हो गया भोजन के साथ शरीर में कि वह घृणित हो गया? ऐसा क्या हो गया उस भोजन के साथ, जिसे पहले मनुष्य ने ग्रहण किया और बाद में वह सुअरों का भोजन हो गया? इसका तात्पर्य यह है कि यह पदार्थ रूपी शरीर भी यह बात जानता है कि ऊर्जा ही प्रमुख है। जैसे एक मशीन वाह्य ऊर्जा के बिना नहीं चल सकती, उसी प्रकार यह शरीर रूपी यंत्र भी बिना किसी ऊर्जा के कार्य नहीं कर सकता।

प्रकृति ने मल अथवा मैला की व्यवस्था इस लिए की कि व्यक्ति पदार्थ के विभिन्न रूपों से परिचित हो सके, ताकि वह जान सके कि पदार्थ यदि आकर्षक है तो घृणित भी हो सकता है। अन्तर बस अणुओं की संरचना के बीच होगा। अणुओं की एक विशेष संरचना पदार्थ में सुगन्ध पैदा कर सकती है और उस संरचना के परिवर्तित होते ही दुर्गन्ध आनी प्रारम्भ हो जाएगी। प्रकृति ही दिन में पदार्थ के दो विभिन्न स्वरूपों से परिचय करा देती है– 'भोजन तथा मल'। देर बस शरीर से होकर गुजरने भर तक की होती है और स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। प्रकृति इस प्रकार हमें पर्याप्त संकेत देती है। पदार्थ के पीछे भागने से कुछ विशेष नहीं मिलेगा क्योंकि वह वैसे ही परिवर्तनशील है। भोजन से प्रेम करोगे और मल से घृणा किन्तु दोनों में अन्तर कुछ विशेष नहीं होगा, मात्र अणुओं की संरचना में परिवर्तन। रोज इस उदाहरण को अपने सामने होता हुआ देखने के बाद भी हमारी रुचि जीवनभर पदार्थ में बनी रहती है।

❖❖

यज्ञ का आयोजन होने पर, अग्नि प्रज्वलित होने के बाद ही आहूति दी जाती है। अत: जब तक पेट की आग (जठराग्नि) न जले अर्थात् भूख न लगे, खाना उचित नहीं। यह ठीक उसी प्रकार से होगा जैसे बिना अग्नि प्रज्वलित किए हुए हवनकुण्ड को आहूति से भर देना और उसके पश्चात् प्रतीक्षा करना कि अब अग्नि प्रज्वलित होगी। वह ऊर्जा अवमुक्त करेगी, तब जाकर यह सामग्री होम होगी। यदि हवनकुण्ड भर चुका हो तो अब अग्नि के प्रज्वलित होने हेतु वायु और स्थान ही कहाँ?

अग्नि के जलते रहने के लिए आहूति जितनी प्रमुख है उतनी वायु भी है इसीलिए कहा जाता है कि आधे पेट भोजन से, एक चौथाई जल से तथा एक चौथाई खाली छोड़ देना ही ठीक है। आवश्यकता से अधिक आहूति यदि यज्ञकुण्ड में जमा हो गई और अग्नि प्रज्वलित न हो पाई, तब क्या होगा? उस दशा में अर्पित की गई आहूति को वापस बाहर निकालना होगा, यज्ञकुण्ड को खाली करना होगा। तब कहीं जाकर यज्ञकुण्ड अग्नि को स्थान देने हेतु पुन: पवित्र हो पायेगा। पेट भी इसी प्रकार है; आवश्यकता से अधिक भोजन जब शरीर पचा नहीं पाता तब वह उसे उल्टी के माध्यम से शरीर से बाहर निकाल देता है।

गीता कहती है बिना यज्ञ किए भोजन करना पाप को खाने जैसा होगा। आशय इतना ही है कि जब तक आपका यज्ञकुण्ड तैयार नहीं, अग्नि की व्यवस्था नहीं तब तक यज्ञ प्रारम्भ करना उचित न होगा। यदि किसी प्रकार किया भी गया तो वह ठीक नहीं होगा। ठीक वैसे ही जैसे अपने हिस्से का श्रम न कर लें, अपना कार्य पूर्ण न कर लें, अपने कर्म को निष्पादित न कर लें, उस दशा मं भोजन करना उचित नहीं क्योंकि अन्न का प्रयोजन ही यह है कि वह बल व सत्व प्रदान कर कार्य को करने हेतु ऊर्जा अवमुक्त कर सके। यदि कार्य नहीं हुआ तो भोजन करने का प्रयोजन भी सफल नहीं होता।

❖❖

लाभ एक रोमांचक शब्द है। लाभ की बातें होते ही तरंगे उठने लगती हैं। किसी गुरू जी ने यह कह दिया कि जाओ लाभ होगा। तब तो गुरूजी की दक्षिणा पक्की है। लाभ होगा अर्थात् लाओगे तो भरना होगा। अब प्रकृति तो हर्जाना वसूलती नहीं। आप उससे कुछ भी ले लीजिए। वह उसके बदले में कुछ नहीं चाहती। वह तो बस प्रदान करती है। जहाँ लाभ की बात होती है वहाँ माया ही होती है। माया ही व्यापारी है, वही व्यापार कर सकती है। लाभ और हानि उसके ही तो पक्ष हैं और हम लाइन में खड़े उसके ग्राहक। जब भी हम उसके पास पहुँचते हैं तो लाभ या हानि, दोनों में से किसी एक में से कुछ निकाल कर हमें दे देती है।

माया एक व्यापारी है, वह यूँ ही आपको कुछ नहीं देती। यदि कुछ देती है तो निश्चित ही बदले में कुछ ले भी लेती है। ध्यान दीजिए यदि आपको लाभ हुआ

है तो या तो आपका प्रयत्न या आपका समय, पूँजी या ये जीवन रूपी अवसर, कुछ ना कुछ उसके बदले में उसने ले ही लिया होगा।

❖❖

हानि अर्थात् हार भी निभानी होगी। पृथ्वी दो ध्रुवों में बँटी है, उत्तरी और दक्षिणी। हमारी जीवन यात्रा भी दो ध्रुवों के बीच चलती रहती है जैसे स्त्री व पुरुष, सुख और दु:ख, लाभ और हानि, आना और जाना। यदि दो ही ध्रुव हैं–दो ही जगह हैं या दो ही गन्तव्य हैं तो मुलाकात तो दोनों से ही होगी। भले ही एक पसंदीदा हो और दूसरे के पास जाना न चाहें। जीवन उस चक्र के समान है जो इन्हीं दो ध्रुवों के बीच से आगे बढ़ता रहता है। इस प्रकार हानि आई है तो लाभ भी होगा। यदि लाभ है तो हानि से भी बचा नहीं जा सकता है। विशेषत: तब जब जीवन भी व्यापार रूप में चल रहा हो, पाने और खोने का ही खेल चल रहा हो। यदि इसी कारणवश जीत आई है तो हार भी निभानी होगी, हानि कभी न कभी उठानी ही होगी।

❖❖

अच्छे हो या बुरे, होते तो गुण ही हैं। अपनी सुविधा के लिए उन्हें पहचानने के लिए हम उनका नामकरण कर दिया करते हैं। गुण निश्चित ही गूढ़ हैं, इतने गूढ़ कि उन्हें बिना समझे अधिकांशत: हम अपनी जीवन यात्रा भी पूरी कर लिया करते हैं और अंत तक नहीं समझ पाते कि हम गुणों के वन से गुजरते हुए, उन्हीं में भटकते हुए, उन पर ही ऊर्जा खर्च करते हुए, ये भी न समझ पाए कि हम कर क्या रहे थे। गुण है तो कर्म है, इसी कारण कृष्ण कहते हैं कि कर्म की गति बड़ी गूढ़ है।

अच्छे या बुरे नाम हमने इसलिए दे दिए क्योंकि एक विशेष गुण के बढ़ते जाने पर उनका प्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है। इसी कारण समाज कुछ गुणों को प्रोत्साहित और कुछ गुणों को हतोत्साहित करता है। वो कुछ विशेष कर्मों को अच्छा समझता है और कुछ कर्मों को घातक। ऐसे ही हानिकारक गुणों में रुचि बढ़ते जाने पर व्यक्तियों को हतोत्साहित करने के लिए दंड–संहिता और अदालतें होती हैं ताकि समाज के वर्तमान स्वरूप को बनाकर रखा जा सके। समस्या कम

हो और लोग नियमों का पालन करें।

❖❖

कल्याण हो अर्थात् कैवल्य का कारण उपस्थित हो। कैवल्य अर्थात् आप केवल अकेले हों, जब मन आपको न सताए। जब सुख और दु:ख दोनों का कोई कारण उपस्थित न हो, जब आप मन की बातों को मानने के लिए बाध्य न हों और जब मन साथ न होगा तो कौन साथ होगा? निश्चित तौर पर आपकी आत्मा! अब आत्मा की संतुष्टि का भाव आप भी महसूस कर सकते हैं। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि कैवल्य हो, ऐसा नहीं कहा गया। कहा यह गया है कि कैवल्य का कारण उपस्थित हो। वह कारण आपको सुख ही दे यह आवश्यक नहीं। कारण का उपस्थित होना, मार्ग का उपस्थित होना है लेकिन मार्ग पर चलना तो होगा और मार्ग कोई आवश्यक नहीं कि सुखों से भरा हो क्योंकि आप कैवल्य के मार्ग पर परिधि से दूर जा रहे हैं। परिधि पूर्ण प्रयास करेगी आपको रोकने का और प्रयासों की धार को मन्द करने के लिए जो साधन होगा, उसका वेग भी प्रबल होगा। इस कारण दु:ख और कष्ट पहुँचना अति सम्भावित है। कारण का उपस्थित होना ही माया के चरम से परिचित करवाना है। हो सकता है कि माया का सुन्दर भाग ही लिखा हो, उसका कोई रूप अनछुआ रह गया हो। हो सकता है कई ऐसे अनुभवों से गुजरना पड़े जो अन्तत: आपको केन्द्र की तरफ ढकेल दे। अत: कारण के लिए तैयार रहना अर्थात् हर परिस्थिति के लिए तैयार रहना।

❖❖

जैन धर्म के दृढ़ साधक शाम ढलने के बाद भोजन करना पसंद नहीं करते। यह प्रथा प्रकृति से प्रेरित लगती है, वृक्ष दिन में फोटोसिन्थेसिस के द्वारा भोजन बनाते हैं और यह प्रक्रिया सूर्य की रोशनी में होती है। इसी कारण यह सूर्य ढलने के बाद नहीं हो सकती परन्तु महावीर के समय फोटोसिन्थेसिस का ज्ञान नहीं था। उस समय तक इसे विज्ञान ने प्रतिपादित नहीं किया था। महावीर ने अवलोकन द्वारा इस तथ्य को प्राप्त किया होगा। जैन धर्म से जुड़े लोगों में यह प्रथा आज भी पाई जाती है। इसका कोई धार्मिक कारण नहीं, पूर्णतया वैज्ञानिक है। वे जानते हैं, शाम

को सोने के २ से ३ घण्टे पहले भोजन कर लिया जाए तो भोजन पचने का पर्याप्त समय मिल जाता है और इस कारण पाचनतंत्र पर अनावश्यक बोझ नहीं पड़ता। इसी कारण अंग्रेजों में यह कहावत है– आपका नाश्ता एक राजा के नाश्ते के समान होना चाहिए।

हम भारतीय इस कथन का आँख मूँद कर पालन करने के लिए तैयार हैं, भले ही हम रात में १० या ११ बजे ही खाना खाएँ और खाना पचे ना क्योंकि इसे पचने के लिए न समय ही मिला और खाने के बाद न चलना ही हुआ। लेकिन अंग्रेजों ने कहा है तो ब्रेकफास्ट जोरदार करना ही पड़ेगा। अंग्रेज ब्रेकफास्ट इसलिए कर रहे हैं क्योंकि वह भोजन को शाम को ही कर लेते हैं। क्यूँकि हम विवेचना से चूकते जा रहे हैं, अत: जो कुछ भी हमें बताया जाता है, हम उसे वैसे ही स्वीकार कर लेते हैं। अब चाहे मन बताए या पश्चिम परन्तु एक सामान्य स्तर की विवेचना ही आपको बता देगी कि भोजन सोने से जितना पहले किया जाए उतना ही उचित होगा।

❖❖

अन्न और मन दोनों ही चचेरी बहनें हैं, दोनों का ही आपस में सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे पर परस्पर निर्भर हैं। निश्चित ही मानव के खेती प्रारम्भ करने के बाद सांसारिक जगत में और प्रगति हुई क्योंकि तब तक हम अन्न उगाने लगे थे। हमारा मन अब सक्रिय हो रहा था। अब वह अपने कार्य में लगना प्रारम्भ कर चुका था। अन्न के द्वारा प्राप्त बल और मन को प्राप्त ऊर्जा, सांसारिक प्रगति में सहायक है। इसी कारण गीता कहती है कि यह शरीर अन्न द्वारा निर्मित है। जो साधक अन्न छोड़कर दूध और फल पर ही जीवन यापन का संकल्प लेते हैं, वे वास्तव में मन को अवरुद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं। जो अन्तत: उनकी यात्रा में, उनकी साधना, उनके मार्ग सहायक होगा।

गीता में कृष्ण ने इसकी बड़ी छोटी चर्चा की है और बाकी सब आपके विवेक पर छोड़ दिया है। वे इसे सतह पर से छूते हुए निकल गए और बाकी छोड़ दिया ताकि एक दिन स्वयं आप इस तथ्य को प्राप्त करें।

❖❖

अन्तर अर्थात् अन्त: + पुर, वास्तव में अन्त:पुर हमारा कौन सा भाग हो सकता है? वह हिस्सा जो गहरे कहीं भीतर दबा हुआ है। शरीर रूप में हम जिस तरह से बरतते हैं उससे अलग। अलग इसलिए क्योंकि बच्चे जिन्हें अपने शरीर और अपने व्यक्तित्व का होने का अहसास नहीं होता, वे तथा हम, जो अपने शरीर और व्यक्तित्व के प्रति अत्यधिक सतर्क हैं, दोनों ही प्रकार की अवस्थाओं व उनके बरतने में जमीन-आसमान का अन्तर है। एक साधक की पूरी साधना इसी अन्त:पुर से अपना सम्बन्ध स्थापित करने की है। वह साधता है मन को लेकिन मन को साधते ही अन्त:पुर का प्रकाश स्वत: ही उपलब्ध हो जाता है। अन्त:पुर को कैसे साधा जा सकेगा? आत्मा को कैसे साधा जा सकेगा? साधा तो उसे ही जा सकेगा जो सधने के लिए तैयार हो। जो प्रयत्न न करवाये, मेहनत न करवाये, जो ना-नुकुर न करे, अड़ न जाए। जो सदा से समर्पित है। उसे साधने की क्या आवश्यकता होगी। उसके पास पहुँचने मात्र की देरी है। वैसे ही जैसे नदी के पास पहुँचने पर आप उसका जल पी सकते हैं।

❖❖

लाख प्रयास कर लिया जाए लेकिन तब तक कार्य पूरा नहीं होता जब तक बल लग रहा हो लेकिन विस्थापन न हो रहा हो। इस दशा में कार्य हुआ नहीं माना जाएगा। किसी अरूचिपूर्ण क्रिया अथवा कर्म को निष्फल अथवा असफल कर देने हेतु, मात्र यही करना होगा कि प्रतिक्रिया न दी जाए क्योंकि यदि कोई क्रिया कर रहा है तो वह वास्तव में आपकी प्रतिक्रिया चाहता है। वह देखना चाहता है कि आपके चेहरे पर किस प्रकार की भावनाएँ आती हैं। प्रयास को, यदि भावना की प्रतिक्रिया भी न मिले तो वह निश्चित ही हतोत्साहित हो जाएंगी। शारीरिक रूप से प्रतिक्रिया तो दूर उसकी क्रिया के उत्तर में आपने चेहरे की भावभंगिमा भी बदलनी उचित न समझी। आपने उसे इतना महत्व भी नहीं दिया। यह किसी भी विवेकी व्यक्ति को हतोत्साहित कर देने के लिए काफी है और जिसके पास विवेक नहीं उसके स्तर पर उतरकर कौन प्रतिक्रिया देना चाहेगा?

❖❖

जब आदेश ही लेना है, बातें ही सुननी हैं उन अमल ही करना है तो परिधि

की क्यों सुनें? किसी और की बातें क्यों सुनी जाए? मन की बातें क्यों सुनी जाए, केन्द्र की क्यों नहीं अर्थात् अपनी आत्मा की बातें क्यों न सुनी जाए?

मन को अपने भीतर का हिस्सा मत मान लीजिएगा। यही आपकी परिधि है, यही वास्तविक परिधि है। शरीर मात्र वही करता है जो उसे कहा जाए। चाहे मन कहे या आत्मा कहे। इसी कोई अपनी व्यक्तिगत रुचि नहीं, यह पूर्णत: निरपेक्ष है। यह बस एक साधन है; दूसरे के आदेशों के पालन करने का मात्र एक यंत्र, एक वाहन। सुनने का प्रयास क्यों न करें, उस आवाज को जो कहीं सहजता से हमारे लिए उपलब्ध थी बचपन में। एक छोटे बच्चे के लिए अपनी आत्मा की आवाजें सुनना कहीं ज्यादा सहज व संभव है। क्यों न हम उसी स्थिति को पुन: प्राप्त करने का प्रयास करें? जब मार्ग दर्शक हमारे पास उपलब्ध है तो क्यों न हम उसका उपयोग करें? जब हमें बताने वाला अन्दर बैठा है तो हम बाहर उसकी खोज क्यों करें? क्यों ना उसी से पूछ लें? अपने सभी उत्तर क्यों ना जान लें, अपनी सभी समस्याओं का हल उसी से क्यूँ न पूछें?

❖❖

णमोकार शब्द मिल कर बनता है- ण, म, ऊँ तथा कार अर्थात मेरे होने का कारण वही है जो ऊँ के होने का कारण है अर्थात् परम तत्व के होने का कारण ही इस सृष्टि हर प्राणी के होने का कारण है। योनियाँ चाहे जितनी भी क्यों न हों, लाखों-लाख और हर एक योनि में न जाने कितनी विभिन्नताएँ हैं लेकिन इन सभी विभिन्नताओं, जातियों-प्रजातियों, भाषाओं-सभ्यताओं, संस्कृति-विचार, रहन-सहन, खाना-पीना, बात-व्यवहार के होने का कारण मात्र एक है और वही ओम के होने का कारण है। सृष्टि के होने का कारण भी वही है और णमोकार के होने का कारण भी वही है।

❖❖

कैलाश शब्द बनता है कैवल्य + लाभ + शांति से। मनुष्य शरीर प्राप्त होना, वैसे भी भाग्यवान होना माना गया है, मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या उसकी चेतना का मन के साथ लीन होना है। यही उसकी परतंत्रता है। जीवात्मा द्वारा शरीर कामनाओं के वशीभूत होकर ही ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार मन के अधीन

होने से जीवन मात्र लाभ व हानि में ही बरतता है। इसी कारण कहा जाता है कि कैलाश पर शिव विराजते हैं। वह कैलाश कहीं और नहीं, मात्र आपके शरीर में ही पा सकने वाली अवस्था है। वास्तविक कैलाश तो उस अवस्था का एक संकेत मात्र ही है।

कैवल्य प्राप्ति की स्थिति में आप मनुष्य होने के रहस्य को जान सकते हैं क्योंकि इस स्थिति में आप स्वतंत्रता का अनुभव करते हैं। अब आप अवलोकन कर सकते हैं। अब आप कोल्हू के बैल की तरह मात्र दूसरे के आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य नहीं हैं। अब आप बगल में बैठकर दूसरे कोल्हुओं को चलते हुए देख सकते हैं और उससे अपनी विवेचना द्वारा निष्कर्ष प्राप्त कर सकते हैं। बेड़ी तो बेड़ी ही है अब वो चाहे प्लेटिनम की हो, सोने की हो, ताम्बे की हो या लोहे की लेकिन वो करती एक ही काम है बंधक बनाना। जिनके पास सोने की बेड़ियाँ हैं वह इस बात में मग्न हैं कि मेरे पास धन है। जिनके पास प्लेटिनम की बेड़ियाँ हैं वे तन, धन, सम्पत्ति और सम्मान की बेड़ियों में बँधे हैं। ताँबे वाला अपना सामान्य जीवन जी रहा है परंतु सोने की बेड़ियों के लिए उसका आकर्षण धीरे-धीरे बढ़ता है। ये तीनों तरह की बेड़ियाँ उपस्थित हों तो लोहे की बेड़ियाँ किसे चाहिए?

❖❖

यह शरीर जो पुण्यों के प्रताप से अन्ततः कर्म किए जाने को प्राप्त होता है। यदि इस शरीर का शमन हो जाए तो वह जीवनरूपी लाभ का शमन है। इसी कारण मृत शरीर को लाश भी कहते हैं। अब इस शरीर से और लाभ प्राप्त न किया जा सकेगा। अब इस शरीर से कर्म करना सम्भव न होगा। अब इससे आगे की यात्रा न हो पाएगी। कैवल्य प्राप्ति की घटना इसी लाश को कैलाश भी बना सकती है। उसी कैलाश पर शिव विराजते हैं अर्थात् अब आपकी चेतना शिव के भाव को समझ सकती है। अब वह भाव चेतना के लिए उपलब्ध है, वह जान सकती है कि शिव क्यों भोले हैं? वे क्यों कैलाश पर रहते हैं? पार्वती कौन हैं? शिव का इस प्रकृति में, इस सृष्टि में क्या स्थान है और किस प्रकार शव से शिव में रूपान्तरित हुआ जा सकता है?

❖❖

हम बार-बार इस जगत में क्यों आते हैं? क्योंकि हम मानते हैं कि इस जगत में बहुत विभिन्नताएँ हैं, बहुत विकल्प है। काफी अलग-अलग चीजें उपलब्ध हैं और उन सभी चीजों को प्राप्त भी किया जा सकता है। मात्र प्रयत्न करने की आवश्यकता होगी। पाने को बहुत कुछ है। ऐसी विभिन्नता कहीं नहीं, आस-पास कुछ और भी नहीं, मात्र एक यही जगत् है जो जाने योग्य है क्योंकि इस पर ईश्वर की विशेष कृपा है परन्तु आप यहाँ आकर यदि यह जान जाएँ कि विभिन्नताओं की गहराई में बस एक ही तत्व स्थित है। विभिन्नता का कोई वास्तविक स्वरूप नहीं। तब आप शरीर रूप में रहे या चेतना रूप में कोई अन्तर ना पड़ेगा।

चमक-दमक दूर से आकर्षक जरूर प्रतीत हो सकती है। जैसे दूर से देखने पर घास सदैव हरी दिखाई देती है। ठीक वैसे ही इन आकर्षणों में फँसे हुए हम इस जगत् में चले आते हैं और इस जगत की वास्तविकताओं और इसके चरम का अनुभव करते हैं। जब हमारी चेतना को इसके दोनों पक्षों का ज्ञान होता है, जब वह यह जान जाती है कि यह बागीचा अत्यन्त फला-फूला, सुन्दर दिखाई दे रहा था परन्तु अन्दर जानें पर, जब भीतर से देखा तब पाया कि विभिन्न गुण यहाँ अत्यधिक शोर मचाते हुए अपनी-अपनी उपस्थिति को व्यक्त करना चाहते हैं। उनका सारा जोर अपना प्रभाव स्थापित करने में है और इस क्रम में दूसरे गुणों को दबाना भी पड़े तो उसमें कोई गुरेज नहीं।

चेतना तब जान जाती है कि वास्तविकता में बाहरी परत तो अत्यन्त आकर्षक है परन्तु इसका दूसरा पक्ष पूर्णतया समस्याग्रस्त है। भीतर में वास्तव में तीन ही प्रकार के लोग उपस्थित हैं जो सत्व, रज, तम इन तीन गुणों को अभिव्यक्त करते हैं और इन्हीं तीन गुणों के मध्य इस पूरे सौन्दर्य का ताना-बाना बुना गया। जब चेतना इस जगत के भीतरी व बाहरी दोनों ही पक्षों से पूरी तरह परिचित हो जाती है, जब सभी पक्षों को देख और समझ लिया होता है तब वो आकर्षण की गोद में छिपे, घर्षण से परिचित हो चुकी होती है। तब इस जगत के बन्धन से निकलने का प्रयास करती है। यह खेल और कुछ नहीं, मात्र इतना सा ही है।

❖❖

जिसकी तरफ हम जितने ही आकर्षित होते हैं वह उतना ही विपरीत होता है। एक शक्तिशाली चुम्बक की कल्पना की जाए। जिसके दो सिरे हों नार्थ और साउथ (उत्तर और दक्षिण) ठीक उसी प्रकार एक दूसरा चुम्बक, वह भी शक्तिशाली। इन दोनों चुम्बकों के विपरीत ध्रुव एक दूसरे के पास आते हैं तो वे पूरे वेग से एक दूसरे को आकर्षित करते हैं और अन्ततः एक दूसरे से चिपक जाते हैं। जरा ध्यान दीजिए, दोनों ही दूसरे से बिल्कुल अलग हैं लेकिन दोनों के बीच जो बन्धन है वह अत्यन्त शक्तिशाली है। अब वे स्वयं चाहें भी तो अलग नहीं हो सकते। दो विपरीत प्रकृति के लोग एक दूसरे से बँधे हुए हैं कि अलग होना सम्भव नहीं अब। जब तक बाहरी बल न लगे, इन दोनों ध्रुवों को अलग न कर पाएगा।

आकर्षण होने का कारण भी है जिज्ञासा क्योंकि वह अपने समान ध्रुव को बहुत अच्छे से जानता है। वह जानता है कि वह मुझे कभी आकर्षित कर न पाएगा और इसी कारण वह कहीं और आकर्षण की तलाश करता है। ये जीवन भी ठीक उसी प्रकार है। हम आकर्षित उसी की ओर होते हैं जो हमसे अत्यंत विपरीत होता है इसी कारण यह कहने व सुनने को मिलता है कि फलाँ प्रकार की लड़की पत्नी बनने के लिए उपयुक्त होगी और फलाँ प्रकार की लड़की प्रेमिका बनने के लिए ज्यादा मुफीद रहेगी। विपरीत की ओर जितना गमन करेंगे, दूरी जितनी घटेगी, जितनी नजदीकियाँ बढ़ेंगी, उतना ही ज्यादा सम्भव होगा कि दोनों एक दूसरे के बंधन में बँध जाएँ क्योंकि आकर्षण दोनों की तरफ से है। जिज्ञासा दोनों की ही तरफ से है। इसी बलवती जिज्ञासा के कारण एक-दूसरे की तरफ खिंचाव इतना ज्यादा होता है कि वह अन्य विरोधों की परवाह भी नहीं करता परन्तु जिस जिज्ञासा के कारण खिंचाव हुआ था वह जिज्ञासा कब तक बनी रह सकती है? एक ना एक दिन पूर्णतया एक दूसरे को जान लिया जाएगा तब यह जिज्ञासा समाप्त हो जाएगी परन्तु बँधन फिर भी बना ही रहेगा।

❖❖

'अ' उत्पन्न होता है कंठ से, 'प' उत्पन्न होता है ओष्ठ से। एक गंगोत्री, अक्षर उत्पन्न होने का स्थान तथा दूसरा गंगा सागर। वह अन्तिम बिन्दु जहाँ अक्षर में परिवर्तन किया जा सके। एक उत्तरी ध्रुव दूसरा दक्षिणी ध्रुव। इसी कारण अच्छाई

और बुराई भी दोनों ध्रुवों के समान है। एक ही पतली नली के दो भिन्न-भिन्न सिरे स्वय उत्पन्न करने के लिए मात्र फेफड़ों में उपस्थित हवा जो संपीड़ित होती है, उसे स्वर यंत्र से होकर बहना पड़ता है और मात्र स्वर यंत्र से होकर गुजरना ही 'अ' अक्षर को उत्पन्न करता है। परन्तु 'प' बोलने के लिए दोनों होंठों को आपस में मिलना होता है। प्रयास करने की आवश्यकता है, दोनों होठों को आपस में मिलकर ध्वनि को मात्र कुछ पलों के लिए रोककर उसे एक झटके से छोड़ना होता है। जिससे 'प' स्वर उत्पन्न होता है इसी कारण जिस रूप में ऊर्जा हमें प्राप्त होती है, उसी रूप में यदि उसका व्यय या उपयोग किया जाए, बिना किसी परिवर्तन की व्यवस्था किए तो वह ऊर्जा का अच्छा उपयोग है। जब हम स्वयं उसमें परिवर्तन कर उसे अपने हिसाब से नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं तब वह 'ब' अथवा बुराई के रूप में सामने आती है।

❖❖

आईंस्टिन का प्रसिद्ध सूत्र $e = mc^2$ यह व्यक्त करता है कि ऊर्जा को द्रव्य में व द्रव्य को ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है। यह वास्तव में एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ऊर्जा चलयमान द्रव्य है और द्रव्य जमी हुई ऊर्जा। ये दोनों एक दूसरे में परिवर्तनशील हैं। यह सूत्र यही व्यक्त करता है कि इस सृष्टि में कोई भी चीज नष्ट नहीं होती, मात्र अपना स्वरूप परिवर्तित कर लेती है। भारतीय दर्शन भी सदियों से यही कहता चला आ रहा है तो शरीर भले ही नष्ट हो जाए परन्तु इसके होने का कारण नष्ट नहीं होता। वह कारण तब तक यात्रा करता रहता है जब तक उसका समाधान न हो जाए। कारण ही समाधान में परिवर्तित न हो जाए। जीवात्मा आत्मा में परिवर्तित न हो जाए। तब तक यह यात्रा चलती रहती है। शरीर तो मात्र साधन के रूप में आता-जाता रहता है परन्तु वास्तविक यात्रा उसी कारण की है जो स्वयं का समाधान ढूँढ रही है।

❖❖

परिवर्तन ही लाभ या हानि लाते हैं। बच्चा एक विशेष प्रकार की पढ़ाई कर अपनी गुणों में वृद्धि कर, उन्हें एक निश्चित स्तर पर लाकर स्थित करना चाहता है ताकि वह उन गुणों के माध्यम से अपनी जीविका अर्जित कर सके। उन गुणों के

माध्यम से वह धन द्वारा प्राप्त कर सकने वाली, हर वस्तु प्राप्त कर सके। वह विशेष विद्या उसके लिए धन अर्जित कर सके। उसी धन से व्यक्ति अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता है। इस प्रकार एक बच्चा एक योग्य व्यक्ति बन जाता है। अर्थात् गुण परिवर्तनशील हैं। हमारे व्यक्तित्व में गुणों की यात्रा लाभ प्राप्ति की यात्रा है। गुणों में बरतना लाभ व हानि में बरतना है। सभी को क्लास में अच्छे नम्बर चाहिए। एक पोजिशन चाहिए क्योंकि यह उनके गुणी होने को सिद्ध करता है तथा माता-पिता के लिए सांत्वना तथा हर्ष का विषय बनता है।

❖❖

उपदेश अर्थात् उप + देशना उप अर्थात् इंगित करना। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति को इंगित करके जो देशना की जाए वह उपदेश है। उपदेश उस कचरे के समान है जो मन से टकराकर बाहर ही गिर जाता है। मन उसे स्वीकार नहीं करता, बाहर से उसे लौटा देता है। मन के ठीक भीतर अहंकार का एक स्तर है, जो परावर्तक की भाँति कार्य करता है। मन यह विचार उत्पन्न करता है कि किसी दूसरे से कहे हुए उपदेशों को मैं क्यों सुनूँ? उसकी बात मैं क्यों मानूँ? क्या वह मुझसे ज्यादा गुणी है? क्या उसने जीवन में मुझसे ज्यादा अर्जित किया है और यदि नहीं किया तो वह मुझे उपदेश देना क्यों चाहता है? ऐसे किसी पंडाल में जहाँ कहीं गुरु जी उपदेश दे रहे हों, यदि मन द्वारा अस्वीकार किए गए इस उपदेश रूपी कचरे को दृष्टि द्वारा देखा जा सकता तो वहाँ पर बहुत सारा कचरा जमा हो जाया करता। सफाईकर्मी के लिए उसे साफ करना भी एक समस्या बन जाता।

❖❖

तर्कश अर्थात् तर्क + आशय, तीर + आशय। तर्क वे तीर हैं जो मन को भेद अहंकार तक पहुँचा जाते हैं। यदि कोई अहंकार को भी भेद पाए तो बुद्धि तक पहुँचता है। इस प्रकार जहाँ तक उपदेश नहीं पहुँचते, वहाँ तक तर्क पहुँच जाया करते हैं। उपदेशों में तीरों जैसी धार नहीं। अहंकार के स्तर तक पहुँच जाने पर, तर्कों के कारण अहंकार छलनी हो जाता है। वह स्वीकार नहीं कर सकता कि किस प्रकार मुझसे तर्क किया जा सकता है क्योंकि तर्क करने वाले का स्तर ही क्या है। यदि यह तर्क रूपी तीर अहंकार में ही धँसा रह गया और निकला नहीं तो काफी

संभावना यह है कि उचित ऊर्जा पाकर यह बुद्धि तक पहुँच जाए। यह व्यक्ति को मनन करने पर बाध्य कर दे। व्यक्ति विवेचना पर बाध्य हो जाए। तर्कों के तीर कितने ही नुकीले क्यों न हों, वह बुद्धि तक तो पहुँच सकते हैं परन्तु इनकी आत्मा तक कोई पहुँच नहीं क्योंकि आत्मा स्वयं ही समाधान है और समाधान को किस प्रकार से भेदा जा सकेगा।

❖❖

श्रद्धा = श्र + ध + अ। 'श्र' अर्थात् शरण् तथा 'ध' अर्थात् हुआ श्रद्धा रखना अर्थात् शरणागत होना। श्रद्धा गुणों की वजह से भी हो सकती है और गुणातीत होने के कारण भी। श्रद्धा प्रेम प्राप्ति हेतु भी उपस्थित हो सकती है और प्रिय वस्तु की प्राप्ति हेतु भी।

❖❖

मनुष्य = मन + ष्य। 'ष्य' अर्थात् अधीन होना, जो मन के अधीन है वही मनुष्य है। एक मनुष्य तब जीव कहा जाता है जब वह मन के अधीन होकर कार्य करे। वह इच्छाओं और मन की संतृप्ति करना चाहे। इच्छाएँ जो मन के द्वारा ही उत्पन्न की गई हैं लेकिन मन के अधीन कौन हो सकता है? मन के अधीन होती है चेतना। मन जो कहता है वही स्वयं को समझती है। मन कहता है कि मैं शरीर हूँ तो वह मान लेती है कि हाँ मैं शरीर ही हूँ और जो मन के अधीन नहीं वह कौन है? वह है स्वामी अर्थात् वह व्यक्ति जिसने स्वयं को जान लिया। स्वयं को जानना अर्थात् स्वयं को चेतना रूप में पहचानना। यह बात जान जाना कि चेतना मन से आबद्ध थी और इसी कारण उसे ढूँढ पाना सम्भव न था। जैसे ही मन से वो अलग हुई, अब वह एक स्वतंत्र अभिव्यक्ति है, जीव के विलुप्त होते ही चेतना जाग जाती है।

❖❖

'हूँ' कारण नहीं, मात्र अनुभूति है। स्वयं की अनुभूति, जीवात्मा की अनुभूति आत्मा पर उपस्थित आवेश की अनुभूति। यह शरीर के होने का कारण नहीं, शरीर के होने कारण है 'मैं'। चेतना का मन के अधीन होना। चेतना तभी तक कारण है, जब तक मन से बँधी है, मन से अलग हो जाने के पश्चात् वह मात्र सत्य की

अभिव्यक्ति है। यह मात्र तभी तक उपस्थित है, जब तक परम में विलीन नहीं है। 'हूँ' मात्र तभी तक है जब तक चेतना है। चेतना के विलीन होते ही, हूँ भी विलीन।

❖❖

यह जानना आवश्यक होगा कि किस प्रकार कर्ता बनना बाधक है, कार्य के पूर्ण होने में और किस प्रकार द्रष्ट बने रहकर काम को कम समय में सम्पूर्णता से पूरा किया जा सकता है। शरीर के रूप में एक पाइप की कल्पना करें। जिसमें एक तरफ से सूर्य की ऊर्जा प्रवेश करती है। सबसे पहले वह ऊर्जा गुणों से होकर गुजरती है। गुण ऊर्जा के अवशोषक के रूप में कार्य करते हैं। इसके बाद दो और परते हैं, जो ऊर्जा को अवशोषित करती है। एक है बुद्धि और दूसरा है मन। गुणों से हो करके, जब ऊर्जा बुद्धि से होकर गुजरती है तो वह ऊर्जा को अवशोषित कर लेती है और उसका कुछ भाग मन को मिल जाता है और मन भी ऊर्जा का अवशोषक है। अन्ततः जो ऊर्जा बच जाती है वह कर्मेन्द्रियों के माध्यम से शरीर के बाहर, कर्म के रूप में अभिव्यक्त हो जाती है।

अब एक दूसरे शरीर की कल्पना करें, जिसमें सूर्य की ऊर्जा प्रवेश करती है। वह गुणों द्वारा अवशोषित कर ली जाती है और शेष ऊर्जा आगे की ओर बढ़ जाती है। परन्तु इस बार मन व बुद्धि रूपी अवशोषक उसके मार्ग में नहीं खड़े हैं। वे दोनों ही गिर चुके हैं इसी कारण गुणों से निकल कर ऊर्जा कर्मेन्द्रियों के माध्यम से कर्म के रूप में अभिव्यक्त हो जाती है। इस प्रकार ऊर्जा का कहीं ज्यादा बड़ा भाग अब कर्मेन्द्रियों के माध्यम से आकार ले रहा है।

इसी कारण शरीर रूपी यंत्र अब पहले से ज्यादा क्षमता से कार्य कर सकता है। उसकी उत्पादकता बढ़ जाती है। कम प्रयास से ज्यादा उत्पादकता। प्रयास कम इसलिए क्योंकि अब मन को चेतना को अपने बस में करने का प्रयास नहीं करना पड़ रहा। अब चेतना मन की आज्ञा मानने को बाध्य नहीं। वह द्वन्द ही समाप्त हो गया। इस कारण ऊर्जा का अब सदुपयोग किया जा सकता है। मन के गिरने से, चेतना के द्रष्टा भाव में प्रवेश कर जाने से, ऊर्जा अब दो अवशोषक परतों से गुजरते बच जाती है। इसी कारण वह कर्मेन्द्रियों को ज्यादा प्रतिशत में प्राप्त होती है और कर्मेन्द्रियाँ पहले से ज्यादा उत्पादक हो सकती हैं।

सामान्यत: इस जगत के तीन मुख्य स्तर हैं। केन्द्र में है सत्य, सत्य के चारों ओर प्रकृति और प्रकृति के चारों ओर छायी है माया। यही अभिव्यक्ति एक मनुष्य की भी है उसके अन्दर भी यही तीन स्तर उपलब्ध है। माया से सत्य तक की यात्रा ही वास्तव में आन्तरिक यात्रा है।

❖❖

जीवन की यात्रा, सत्य की ओर यात्रा है। स्वयं की खोज की यात्रा है। यदि समय के हिसाब से देखें तो बाहरी स्तर अर्थात् माया के स्तर पर व्यक्ति सबसे ज्यादा समय व्यतीत करता है क्योंकि यहाँ पर विभिन्नताएँ बहुत हैं और उन्हीं विभिन्नताओं में घूमता हुआ प्राणी और समय चाहता है। मध्य में प्रकृति का स्तर है, यहाँ पर विभिन्नता नहीं सहजता है। यहाँ पर भावनाएँ नहीं, भाव है। यहाँ पर उतार-चढ़ाव नहीं, तरंगे नहीं। मात्र एक सतत् प्रवाह है और सबसे मध्य में स्थित है सत्य। यहाँ पर पूर्ण समाधान है।

❖❖❖❖

शरीर के माध्यम से सुख भी प्राप्य है और सत्य भी। पदार्थ भी प्राप्य है और अपदार्थ भी। और इसी शरीर के माध्यम से उस कारण तक पहुँचना भी संभव है, जो शरीर निर्माण व प्राप्ति हेतु उपस्थित है।

यदि किसी प्रकार आप शरीर से दूरी बना पाएँ तो आप सृष्टि रुपी कृति व उस कारण के मध्य में स्थित हो दोनों का ही तटस्थ भाव से अवलोकन कर सकते हैं।

अब कारण व कृति दोनों ही आपके लिये उपलब्ध है।

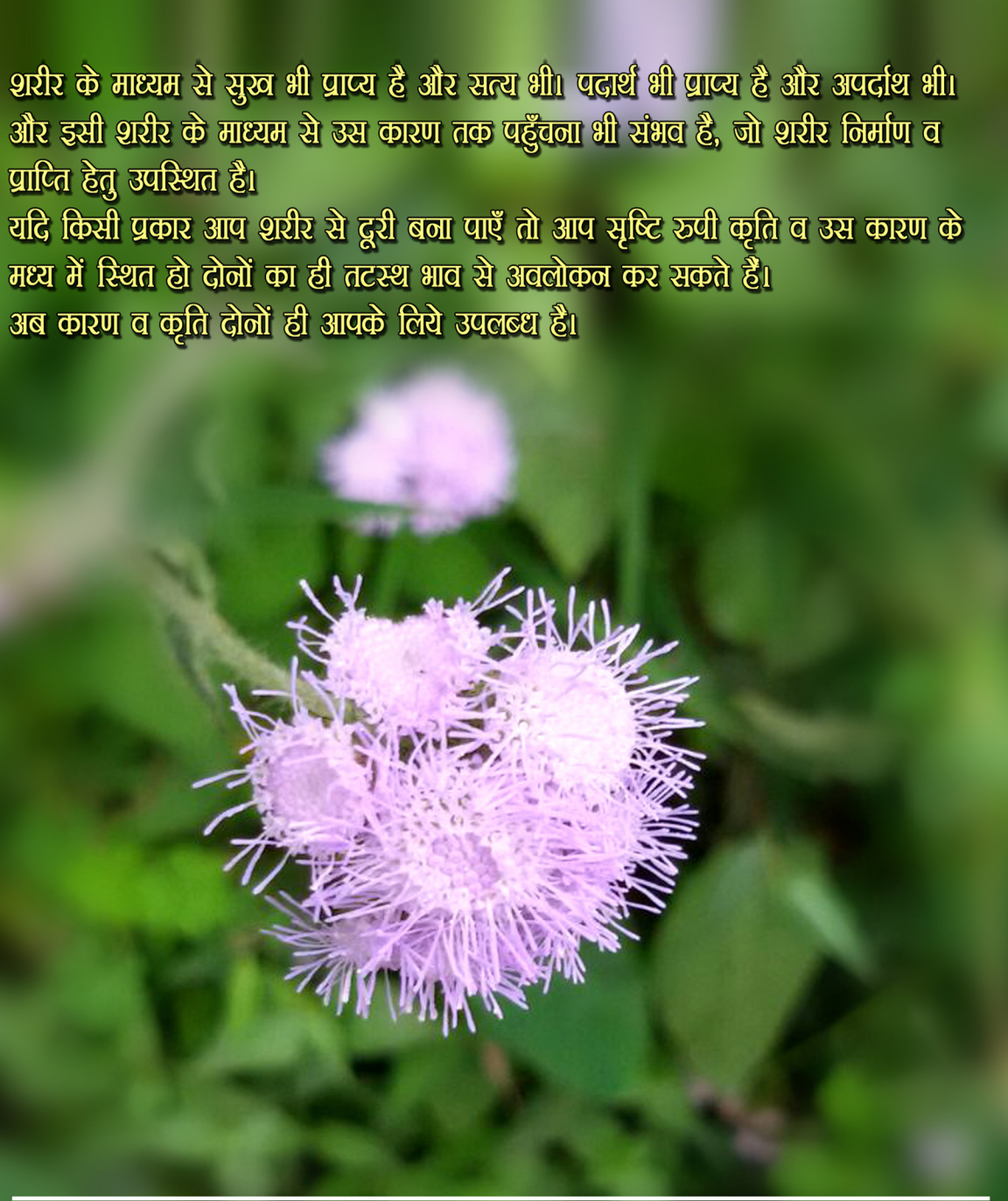

---

Shunyo's birth name is Kishlay. He is a dentist possessing qualifications from India and South Africa. He got trained at army establishment. Currently he works for the government and sustains a private practice in India.

One fine day he found a gate and a lane connected with it, and a journey begun. He feels this journey is all about this name 'shunyo', that is being zero.

*